गुप्तकालीन मुद्राएँ

डाक्टर अनन्त-सदाशिव अलतेकर

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

पटना

गुप्तकालीन मुद्राएँ

डॉ० अनंत सदाशिव अल्तेकर

अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति-विभाग, पटना विश्वविद्यालय
तथा
निर्देशक, काशीप्रसाद जायसवाल-अनुशीलन संस्था, पटना

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

पटना

वक्तव्य

बिहार-राष्ट्र-भाषा-परिषद् की ओर से, भारतीय-इतिहास तथा भारतीय संस्कृति के सुप्रसिद्ध विद्वान् प्रो० श्रीअनन्त-सदाशिव अलतेकर की अभिनव रचना 'गुप्तकालीन मुद्राएँ' प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष तथा गौरव का अनुभव होता है। भारत के गुप्त कालीन इतिहास के पुनर्निर्माण में मुद्राओं की देन अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। गुप्त-काल में राजनीतिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक सभी दृष्टियों से भारत अपने वैभव पर था। जहाँ एक ओर चन्द्रगुप्त प्रथम, समुद्रगुप्त तथा चंद्रगुप्त द्वितीय ने अपने राज्य की सीमा को भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक विस्तृत किया, वहाँ दूसरी ओर उन्होंने महाकवियों, महान् दार्शनिकों और कलाकारों को आश्रय देकर उनके द्वारा संस्कृत-साहित्य के सभी क्षेत्रों को समृद्ध-सम्पन्न बनाया। ऐसी स्थिति में गुप्तकालीन इतिहास पर जितना ही प्रकाश डाला जाय और अनुसंधान के फलस्वरूप जितनी ही नवीन बातें मालूम हों, उतनी ही अधिक हमारे राष्ट्र और साहित्य की गौरव-वृद्धि होगी।

प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रो० अलतेकर ने मुद्राओं का वैज्ञानिक तथा विश्लेषणात्मक अध्ययन किया है और उसके आधार पर भारतीय इतिहास के नवनिर्माण तथा सम्यक् प्रतिपादन के लिए विपुल सामग्री रखी है। हमें पूर्ण विश्वास है कि इस सामग्री का उपयोग करके अन्यान्य विद्वान् हमारे इतिहास से संबद्ध ऐसे तत्त्वों का उद्घाटन कर सकेंगे, जिनकी ओर हमारा ध्यान पर्याप्त मात्रा में अभी तक नहीं गया है।

जहाँ तक हिन्दी भाषा और साहित्य का संबंध है, प्राचीन इतिहास की सामग्री पर आधारित उच्चकोटि के अनुशीलनात्मक ग्रन्थ केवल इने-गिने हैं। इस दृष्टि से प्रो० अलतेकर की रचना का महत्त्व और भी बढ़ जाता है, अतः हम इसका सहर्ष स्वागत करते हैं। हमें यह आशा है कि इस ग्रन्थ से विद्वज्जगत् को न केवल अमित संतोष होगा, अपितु उसे अनुशीलन की दिशा में आगे बढ़ने की प्रचुर प्रेरणा भी मिलेगी।

धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री

परिषद्-मंत्री

विषय-सूची

भूमिका

समकालीन सामग्री की विपुलता के कारण, आधुनिक या मध्ययुगीन इतिहास के पुनर्निर्माण में, मुद्राओं का उतना महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं है, जितना प्राचीन इतिहास के निर्माण में। 'प्रकार-लेख' अल्प ही रहते हैं। सभी राजाओं के नाम, ग्रन्थों में, वाङ्मय प्रशस्तियों में या जनश्रुतियों में नहीं आ पाते हैं। प्राचीनकाल में विदेशी यात्रियों के आने के समय राज्य करने का सौभाग्य भी इने-गिने राजाओं को ही प्राप्त होता था। ऐसी अवस्था में अनुपयोगी समझकर फेंक दी गई ताम्बे या चाँदी की मुद्राओं पर कभी-कभी अकस्मात् अनेक राजाओं के नाम प्राप्त होते हैं तथा उनसे इतिहास की खोज में बहुमूल्य साहाय्य मिलता है। रामगुप्त नाम से ज्ञात होनेवाला राजा था या नहीं, इस विषय में अनेक साल से चर्चा हो रही थी। हाल में उसके छः ताम्बे के सिक्के मिले, जिनसे उसका अस्तित्व सिद्ध हो गया। कोशाम्बी, मथुरा, अयोध्या इत्यादि नगरियों में अनेक राजा राज्य करते थे। यदि उनके ताम्बे के सिक्के प्राप्त न होते, तो उनके नाम-निशान भी हमें नहीं मिलते। ऐतिहासिक ग्रंथों से इण्डोग्रीककाल के केवल पाँच-छः राजा हमें ज्ञात थे; किन्तु अब और भी तीस-बत्तीस राजाओं का अस्तित्व उनकी मुद्राओं से सिद्ध हो गया है।

केवल राजाओं से संबद्ध इतिहास के लिए ही नहीं, वरन् शासन–पद्धति के इतिहास का ज्ञान प्राप्त करने के लिए भी मुद्राशास्त्र अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। प्राचीन भारत में गणतंत्र राज्य थे या नहीं, इसके संबन्ध में पहले बहुत चर्चा हुआ करती थी; किन्तु, जब मालव, यौधेय, शिवि आदि गणों के नाम से—किसी राजा के नाम से नहीं—चलाये सिक्के मिले, तब गणराज्यों के अस्तित्व का सिद्धान्त सबको मान्य हुआ। मुद्राओं में मिलावट (धातुमिश्रण) को देखकर तत्कालीन आर्थिक दुरवस्था ज्ञात होती है। यदि वे मुद्राएँ 'निगमों' द्वारा चलाई गई हों तो इससे उनके कार्यक्षेत्र का विस्तार ज्ञात होता है। धार्मिक इतिहास में भी मुद्राओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वैदिक देवता वायु की मूर्ति किसी ने कभी मंदिर में नहीं देखी होगी; किन्तु वह विदेशी कनिष्क राजा की मुद्राओं पर पाई जाती है। कला के इतिहास पर भी मुद्राओं द्वारा पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

इस तरह, मुद्रा-शास्त्र का महत्त्व विविध दृष्टियों से स्वयं सिद्ध है; किन्तु उसके अध्ययन के लिए सामग्री प्रायः सुलभ नहीं है। जैसे-जैसे मुद्राएँ प्राप्त होती जाती हैं, वैसे-वैसे उनका वृत्तांत पुरातत्त्व-विभाग के विवरणों, मुद्राशास्त्र की पत्रिकाओं और उत्खनन-संबंधी पुस्तकों में प्रकाशित होता जाता है। किन्तु ये पुस्तकें प्रायः दुर्लभ होती हैं; और कितनी ही तो अब अलभ्य हो चुकी हैं। इनमें से अनेक इंगलैंड, फ्रान्स, अमेरिका आदि देशों में प्रकाशित हुई थीं; पर वे भारत के बड़े-बड़े ग्रंथसंग्रहालयों में भी आसानी से प्राप्त नहीं होती हैं।

इस कठिनाई को दूर करने के उद्देश्य से भारतीय मुद्रा-शास्त्र-समिति (Indian Numismatic Society) ने मुद्राशास्त्र पर विस्तृत ग्रंथ तैयार कराने की आयोजना की है। इस आयोजना का यह पहला ग्रंथ है, जिसे अंग्रेजी में प्रकाशित करने का विचार हुआ। उसके अनुसार यह अंग्रेजी में भी प्रकाशित होगा। किन्तु उक्त समिति की यह भी इच्छा थी कि ग्रंथ राष्ट्रभाषा हिंदी में भी प्रकाशित हो। बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् ने इस ग्रंथ को हिन्दी में प्रकाशित करना स्वीकार कर लिया; यह उचित भी था। गुप्त-नरेश बिहार के निवासी थे और गुप्त-सुवर्ण-मुद्राएँ न केवल बिहार की मुद्राओं में, अपितु प्राचीन भारत की सर्व-प्रकार की मुद्राओं में अत्यन्त उन्नत स्थान रखती हैं। इसलिए उनपर प्रामाणिक ग्रंथ प्रकाशित करना बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् का आद्य कर्तव्य था। राष्ट्रभाषा परिषद् ने इस ग्रंथ के प्रकाशन में इतनी दिलचस्पी दिखाई कि अंग्रेजी संस्करण से पहले हिन्दी में ही यह ग्रंथ प्रकाशित हो गया। हिन्दी में इस प्रकार का मौलिक मुद्राशास्त्रीय ग्रंथ प्रकाशित करने का सारा श्रेय बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् को है। इस प्रकार का ग्रंथ आज और किसी दूसरी, देशी या विदेशी, भाषा में विद्यमान नहीं है।

गत सौ वर्षों से अधिक की अवधि में गुप्त-सम्राटों की, जितनी प्रकार की मुद्राएँ भारत में या भारत से बाहर प्रकाश में आई हैं, उन सबका विवेचन इस ग्रंथ में मिलेगा और उनके चित्र भी इस ग्रंथ के फलकों पर मिलेंगे। हम समझते हैं, गुप्त-साम्राज्य के इतिहास के अध्येता विद्यार्थी को दूसरे किसी भी ग्रंथ की, रिपोर्ट की या संशोधन-पत्रिका की आवश्यकता इस ग्रंथ को साथ रखने से न होगी। जिन मुद्राओं का उल्लेख गुप्तों की मुद्राओं के अध्ययन के समय किया जाता है, उनके भी चित्र फलकों में दिये गये हैं। १ से लेकर १९ तक के फलकों पर पाठक प्रत्येक गुप्त राजा की मुद्रा के सभी 'प्रकार' और 'उपप्रकार' पा सकेंगे। फ० २०-२६ पर गुप्त-मुद्रालेख मूललिपि में दिये गये हैं और उनका देवनागरी लिपि में रूपान्तर सामनेवाले पृष्ठ पर दिया गया है। इससे पाठकों को मूललेख मुद्राओं पर स्वयं पढ़ने में सहायता मिलेगी। फ० २७ पर गुप्तमुद्राओं पर पाये गये चिह्नों का चित्रपट दिया गया है। किन्तु सर्वसंग्राहकता ही इस ग्रंथ का वैशिष्ट्य नहीं है। श्री अलँन ने ब्रिटिश म्यूज़ियम की, गुप्तों की मुद्राओं की, सूची सन् १९१४ में प्रकाशित की। गत चालीस वर्षों में अनेक नई खोजें हुई हैं, अनेक चर्चाएँ हो चुकी हैं, एवं अनेक सिद्धान्त विचारार्थ सामने रखे गये हैं। इस सब सामग्रियों की सम्यक समालोचना करके इस ग्रंथ में गुप्त-मुद्राशास्त्र का पूर्ण विवेचन किया गया है। आशा है, इससे मुद्राशास्त्र पर पर्याप्त नया प्रकाश पड़ेगा। गुप्त-इतिहास पर अब अनेक ग्रंथ उपलब्ध हैं, इसलिए प्रथम अध्याय में, इसका संक्षेप में ही दिग्दर्शन किया गया है।

मातृभाषा हिन्दी न होने के कारण मेरे लिए हिंदी में ग्रन्थ लिखना कष्टसाध्य-सा था; किंतु इस कार्य में मेरे भूतपूर्व छात्र तथा विद्यमान सहकारी श्रीवासुदेव उपाध्यायजी से मुझे अनमोल साहाय्य मिला। अनुक्रमणिका, परिशिष्टादि उन्होंने बनाये हैं। इसके लिए मैं उनका

कृतज्ञ हूँ। संभव है कि पाठकों को कुछ स्थानों पर मराठी भाषा के विशिष्ट शब्दों या वाक्यरचना का आभास मिले; किंतु मराठी भाषा-भाषी जब हिन्दी लिखेंगे तब वैसा होना अपरिहार्य है।

हिंदी भाषा में मुद्राशास्त्र पर प्रकाशित होनेवाला यह पहला ग्रन्थ है। इसलिए हमें obverse, reverse, legends, out of plan इत्यादि शब्दों के हिंदी प्रतिशब्द प्रथम ही निश्चित करने पड़े। नये शब्दों के निर्माण में स्वभावतः संस्कृत भाषा के शब्द-भण्डार का आश्रय लेना पड़ा। इन सब शब्दों की हिंदी-अंगरेजी की सूची परिशिष्ट में मिलेगी। पुस्तक पढ़ने के पूर्व पाठक यदि पहले इन सूचियों को देख लें तो उन्हें ग्रन्थ के समझने में सहायता मिलेगी।

पाद-टिप्पणियों में ग्रंथों के नाम का उल्लेख संक्षेप में करना अपरिहार्य है। संक्षिप्त ग्रन्थनामों की अकारादि सूची परिशिष्ट में दी गई है। उसे भी पाठक कृपया पहले ही देखें। परिशिष्ट में आधारभूत ग्रन्थों के नाम दिये गये हैं—अंग्रेजी ग्रंथ अंग्रेजी अक्षरों में तथा संस्कृतादि ग्रंथ देवनागरी में।

इस ग्रन्थ के फलकों पर प्रकाशित की गई मुद्राएँ प्रथम ब्रिटिश संग्रहालय के सूची पत्रों (Catalogues) में, बयाना निधि की सूची में, पुरातत्त्व-विभाग के प्रतिवृत्तों में, भारतीय मुद्रा-समिति तथा बंगाल एशियाटिक सोसायटी की पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी थीं। उनके पुनर्मुद्रण के निमित्त अनुमति प्राप्त करने के लिए हम तथा बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् उक्त संस्थाओं के, पुरातत्त्व-विभाग के संचालक के और भरतपुर के महाराजा साहब के कृतज्ञ हैं।

बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद् का यह विचार था कि मेरे अमेरिका जाने से पहले यह ग्रंथ प्रकाशित हो जाय, और तदनुरूप परिषद् ने सभी आयोजन किये। इसी कारण ग्रन्थ-मुद्रण में बहुत शीघ्रता करनी पड़ी।

ग्रन्थ-मुद्रण में मेरी दो पुत्रियों ने बड़ी सहायता की है। कुमारी उषा अलतेकर (अध्यापिका, पटना-महिला महाविद्यालय) तथा कुमारी पद्मा अलतेकर (प्राचीन भारतीय संस्कृति-विभाग की अनुशीलन-सहायिका) को उक्त सहायता के लिए मैं हृदय से आशीर्वाद देता हूँ।

२५-१-१९५४ — अनंत सदाशिव अलतेकर

गुप्तकालीन-मुद्राएँ

पहला अध्याय

गुप्त-राज्य का संक्षिप्त इतिहास

गुप्त मुद्राओं के वर्णन के पहले इस वंश का संक्षिप्त इतिहास साधारण पाठकों के लिए आवश्यक प्रतीत होता है। उस सम्बन्ध में विस्तृत तथा विवादास्पद विषयों पर विचार नहीं किया जायगा; केवल उन घटनाओं का उल्लेखमात्र होगा जिससे गुप्तवंश की मुद्राओं की जानकारी सरलता से हो सके।

ईसवी सन् २६० में श्री गुप्त ने दक्षिण-पूर्व बिहार में गुप्तवंश की नींव डाली। उसका राज्य बहुत ही सीमित था। यही कारण है कि उसके विजयी उत्तराधिकारियों की प्रशस्तियों में वह केवल सामंत की पदवी से विभूषित किया गया है। श्री गुप्त प्रायः २६० से २८० ई० तक शासन करता रहा; परन्तु अत्यन्त साधारण राजा होने के कारण मुद्राओं का प्रचलन न कर पाया। उसका पुत्र और उत्तराधिकारी घटोत्कच भी सामंतावस्था में ही रहा, उसकी भी कुछ मुद्राएँ नहीं मिली हैं। हाँ; एक 'घटो' लेखवाली मुद्रा मिली है, किन्तु आगे यह दिखाया जायगा कि जिस घटोत्कच ने उसे चलाया था, वह अन्य राजकुमार था। यह गुप्त राजा घटोत्कच संभवतः २८० से ३०० ई० तक शासन करता रहा।

गुप्त कुल का प्रभावशाली राजा तथा वास्तविक संस्थापक घटोत्कच का पुत्र और उत्तराधिकारी प्रथम चन्द्रगुप्त था। उसका वैवाहिक सम्बन्ध लिच्छवी वंश से स्थापित हुआ था, जिसकी राजकुमारी कुमारदेवी चन्द्रगुप्त की पट्टमहिषी थी; लिच्छवियों के सहकार्य से सरलतापूर्वक वह सम्राट् के पद तक पहुँच सका। इस सम्बन्ध के फलस्वरूप गुप्त तथा लिच्छवी राज्य एक में मिला लिये गये, जिससे मिथिला तथा बिहार का एक शक्तिशाली गुट उत्पन्न हो गया। इस तरह के सामर्थ्य की वृद्धि से प्रथम चन्द्रगुप्त ने अपने बढ़ते हुए प्रभाव द्वारा अवध तथा प्रयाग तक की गंगाघाटी का भूभाग अपने राज्य में मिला लिया। राज्य की सीमा दुगुनी बढ़ जाने पर प्रथम चन्द्रगुप्त ने ई० स० ३२० के समीप विशेष राज्याभिषेक करके महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। सम्भवतः उसी समय से गुप्त-संवत् का आरम्भ किया गया और सर्वप्रथम मुद्राओं का प्रचलन हुआ। कुमारदेवी से उत्पन्न पुत्र समुद्रगुप्त को अपना उत्तराधिकारी घोषित करने के पश्चात् चन्द्रगुप्त ई० स० ३३० के समीप परलोक सिधारा। लिच्छवी वंश से उसका वैवाहिक सम्बन्ध चन्द्रगुप्त के शासनकाल की महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना थी, जिसने उसकी मुद्रानीति को प्रभावित किया था। उसने केवल एक प्रकार की मुद्रा तैयार कराई, जिसके पुरोभाग पर राजा तथा महिषी कुमारदेवी की आकृतियाँ बनाई गईं

और पृष्ठभाग पर लिच्छवी वंश का नाम उत्कीर्ण किया गया था। प्रथम चन्द्रगुप्त सर्वप्रथम हिन्दू राजा है जिसकी उत्कीर्ण स्वर्णमुद्रा हमलोगों को प्राप्त हुई है।

इसमें संदेह नहीं कि, समुद्रगुप्त प्रथम चन्द्रगुप्त द्वारा राज्य का उत्तराधिकारी मनोनीत किया गया था। किंतु प्रयाग के स्तंभ-लेख से पता चलता है कि चन्द्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात् उत्तराधिकार के लिए युद्ध हुआ था। इस सम्बन्ध में यह सुझाव उपस्थित किया जाता है कि 'काच' नामक व्यक्ति समुद्र का ज्येष्ठ भ्राता था, जिसकी स्वर्णमुद्राएँ समुद्रगुप्त के ध्वज-धारी सिक्कों के समान मिली हैं, और उसीने सिंहासन के लिए झगड़ा खड़ा किया था। जब सम्राट् ने समुद्र को इसके लिए चुना और सरकारी ढंग से उसकी घोषणा भी की तब इस झगड़े की संभावना असंभव-सी हो जाती है। समुद्रगुप्त का प्रारम्भिक इतिहास प्रकाश में आ न सका है तथा काच के सम्बन्ध में अधिक कुछ कहना भी कठिन है। यह भी हो सकता है कि काच एक अन्य वंश का राजा था जिसने ये सिक्के निकाले हों। अधिक ऐतिहासिक सामग्री के अभाव में केवल यही कहा जा सकता है कि काच नामक राजा ईसवी सन् की चौथी शताब्दी में, गंगा की घाटी में, कुछ समय तक राज्य करता था और उसने सिक्के प्रचलित किये थे।

समुद्रगुप्त एक बड़ा संगठनकर्त्ता तथा महत्वाकांक्षी विजेता था। उसने अनेक छोटे शासकों को पराजित कर उत्तर प्रदेश के उत्तरी भाग, दक्षिण-पूर्वी पंजाब तथा दिल्ली से सागर तक के भूभाग को अपने राज्य में मिला लिया। विन्ध्यप्रदेश और दक्षिण कोसल गुप्त साम्राज्य के प्रभाव के अन्तर्गत लाये गये थे। उत्तरीभारत में राज्य को दृढ़ कर समुद्रगुप्त ने दक्षिणभारत की दिग्विजय-यात्रा आरम्भ की,जिसके सिलसिले में उसकी सेना ने पूर्वी समुद्रतट के पार कांची पर्यन्त के भाग को रौंद डाला। उस प्रांत में शासन करनेवाले अनेक राजाओं ने विजेता की अधीनता स्वीकार की। उनकी भेंट लेकर संतोषपूर्वक समुद्रगुप्त राजधानी लौट आया और उसने विजित प्रदेशों को साम्राज्य में सम्मिलित करने का प्रयत्न तक न किया। अधुना उस राय को अशुद्ध मानते हैं कि समुद्रगुप्त पश्चिमी भारत से महाराष्ट्र होकर लौटा था। देवराष्ट्र तथा एरण्डपल्ल के पराजित नरेश पूर्वीतट पर स्थित कलिंग प्रांत में शासन करते थे, न कि पश्चिमी भारत के महाराष्ट्र प्रदेश में। वाकाटक महाराष्ट्र तथा मध्यप्रांत के शासक थे, जिनसे समुद्रगुप्त की मुठभेड़ नहीं हुई थी।

समुद्रगुप्त प्रायः ४० वर्ष की लम्बी अवधि तक शासन करता रहा, जिसका अंत प्रायः ३७० ई० में हुआ था। इसके राज्यकाल में गुप्त मुद्राओं की विशेष ढंग से उन्नति हुई, जो कई प्रकार की थीं और कलात्मक दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट समझी जाती हैं। समुद्रगुप्त ने चांदी तथा ताम्बे को छोड़कर केवल सोने की मुद्राएँ अधिक संख्या में प्रचलित की जो छः विभिन्न प्रकार की हैं। उनका वर्णन आगे किया जायगा।

समुद्रगुप्त के उत्तराधिकारी के विषय में दो मत हैं। एक मत के अनुसार समुद्रगुप्त का उत्तराधिकारी उसका ज्येष्ठ पुत्र रामगुप्त था, जिसे थोड़ी अवधि के पश्चात् कनिष्ठ भ्राता द्वितीय चन्द्रगुप्त के लिए स्थान छोड़ना पड़ा। चन्द्रगुप्त ने कुषाण आक्रमण से उत्पन्न गुप्त

साम्राज्य की महान् विपत्ति टाली थी। कुछ विद्वान् इस मत से सहमत नहीं हैं, वे रामगुप्त की ऐतिहासिकता पर आपत्ति करते हैं ; क्योंकि उसकी स्थिति प्रशस्तियों तथा मुद्राओं से पुष्ट नहीं की जाती। एक मत के अनुसार रामगुप्त का नाम गुप्त वंशावली में इस कारण उल्लिखित नहीं किया गया कि उसके वंशज आगे राज्य नहीं कर सके अथवा उसका शासन गुप्तवंश के लिए कालिमा का धब्बा था। हाल ही में मालवा से चार-पाँच ताम्बे के सिक्के मिले हैं, जिन पर रामगुप्त का नाम स्पष्ट रूप से उत्कीर्ण है। आगे चलकर उसके सोने के सिक्के भी प्राप्त हो सकते हैं। यह असम्भव नहीं कि वह समुद्र का ज्येष्ठ पुत्र था। यह कहना आवश्यक है कि रामगुप्त की स्थिति काच के समान अभी भी अनिर्शिचत-सी है।

द्वितीय चन्द्रगुप्त प्रायः ३७५ ई० में सिंहासन पर बैठा। उसकी लम्बी शासन-अवधि ४१२ ई० तक विस्तृत थी। उसे शासन के आरम्भ में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उसने बंगाल के विद्रोह को दबाया और विद्रोह शांत हो जाने पर कुषाण-सेना सिन्ध नदी के किनारे तक भगाई गई। पश्चिमी पंजाब गुप्त-साम्राज्य में सम्मिलित न हो पाया, परन्तु कुषाण तथा शक राजा गुप्तों के सामंत के रूप में शासन करते रहे।

ई० सन् ३६० के पश्चात् द्वितीय चन्द्रगुप्त ने काठियावाड़,गुजरात तथा मालवा के शक क्षत्रियों के विरुद्ध प्रबल आक्रमण किया, जिसमें वह सफल हुआ। इस घटना का विशेष महत्त्व है कि जो शक तीन सौ वर्षों से उस भू-भाग में शासन करते थे, वे पूर्ण रूप से सदा के लिए मिटा दिये गये। भारतीय राजनीति से उनका नाम तक लोप हो गया। मालवा, गुजरात तथा काठियावाड़ गुप्त साम्राज्य में मिला लिये गये, जिससे सामुद्रिक व्यापार का एक नया मार्ग खुल गया।

द्वितीय चन्द्रगुप्त की पुत्री प्रभावती गुप्ता का विवाह वाकाटक राजा द्वितीय रुद्रसेन के साथ हुआ था जो वैवाहिक जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में ही विधवा हो गई। उसके दो नाबालिग पुत्र थे, इस कारण चन्द्रगुप्त अपनी पुत्री की शासन-प्रबंध में सहायता करता रहा। उसने अनेक अनुभवी कर्मचारियों को भेजकर पुत्री की सहायता की थी।

चन्द्रगुप्त के शासन-काल में राजकीय मुद्राओं में अधिक उन्नति हुई। सोने के अतिरिक्त चाँदी तथा ताम्बे को भी मुद्राओं के लिए प्रयोग किया गया। चाँदी की मुद्राएँ क्षत्रप सिक्कों के अनुकरण पर चलाई गईं, जो उससे मिलती-जुलती हैं। सम्भवतः इस धातु की मुद्राएँ पश्चिमी विजित प्रदेशों के लिए थीं जो चाँदी-सिक्कों के प्रचलन में अभ्यस्त थे।

द्वितीय चन्द्रगुप्त के पश्चात् उसका पुत्र प्रथम कुमारगुप्त राज्य का स्वामी बना। इस नये राजा की सबसे पहली तिथि ६६ गु० स० है तथा चन्द्रगुप्त की अंतिम तिथि ६३ गु० स०। अतएव इन तीन वर्षों की अवधि में कुछ विद्वान् गोविन्दगुप्त का स्थान निश्चित करते हैं ; जिसने राज्य छीन कर इस समय शासन किया हो। इस मत की पुष्टि के लिए ठोस प्रमाण नहीं मिलते हैं तथा कोई लेख भी इसे प्रमाणित नहीं करता। यदि उन तीन वर्षों में कुछ काल तक गोविन्दगुप्त ने शासन किया भी हो तो उसकी कोई मुद्रा उपलब्ध नहीं हुई है।

प्रथम कुमारगुप्त ने करीब-करीब चालीस वर्षों तक राज्य किया; परन्तु उससे सम्बन्धित बहुत थोड़ी राजनीतिक घटनाएँ ज्ञात हैं। उसने किसी नये प्रांत को जीतने का प्रयत्न नहीं किया। निस्संशय उसने अश्वमेध-यज्ञ किया था। किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि वह नये विजय के उपलक्ष्य में नहीं था, वरन् पितृपरम्परा-प्राप्त साम्राज्य के गौरव के लिए था। दक्षिण के सतारा जिले में चाँदी की मुद्राओं का एक निधि प्राप्त हुआ है; किंतु वह इस बात का द्योतक नहीं है कि प्रथम कुमारगुप्त के साम्राज्य में दक्षिण तथा मध्य महाराष्ट्र सम्मिलित थे। उस निधि को संभवतः किसी महाराष्ट्र के व्यापारी ने बचा कर रखा था अथवा वह किसी विद्वान् ब्राह्मण को दक्षिणा-रूप में मिला था, जो गुजरात में वैदिक यज्ञ के लिए निमंत्रित किया गया हो। ईसवी सन् ४५० तक कुमारगुप्त का शासन शांतिमय रहा। उसके द्वारा प्रचलित मुद्राओं से साम्राज्य के धन और वैभव का प्रतिबिम्ब मिलता है। उनमें नवीनता, कलात्मकता और लेखों की काव्यमयता विशेष उल्लेखनीय है। चौदह प्रकार की स्वर्णमुद्राओं का उसने प्रचलन किया था, जिनमें अश्वारोही, कार्तिकेय, खड्गनिहन्ता तथा सिंह-निहन्ता प्रकार की मुद्राएँ प्राचीन भारतीय मुद्राकला में सर्वोत्तम उदाहरण समझी जाती हैं।

कुमारगुप्त ने उत्तर प्रदेश और बिहार के लिए भी चाँदी के सिक्कों का प्रचलन किया। ये सिक्के सर्वथा क्षत्रप प्रभाव से मुक्त हैं। कुमारगुप्त ने चाँदी की मुद्राएँ अन्य सम्राटों से बहुत अधिक संख्या में प्रचलित कीं।

उसके अंतिम समय में साम्राज्य में अशांति मच गई। वाकाटक राजा नरेन्द्रसेन पर नल राजा ने आक्रमण किया, किंतु कुमारगुप्त उसे सैनिक सहायता भेज न सका। घर के समीप ही नर्मदा की ऊपरी घाटी में पुष्यमित्र नामक जाति ने गुप्त आधिपत्य के विरुद्ध विद्रोह खड़ा किया था। थोड़े समय के लिए स्थिति काबू से बाहर हो गई, जिसे राजकुमार स्कन्दगुप्त ने, सेना की बागडोर ग्रहण कर, बचा लिया। पुष्यमित्र पराजित किये गये; पर विजेता स्कन्द को संतोष न हुआ कि जीत के संदेश स्वयं पिता को सुना दें। उन्हीं दिनों सम्राट् मर गया, जब साम्राज्य की सेना विद्रोहियों को दबाने और पराजय में व्यस्त थी। पुष्यमित्रों के साथ युद्ध के कारण साम्राज्य के साधनों की बड़ी हानि हुई। इतना होते हुए भी कुमारगुप्त के प्रशंसनीय शासन में स्वर्णमुद्राओं में हीन धातुओं का सम्मिश्रण नहीं किया गया। किंतु उसे बाध्य होकर चाँदी-पानी के सिक्कों को कुछ हद तक पश्चिमी भारत तथा गंगाघाटी में भी प्रचलित करना पड़ा था।

कुमारगुप्त के पश्चात् उसका पुत्र स्कंदगुप्त राज्य का उत्तराधिकारी हुआ। कुछ ऐसे प्रमाण मिलते हैं, जिनके आधार पर यह सुझाव रखा जा सकता है कि स्कन्द के उत्तराधिकार में उसके भ्राता पुरुगुप्त द्वारा आपत्ति उठाई गई थी। किंतु यह अधिक सम्भव है कि स्कन्द की मृत्यु के पश्चात् पुरुगुप्त उत्तराधिकारी हुआ और उसने स्कन्दगुप्त के किंतु राज्यारोहण का विरोध नहीं किया था। राजगद्दी पर बैठने से पूर्व स्कन्दगुप्त ने पुष्यमित्रों

के विद्रोह को दूर तो कर दिया था ; परन्तु नई आपत्तियाँ उठ खड़ी हो गईं। उत्तर-पश्चिम से हूण लोगों ने साम्राज्य पर आक्रमण कर दिया। इससे सेना नई आपत्ति का सामना करने में फँसी थी। एक प्रशस्ति में वर्णन आता है कि शत्रु-सेनाओं के भयकंर मुठभेड़ होने पर पृथ्वी पाताल तक हिल गई। स्कन्दगुप्त इस युद्ध में सफल हुआ ; लेकिन पूर्वी पंजाब उसके हाथ से जाता रहा। स्कन्दगुप्त साम्राज्य के बचे भागों में शांति और सुरक्षा रखने में सफल रहा। सम्राट् सैनिक-कार्य में इतना व्यस्त था कि उसे मुद्रा-नीति पर ध्यान देने का अवसर न मिल पाया। उसके दो प्रकार के सिक्के उल्लेखनीय हैं। एक में लक्ष्मी राजा को राज्य भेंट कर रही हैं[1]। दूसरा सिक्का धनुर्धारी प्रकार का है। हाल ही में छत्रधारी और अश्वारोही प्रकार के सिक्के मिले हैं, जो सम्भवतः उसीके हों। किंतु उसके बारे में निश्चित रूप से कहना कठिन है।

स्कंद के चाँदी के सिक्के पिता की तरह अत्यधिक संख्या में तैयार कराये गये थे। इसने दो नये प्रकार के नन्दी तथा वेदी वाले सिक्के प्रचलित किये थे। ईसवी सन् ४६७ स्कंद की अंतिम तिथि है, प्रायः इसी साल में वह मर गया। उसका भ्राता पुरुगुप्त राज्य का उत्तराधिकारी हुआ ; पर वह भी दो या तीन वर्षों के शासन के पश्चात् मर गया। उसकी कोई मुद्रा नहीं मिली है। एक स्वर्णमुद्रा जो पुरुगुप्त की बतलाई जाती थी, अब बुधगुप्त की सिद्ध हुई है।

स्यात् पुरुगुप्त वृद्धावस्था में सिंहासन पर बैठा था, इस कारण उसका शासनकाल अत्यन्त थोड़ा रहा। किंतु उसके पुत्र नरसिंहगुप्त-बालादित्य ने भी चार ही वर्षों तक राज्य किया था ; क्योंकि उसका पुत्र द्वितीय कुमारगुप्त ई० सन् ४७३ में सिंहासनारूढ़ हो गया था। इसके तीन वर्ष पश्चात् ही सन् ४६५ ई० में बुधगुप्त ने गुप्त-शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली थी।

इस युग का इतिहास प्रकाश में न आ पाया है। इस कारण अनेक मत उत्पन्न हो गये हैं ; किंतु उसमें एक भी अभी तक प्रमाणसिद्ध नहीं माना जा सकता है। एक मत के अनुसार पुरुगुप्त, नरसिंहगुप्त तथा द्वितीय कुमारगुप्त के शासन एक के बाद एक थोड़े समय के रहे, कारण, उत्तराधिकार में कुछ झगड़ा था। बुधगुप्त ने नरसिंहगुप्त तथा कुमारगुप्त का विरोध किया था। आपसी झगड़े के कारण नरसिंहगुप्त तथा कुमारगुप्त का शासन अल्पावधि का था, जिसके बाद बुधगुप्त ने शासन का अधिकार ले लिया। सम्भवतः सन् ४७५ ई० में उसने अपने भतीजे द्वितीय कुमारगुप्त को हराया था।

द्वितीय कुमारगुप्त की स्वर्णमुद्राएँ अधिक संख्या में मिली हैं जितनी स्कंदगुप्त के अन्य उत्तराधिकारियों के शासनकाल में नहीं मिली हैं। इस आधार यह असम्भव ज्ञात होता है कि उसका राज्य काल केवल तीन या चार वर्षों का था अथवा ४७६ ई० में बुधगुप्त के

---

१. अनवधानता के कारण फलक १४ पर इस प्रकार का वर्णन राजारानी प्रकार में किया गया है। वह नाम पूर्वकालीन लेखकों ने स्वीकृत किया था।

सिंहासनारोहण से समाप्त कर दिया गया। इस बात के भी निश्चित प्रमाण मिले हैं कि द्वितीय कुमारगुप्त का पुत्र विष्णुगुप्त सिंहासन पर बैठा और महाराजाधिराज की उपाधि से विभूषित किया गया था। इस कारण यह अनुमान करना सर्वथा गलत होगा कि कुमारगुप्त का राज्य ४७६ ई० में बुधगुप्त के सिंहासन पर आने पर समाप्त हो गया। सम्भवतः चचा-भतीजे में इस तरह का समझौता हो गया कि बुधगुप्त को राज्य का अधिक भाग मिले; क्योंकि दोनों में वह अधिक शक्तिशाली था। द्वितीय कुमारगुप्त ने संभवत पूर्वी बंगाल में एक छोटे राज्य से संतोष कर लिया, जहाँ उसकी मुद्राएँ पर्याप्त संख्या में मिली हैं।

यद्यपि बुधगुप्त ने २० वर्ष के लम्बे काल तक शासन किया, तथापि अभी तक उसकी केवल तीन स्वर्ण-मुद्राएँ मिली हैं। उसके चाँदी के सिक्के भी कम हैं तथा मध्यदेश प्रकार के ही मिले हैं। नरसिंहगुप्त तथा द्वितीय कुमारगुप्त की केवल स्वर्णमुद्राएँ प्राप्त हुई हैं।

ई० सन् ४६६ में बुधगुप्त की मृत्यु के पश्चात् गुप्त साम्राज्य का इतिहास अपूर्ण रूप से मिलता है। सम्भवतः कुमारगुप्त का पुत्र विष्णुगुप्त ई० सन् ४६० में, पूर्वी बंगाल में, उसका उत्तराधिकारी हुआ और ४६६ ई० के समीप भानुगुप्त पाटलिपुत्र में। भानुगुप्त का कोई सिक्का नहीं मिला है; पर विष्णुगुप्त की स्वर्णमुद्राएँ प्राप्त हुई हैं। सिक्कों के आधार पर गुप्तवंश का अंतिम शासक वैन्यगुप्त था। अनेक वर्षों तक उसके सिक्के तृतीय चंद्रगुप्त के माने जाते थे। किंतु अब उसका नाम वैन्यगुप्त ठीक तरह से पढ़ा गया है। चूँकि दक्षिण बंगाल में वैन्यगुप्त का ताम्रपत्र मिला, अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि वह विष्णुगुप्त का पुत्र था।

पाँचवी सदी के अंत में हूणलोगों ने पुनः आक्रमण किया, जिसका अगुआ तोरमाण था। हूण सेना ने पंजाब तथा राजपुताना को रौंद डाला और ५१५ ई० के समीप वह मालवा में प्रवेश कर गई। ई० सन् ५१० में सागर जिले में भानुगुप्त तथा उसके सेनापति से हूणों की मुठभेड़ हुई थी। इस युद्ध में भानुगुप्त असफल रहा, जिसका प्रमाण ग्वालियर के लेख से मिलता है। उसके उल्लेख से पता चलता है कि तोरमाण का पुत्र मिहिर अपने शासन के प्रारम्भ में ग्वालियर प्रांत का स्वामी था। भानुगुप्त की 'आदित्य' उपाधि नहीं मिली है; इस कारण यह कहना कठिन है कि ५३० में हूणों को परास्त करनेवाले बाला-दित्य तथा भानुगुप्त एक ही व्यक्ति थे या नहीं। अधिक सम्भव है कि बालादित्य भानुगुप्त का पुत्र था, जिसने पिता के कार्य को पूर्ण किया हो। इस बालादित्य का व्यक्तिगत नाम ज्ञात नहीं है। यदि बालादित्य और पुरुगुप्त के पुत्र नरसिंहगुप्त एक ही व्यक्ति थे तो यह असम्भव नहीं कि, स्वर्णमुद्रा, जिसके पुरोभाग पर नर उत्कीर्ण हैं तथा पृष्ठभाग पर विरुद बालादित्य खुदा है, द्वितीय बालादित्य की प्रचलित की हुई मानी जा सकती है। वह हूणों का विजेता था।

मालवा तथा मध्य देश से हूणों का निष्कासन गुप्तशासन की अवधि को बढ़ा न सका। मालवा के यशोधर्मन् ने बालादित्य को सहयोग देकर उन्हें निकाल बाहर किया।

किंतु पश्चात् वह गुप्त-राज्य पर आक्रमण कर ब्रह्मपुत्र की घाटी तक घुस गया; पर उसका आक्रमण ऐसा विकट था, जिसने गुप्त-राजाओं की निर्बलता की पोल खोल दी। मौखरि-नरेशों ने विद्रोह करके अवध तथा उत्तरप्रदेश के उत्तरी भूभाग में स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया। मगध प्रांत में कृष्णगुप्त के वंशजों ने बालादित्य के परिवार का अंत कर दिया, जो समीपवर्ती शाखा से उत्पन्न हुए थे। कृष्णगुप्त, उसके पुत्र हर्षगुप्त तथा पौत्र जीवितगुप्त, बुधगुप्त और बालादित्य के आज्ञाकारी सामंत थे। जब मौखरि राजा ईशानवर्मा ने मगध पर चढ़ाई कर उस भूभाग को सम्मिलित करने का प्रयत्न किया तब जीवितगुप्त के पुत्र द्वितीय कुमारगुप्त ने उसका विरोध किया था। मौखरिलेखों में हूण-विजेता बालादित्य अथवा उसके उत्तराधिकारी के नाम नहीं मिलते, जिन्होंने बढ़ते हुए मौखरि-साम्राज्य का विरोध किया हो। यह स्पष्ट है कि सन् ५३० ई० के करीब गुप्त सम्राटों का अंत हो गया था और उस समय 'पिछले' मगध गुप्त वंश के कुमारगुप्त राजा ने उनका स्थान ले लिया।

जय (गुप्त) तथा हरि(गुप्त) का पता कुछ दुष्प्राप्य सिक्कों से लगता है जो सम्भवतः गुप्त राजा थे। यदि ऐसा हो तो प्रधान गुप्त वंश या कृष्णगुप्त के परिवार में उनका स्थान क्या था, यह ज्ञात नहीं है।

दूसरा अध्याय

गुप्त सम्राटों की मुद्राएँ

भूमिका और सामान्य विवरण

मुद्राशास्त्र के क्षेत्र में गुप्त-सम्राटों की मुद्राएँ विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। उनके पूर्ववर्ती राजाओं में भारत के यूनानी तथा कुषाण शासकों ने कलात्मक दृष्टि से पर्याप्त सुन्दर मुद्राओं का प्रचलन किया था; परन्तु उनमें विदेशीपन के भाव निहित थे और उनके लेख अभारतीय लिपि में लिखे जाते थे, उदाहरणार्थ—यूनानी तथा खरोष्ठी। गुप्तों से पूर्व के कुछ भारतीय राजाओं ने पांचाल के 'मित्र' तथा दक्षिण के सातवाहन-लेखयुक्त सिक्कों का प्रचलन किया; किंतु वे कला में हीन थे और उनकी तौल तथा माप सर्वथा अव्यवस्थित थी। उनपर शासक की आकृति या अर्द्धचित्र खुदा नहीं मिलता। गुप्तकालीन मुद्राएँ सर्वप्रथम भारतीय सिक्के हैं जो वर्तमान मुद्राओं के संनिकट आती हैं। उनपर राजा की आकृति तथा नाम खुदे हैं और उनकी तौल तथा माप एक-सी हैं। आरम्भ में उनपर कुछ विदेशी प्रभाव दिखलाई पड़ता है; परन्तु शीघ्र ही वे उससे मुक्त हुए। उत्कृष्ट गुप्त मुद्राएँ कला, बनावट तथा वस्त्राभूषणों में सर्वथा राष्ट्रीय कही जा सकती हैं।

कलात्मकता, मौलिकता व विविधता में गुप्त-सम्राटों की स्वर्णमुद्राएँ प्राचीन भारतीय मुद्राओं में अपनी सानी नहीं रखतीं। भारतीय यूनानी सिक्के निसंदेह कला की दृष्टि से ऊँचे माने गये हैं। परन्तु उनमें प्रकारों की अनेकता और चिह्न-समूहों (Motifs) की विविधता नहीं दिखालाई देती है, जो गुप्त-मुद्राओं की विशिष्टता है। भारतीय यूनानी सिक्कों के पुरोभाग पर अधिकतर राजा का ऊद्धर्व-चित्र खुदा है। कुछ विरल मुद्राओं पर अश्वारोही राजा भी मिलता है, किन्तु इससे अधिक विविधता नहीं मिलती है। इसके विपरीत गुप्तमुद्राओं पर राजा का ऊद्धर्व-चित्र विरले मिलता है। राजा का प्रदर्शन अनेक रीति से किया गया है, उसके वस्त्र तथा आयुध भी विविध प्रकार के हैं। वह प्रायः खड़ा दिखलाया गया है। कभी उसके हाथ में धनुष (फ० २, १४) तो कभी परशु (फ० २,१५) और कभी ध्वज (फ० २,१) रहता है। कभी-कभी तो राजा के पार्श्व में छत्र-धारी व्यक्ति दिखलाई पड़ता है (फ० ८,६)। अक्सर वह सिंह-शेर या गैंड़ा से लड़ते हुए अंकित है (फ० ६, १-१५; ३,१३; १४, ३-६)। कभी राजा घोड़े पर सवार है (फ० ८, १) अथवा हाथी पर (फ० १२,१४)। मनोरंजन के लिए वह वीणा बजा रहा है (फ० ३,१५) या मोर को खाना दे रहा है (फ० १३,११)। इस प्रकार की मनोहारी तथा कलात्मक विविधता भारतीय यूनानी

सिक्कों में नहीं पाई जाती। कुषाण मुद्राओं के पृष्ठभाग पर उल्लेखनीय विविधता तो अवश्य है; परन्तु इसका एक मात्र कारण यही था कि वहाँ राजा के इच्छानुकूल अनेक यूनानी, रोम, ईरानी, हिन्दू तथा बौद्ध देवी-देवताओं को स्थान दिया गया। उस विविधता का कारण कलात्मकता न थी जैसी गुप्त मुद्राओं में पाई जाती है।

गुप्त युग की हिन्दू-कला में गौरवास्पद नव-निर्माणशक्ति (creative value) थी जिसे न केवल तक्षण कला में, बल्कि सिक्कों पर भी देख सकते हैं। इस स्वर्णयुग में कोई नरेश एक प्रकार की मुद्रा से संतुष्ट नहीं था। समुद्रगुप्त, द्वितीय चन्द्रगुप्त तथा प्रथम कुमारगुप्त में प्रत्येक ने छः से अधिक प्रकार की मुद्राएँ प्रचलित कीं। मुद्रा पर उन सब सम्राटों का विशेष ध्यान रहा। शासन के आरम्भ में पूरी स्थिति पर विचार करके मुद्राओं का संचालन किया जाता था। कुछ पुराने प्रकारों का त्याग करते थे और नये का स्वीकार। कभी-कभी पुराने प्रकार सुधार के साथ पुनः प्रचलित किये जाते थे।

इतना ही नहीं कि मुद्राओं के अनेक प्रकार प्रचलित किये गये; किंतु हरएक प्रकार में अनेक उपप्रकार भी शुरू किये गये। द्वितीय चन्द्रगुप्त, की धनुर्धारी मुद्रा अतीव साधारण प्रकार में गिनी जाती है, जिसमें सैकड़ों सिक्के प्रचलित हुए; लेकिन इस प्रकार के उपप्रकारों में आश्चर्यजनक विविधता और विचित्रता पाई जाती हैं। कभी 'चन्द्र' बाँह के नीचे (फ० ४,६-६), कभी धनुष तथा प्रत्यंचा के मध्य, (फ० ४,१०-११) और कभी प्रत्यंचा के बाहरी भाग में (फ० ४,१२) लिखा गया है। कभी धनुष राजा के दाहिने हाथ में तो कभी बायें हाथ में रहता है (फ० ५,६;४,६-१५); कभी धनुष सिरे से पकड़ा गया है (फ० ४,६-१३) तो कभी मध्यभाग से (फ० ४-१२)। साधारणतः राजा बाईं ओर ही खड़ा है और देखता है; पर कभी वह दाहिने तथा कभी बायें भी देखता है (फ० ४, ६-१५ : ५, ६-१२)। ये उपप्रकार जितने कलात्मक हैं, उतने ही आश्चर्यकारी भी हैं। मुद्राओं के पृष्ठभाग पर भी इसी प्रकार की विविधता दिखलाई देती है। उदाहरण के लिए, सिंहनिहन्ता प्रकार को लें। इस प्रकार के पृष्ठभाग पर भी देवी प्रायः सिंह पर सम्मुख बैठी है। (फ० ६, १-३; १२, ३)। वह सिंह का उपयोग सिंहासन के रूप में प्रायः करती है; किन्तु कभी वह अश्वारोही के समान अपने दोनों पैर उसके दोनों ओर फैलाये बैठी है (फ० ६, ८), कभी देवी का वाहन सिंह बाईं ओर चल रहा है (फ० ६, १४), तो कभी दाहिनी तरफ (फ० ६, १०)। कभी देवी निर्भीक भाव से सिंह के सिरपर पैर हिलाते हुए दिखलाई गई है (फ० ७, १)।

ऊपर बताया गया है कि गुप्त-कालीन मुद्राओं की कला सर्वथा भारतीय है। इसकी विशद विवेचना की आवश्यकता है; क्योंकि स्मिथ महोदय ने एक सिद्धांत प्रतिपादित किया है कि गुप्त सिक्कों के कतिपय चिह्नसमूह विदेशी प्रभाव से अनुप्राणित हैं। किंतु अधिकतर उदाहरणों में पता चलता है कि स्मिथ का निदान निराधार है। जो लोग भागवतधर्म से परिचय रखते हैं, वे जानते हैं कि उस धर्म में विष्णु तथा उसके वाहन गरुड़ को कितना

महत्त्व दिया जाता है। वे कदापि यह नहीं मानेंगे कि परमभागवत वैष्णव गुप्त सम्राटों को गरुड़ की याद रोम के सिक्के देख कर ही [१] हुई, न विष्णु के वाहन को नमस्कार करने से। बेसनगर स्तम्भ के आधार पर यह सिद्ध होता है कि रोमन सिक्कों पर गरुड़ (eagle) के समाविष्ट होने के बहुत समय पूर्व वैष्णव लोगों ने गरुड़ध्वज का सर्वत्र प्रचार किया था। कुमारगुप्त का नाम जिस देवता के नाम से हुआ, उस कुमार या कार्तिकेय देवता का वाहन मोर था। इस कारण सबलोग इसे समझ सकते हैं कि मोर को सोने तथा चाँदी के सिक्कों पर क्यों महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया। ऐसी अवस्था में कुमारगुप्त के चाँदी के सिक्कों पर इस पंखयुक्त मोर की आकृति को ज्यूलिया आगस्टा के सिक्के का अनुकरण मानना [२] सर्वथा न्याय नहीं होगा। टिटस की पुत्री ज्यूलिया आगस्टा की मृत्यु ई० सन् ८१-६० के बीच में हुई। स्मिथ इसे स्वीकार करते हैं कि उस राजकुमारी तथा प्रथम कुमारगुप्त के राज्यकाल में दीर्घ अन्तर है। वे यह भी मानते हैं कि उस राजकुमारी के ये दुष्प्राप्य सिक्के भारत तक पहुँचे थे। इसका भी कुछ प्रमाण नहीं है। तो भी वे अपने विचार पर दृढ हैं कि प्रथम कुमारगुप्त ने इन रोमन सिक्कों का अनुकरण करके ही अपनी मुद्राओं पर मोर को स्थान दिया। राजा या देवी-द्वारा मोर को खिलाते हुए दिखाना एक सर्वथा भारतीय कल्पना है। इससे मिलती-जुलती हुई रोमन सिक्कों पर उत्कीर्ण मोर को खिलाते हुए जूनो की आकृति केवल आकस्मिक घटना ही मानी जा सकती है। अश्वारोही तथा सिंहनिहन्ता वर्गों के सिक्कों की कल्पना तथा सजावट भी सर्वथा भारतीय है। इसमें रोमन सिक्कों का अनुकरण देखना युक्तिसंगत नहीं है। [३]

प्रारंभिक अवस्था में गुप्त-स्वर्णमुद्रा में कुछ विदेशी प्रभाव अवश्य दृष्टिगोचर होता है ; पर वह कुषाण या सीथियन प्रभाव है, रोमन नहीं। प्रथम चन्द्रगुप्त के वैवाहिक दृश्य में भी (फ० १,८-१५) गुप्त सम्राट् सीथियन ढंग का वस्त्र पहने दिखलाया गया है।

---

१. ज० रा० ए सो० १८८९ पृ० २४।

२. ज० ए० एस० बी० १८८९ पृष्ठ २२।

३. विस्तृत विवरण के लिए देखिए—स्मिथ का लेख ज० रा० ए० सो० १८८९ पृ० १८-२२। स्मिथ के प्रमाण कितने अविश्वसनीय हैं, वे स्वयं भी उनसे कैसे पूर्णतया प्रभावित नहीं हुए थे, यह निम्नांकित दो उद्धरणों से समझा जा सकता है। द्वितीय चन्द्रगुप्त की भागते सिंहवाली अद्वितीय मुद्रा गुप्त सिक्कों में सबसे अधिक कलापूर्ण है। यह सम्भव है तथा सुझाव रक्खा जा सकता है कि सिंह और व्याघ्रनिहन्ता प्रकार की मुद्राओं पर इन पशुओं से लड़ते हुए राजा के चित्रण की कल्पना हेरैकल्स के नेमियन वन के सिंह की लड़ाई से भारतीयों को मिली होगी, यद्यपि सिंह-निहन्ता हेरैकल्स तथा सिंहनिहन्ता गुप्त सम्राटों में कोई साम्य नहीं है। गुप्त मुद्राओं पर भागता हुआ सिंह निस्संदेह यूनानी कला से प्रभावित है। किंतु यूनानी चित्र या मूर्ति को देखकर ही भारतीय कारीगर ने उसे खोदा होगा (पृ० २०)। यह कहा जा सकता है कि अखेमनियन वंश के डेरिक सिक्कों से धनुर्धारी प्रकार के सिक्कों की कल्पना गुप्तसम्राटों को हुई। किंतु यह असम्भव-सा मालूम पड़ता है।

यज्ञवेदी पर हवन करते समय भी विदेशी कोट-पतलून का त्याग नहीं किया गया है (फ० १,१४-१५)। मुद्राओं के पृष्ठ भाग पर ऊँचे पीठवाले सिंहासन पर बैठी हुई और हाथ में कॉर्नुकोपिया[1] लिये हुए देवी की मूर्त्ति रोमन देवता आरदोक्षो का अक्षरशः अनुकरण है (फ० १,१४-१५)। हाँ, गुप्त मुद्राओं पर उसका नाम नहीं मिलता। समुद्रगुप्त मुद्रा पर ध्वज लिये हुए दिखलाया गया है (फ० २,१-७); क्योंकि सीथियन सिक्कों पर राजा इसी अवस्था में खड़ा है और उसका अनुसरण गुप्त टकसालवालों ने किया। किंतु हिन्दू शिष्टाचार इससे सहमत नहीं है कि राजा अपना ध्वज अपने हाथ में धारण करे।

गुप्तकालीन कलाकार विदेशी चिह्न तथा वेश-भूषादि को शीघ्र हटाना चाहते थे; किंतु मुद्रा-शास्त्री पुरानी प्रथा को बहुत मानते थे। इसलिए भारतीय दृष्टि में मुद्राओं में तुरंत परिवर्तन करना सरल न था। सीथियन ऊँची टोपी का स्थान आरम्भ से ही भारतीय उष्णीष ने ले लिया (फ० १,८-१५); परन्तु विदेशी कोट और पतलून कई पीढ़ियों तक सिक्कों पर बीच-बीच में दिखाई देते हैं। अत्यधिक मुद्राओं पर राजा धोती पहने चित्रित किया गया है। आरदोक्षो, सिंहवाहिनी दुर्गा के रूप में परिवर्तित कर दी गई है (फ० १,८-१३) अथवा कमलासन पर बैठाकर उसे लक्ष्मी का रूप दे दिया गया है। वहाँ कॉर्नुकोपिया के स्थान पर कमल वर्तमान है (फ०५,५)। ध्वजधारी प्रकार की मुद्रा के ध्वज को परशु (फ० ३,३) अथवा धनुष से (फ० २,१२) स्थानान्तरित करके सफलतापूर्वक भारतीयपन लाया गया है। अत्यधिक संख्या में गुप्त सम्राटों की मुद्राएँ सर्वथा राष्ट्रीय हैं और वे भारतीय मुद्रा-कला के सबसे अच्छे उदाहरण मानी जाती हैं।

गुप्त मुद्राएँ अत्यंत उच्च हस्त-कौशल का प्रदर्शन करती हैं तथा बनावट और कला में उत्कृष्ट उदाहरण उपस्थित करती हैं। द्वितीय चन्द्रगुप्त के सिंहनिहन्ता प्रकार के एक वर्ग में राजा की पतली, किंतु मांसल स्नायुयुक्त देहयष्टि अत्यंत मनोहर दिखाई देती है (फ० ७,५)। शायद ही उसकी समानता कोई कलाकार कर सके। देवी या खड़ी रानी की आकृति कोमल कान्त तथा आकर्षक है (फ० ७,७-११)। कितनी कमनीयता से वह हाथ में लीला कमल धारण करती है या मुद्राओं को बखेरती है या मोर को खिलाती है। (फ० ४, १; ४, ८; ११, २-४)। उससे उस युग की सुसंस्कृत रुचि का परिचय मिलता है। देवी की त्रिभंगी मुद्रा अत्यन्त मनोमोहक है (फ० १२, १)। समुद्रगुप्त के ऊँचे तथा भव्य शरीर का आभास उसके सिक्कों से भलीभाँति मिलता है (फ० २)। प्रथम चन्द्रगुप्त तथा प्रथम कुमारगुप्त के राजा-रानी प्रकार की मुद्राएँ (फ० १, ६-१३; १३, ४) समुद्रगुप्त के वीणाधारी और अश्वमेध प्रकार के सिक्के (फ० ३, ६-१३) द्वितीय चन्द्रगुप्त के चक्रविक्रम और सिंहनिहन्ता मुद्रा-प्रकार (फ० ६, ८, ६) तथा प्रथम कुमार गुप्त के अप्रतिघ, खड्गनिहन्ता, गजारोही-सिंहनिहन्ता प्रकार के सिक्के (फ० १२, १३, फ० १३, ३-६) सभी निस्संदेह मौलिक हैं। वे मुद्राकारों की कलापारंगतता का पूर्ण परिचय देते हैं।

---

१. आरदोक्षो देवी के हाथ में एक फलों से भरा हुआ सींग रहता था, जिसका नाम कॉर्नु-कोपिया था।

कलाकारों ने मुद्राओं पर उस युग के आभूषणों की आकर्षक विविधता अंकित की है जो तत्कालीन सुसंस्कृत रुचि का परिचय देती हैं। राजा के बटनवाले कोट और पतलून (फ० २, ५; ४, १२), मौक्तिक विभूषित टोपी (फ० ३, ५; १५) राजमुकुट का चंद्रकोर (फ० ८, ७) सभी सुन्दर और आकर्षक हैं। राजा के केशविन्यास के विविध प्रकार दिखाये गये हैं। कभी उसके केश कुरल (घुँघराले) (फ० १२, ६), कभी बालों को लटें लहराती हुई (फ० ४, १३) और कभी वे आधुनिक न्यायाधीशों की टोपी (wig) की तरह दिखाई देते हैं (फ० १०, १३-१५)। स्त्रियों के आभूषण उनको ढँक नहीं लेते हैं, जैसा परवर्ती कला में दिखलाई पड़ता है। संख्या में वे कम हैं, किन्तु सौंदर्य में उत्कृष्ट (फ० १, ८-१३; ३, ६-१४)। उनकी साड़ियाँ तथा ओढ़नियाँ सदभिरुचि पर बिना आघात किये उनके सौंदर्य का आविष्कार करती हैं (फ० ३, ७-८)।

घोड़ों के बालों के सुन्दर गहने, उनके सिर पर का तुरा आकर्षक रूप से दर्शाये गये हैं (फ० ३, ६-७; फ० ११, ११-१२)।

साहित्यिक पुनरुत्थान, जो गुप्तयुग की एक विशेषता है, सिक्कों में भी प्रतिबिम्बित होता है। भारतीय मुद्राशास्त्र में सर्वप्रथम गुप्त सिक्कों पर ही मुद्रालेख छंदोबद्ध मिलते हैं [१]। काव्य की दृष्टि से भी उनका दर्जा ऊँचा है। यह असम्भव नहीं है कि अधिकांश गुप्तसम्राटों ने साहित्यिक प्रवृत्ति रखते हुए मुद्राओं को अपनी काव्यमय पंक्तियों से सुशोभित किया हो। साधारणतः उपगीति, पृथ्वी, उपजाति तथा वंशस्थाविल छंदों में काव्यपंक्तियाँ मिलती हैं। यह एक ध्यान में रखने लायक बात है कि गुप्त सम्राटों के पश्चात् किसी भी राजा ने अपने मुद्रालेख छंदोबद्ध करने की प्रथा का अनुसरण नहीं किया है। हाँ, मौखरी, हूण तथा वर्धन वंश की मुद्राओं पर 'विजितावनिरवनिपतिः श्री (......) दिवं जयति' यह काव्यपंक्ति मिलती है; किंतु वह एक गुप्त मुद्रालेख का अनुकरण है।

गुप्त स्वर्णमुद्राओं के प्रकार

गुप्तमुद्राओं की विशेषताओं का विस्तृत विवरण वहाँ किया जायगा, जहाँ प्रत्येक नरेश के सिक्कों का वर्णन होगा। यहाँ तो संक्षेप में प्रत्येक राजाओं द्वारा प्रचलित स्वर्ण मुद्रा के विषय में तथा उनके विभिन्न प्रकार के विषय में कुछ बातें रखी जायँगी। प्रथम चन्द्रगुप्त के पितामह श्री गुप्त तथा पिता घटोत्कच प्रसिद्ध तथा महत्त्वपूर्ण शासक नहीं थे और उन लोगोंने किसी प्रकार के सिक्के का प्रचलन नहीं किया। प्रथम चन्द्रगुप्त ने मुद्रासंचालन तब शुरू किया जब सम्भवतः शासन के अंतिम भाग में उसने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। इस समय गुप्त साम्राज्य एक प्रकार का द्वैराज्य [२] था; उसमें गुप्त और लिच्छवी वंशों के समान

---

१. मुद्रालेखों की छंदोबद्धता को प्रथम पहचानने का श्रेय जॉन ॲलन को है।

२. दो राजाओं के द्वारा जिन राज्यों में साथ-साथ राज्य संचालन किया जाता है, उसे प्राचीन भारतीय शास्त्रकार द्वैराज्य कहते थे।

अधिकार थे। प्रथम चन्द्रगुप्त की मुद्रा से इस राजनीतिक परिस्थिति का आभास मिलता है। उसने केवल एक प्रकार की ही मुद्रा प्रचलित की थी, जिसके पुरोभाग पर राजा तथा रानी की आकृतियाँ हैं तथा पृष्ठ भाग पर शक्तिशाली लिच्छवी वंश का नाम अंकित है, जहाँ रानी उत्पन्न हुई थी[१]। द्वितीय चन्द्रगुप्त का एक भी सिक्का प्रथम चन्द्रगुप्त का नहीं बतलाया जा सकता; क्योंकि सभी पर विक्रम या सिंहविक्रम अथवा अजितविक्रम ऐसे विक्रमशब्दयुक्त मुद्रालेख मिलते हैं। अभी तक कोई भी प्रमाण नहीं मिला है कि प्रथम चन्द्रगुप्त ने यह उपाधि धारण की थी। बेली का कथन था कि उसके संग्रह की सिथियन ढंग की कुछ मुद्राएँ प्रथम चन्द्रगुप्त की हो सकती हैं। परन्तु वे स्वयं निस्संदेह रूप से इन सिक्कों पर बाँह के नीचे 'चन्द्र' नहीं पढ़ सके थे और न इन मुद्राओं के चित्र छापे गये हैं, जिससे हम इस लेख के अस्तित्व की जाँच कर सकें। किंतु बृटिश संग्रहालय में ऐसे दो सिक्के हैं, जिनमें बाँह के नीचे विवादास्पद लेख के अतिरिक्त ध्वजा के बाहर भी लेख वर्त्तमान है। इनमें से एक को जे० ए० एस० बी १८८४, फ० ३, ६ पर प्रकाशित किया गया है। कनिंघम ने भी एक इसी प्रकार का सिक्का प्रकाशित किया है जो इस पुस्तक के फ० १,५ पर दिया गया है। इस नमूने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह लेख 'भद्र' है, जिसे चन्द्र भी भ्रम से पढ़ा जा सकता है। चूँकि बेली स्वयं इस लेख के विषय में संदेहपूर्ण हैं और इस प्रकार के अन्य सिक्कों पर इसे 'भद्र' पढ़ा जाता है; इस कारण ऐसे प्रमाण नहीं मिलते, जिनके आधार पर यह कहा जा सके कि प्रथम चन्द्रगुप्त ने ध्वजधारी मुद्राओं का प्रचलन किया था।

हाल ही में डाक्टर छाबा ने यह सुझाव रक्खा[२] कि जिस दंडधारी सिक्के के पृष्ठ भाग पर परमभागवत लिखा है, वह प्रथम चन्द्रगुप्त का है, द्वितीय का नहीं। किंतु उनके प्रमाण कसौटी पर नहीं उतरते। चूँकि द्वितीय चन्द्रगुप्त ने पर्यंङ्कवाली मुद्रा के पृष्ठभाग में ध्वज का प्रयोग किया है, अतएव यह ध्वजधारी प्रकार की मुद्रा उसी की ज्ञात होती है। अभी तक ऐसे प्रमाण नहीं मिले हैं कि प्रथम चन्द्रगुप्त ने परमभागवत की विरुद धारण की थी। इसलिए भी यह मुद्रा द्वितीय चन्द्रगुप्त की ही माननी पड़ेगी। अंत में इस सिद्धान्त पर हम पहुँचते हैं कि प्रथम चन्द्रगुप्त ने केवल राजा-रानी प्रकार के सिक्के ही प्रचलित किये थे, न कि अन्य किसी प्रकार के।

प्रथम चन्द्रगुप्त के पुत्र तथा उत्तराधिकारी समुद्रगुप्त ने लम्बी अवधि तक राज्य किया। उसकी छः विभिन्न प्रकार की मुद्राएँ अभी तक मिली हैं। उनमें ध्वजधारी सिक्का अत्यधिक प्रचलित है, जो तीसरी सदी के मध्य पंजाब में प्रचलित शक राजाओं के सिक्कों का घनिष्टतम अनुकरण करता है (फ० ३, ३-४)। इसमें राजा बायें हाथ में ध्वज लिये खड़ा है

---

१. ॲलन के मत के अनुसार ये सिक्के समुद्रगुप्त के हैं, न कि प्रथम चन्द्रगुप्त के। इस मत की असारता आगे सिद्ध की जायगी।

२. जे० एन० एस० आइ, ११-१५।

और दाहिने हाथ से यज्ञवेदी पर आहुति छोड़ रहा है। सीथियन मुद्राओं पर के त्रिशूल का स्थान गरुड़ध्वज ने लिया है; गरुड़ गुप्त साम्राज्य का राजकीय लांछन था (फ० १, १४—१५)। समुद्रगुप्त ने आगे चलकर धनुर्धारी तथा परशुधारी प्रकार के सिक्के प्रचलित किये, जिनको ध्वजधारी प्रकार का भारतीय अवतार माना जा सकता है। हिंदू शिष्टाचार के अनुसार राजा अपने हाथ में ध्वजधारण करना उचित नहीं समझता और दाहिनी ओर गुरुड़ध्वज की उपस्थिति से बाईं ओर राजा के हाथ का ध्वज व्यर्थ-सा हो जाता है। इस कारण इसके स्थान पर बायें हाथ में धनुष रक्खा गया और दाहिने हाथ में आहुति की जगह बाण। इस प्रकार धनुर्धारी प्रकार के सिक्कों का आविष्कार हो गया जो (फ० ३, १३—१५) गुप्त वंश के अंत तक लोकप्रिय बना रहा। परशुधारी प्रकार की मुद्रा में ध्वज के स्थान पर परशु अंकित किया गया। इसमें एक वामन सेवक राजा के सम्मुख खड़ा है। इस प्रकार की मुद्रा से यह तात्पर्य समझा जाता है कि सम्राट् किसी ऊँचे स्थान से युद्ध की प्रगति को देख रहा है तथा संमुख स्थित दूत के द्वारा समाचार सुन रहा है, जो युद्धस्थल से शीघ्र ही आया है। परशुधारी प्रकार की मुद्रा पर समुद्रगुप्त के लिए कृतांत-परशु की विरुद दी गई है जो गुप्तवंशीय लेखों में केवल उसके लिए प्रयुक्त है। उसके उत्तराधिकारियों में किसी ने भी इसे नहीं अपनाया। अपने विविध मनोविनोद के प्रकार और दिगंतव्यापी पराक्रम हमारे मुद्राप्रकारों से प्रजाजन को विदित हो—ऐसी समुद्रगुप्त की इच्छा थी। फलस्वरूप व्याघ्रनिहंता, वीणाधारी तथा अश्वमेधवाले सिक्के निकाले गये। व्याघ्रनिहंता प्रकार के सिक्के उसके आखेट से प्रेम को व्यक्त करते हैं। इस प्रकार के सिक्के कम मिले हैं; पर वे अत्यन्त सुन्दर हैं (फ० ३, १२—१४)। इन मुद्राओं पर आभूषणधारी धोती पहने हुए राजा के आखेट समय का आवेश अत्यन्त सफलता से चित्रित किया गया है। वीणाधारी मुद्रा अवकाश कालीन राजा के वीणा-वादन से प्रेम की अभिव्यक्ति करती है। हो सकता है कि इन मुद्राओं पर पाटलिपुत्र महल के छत पर ग्रीष्म काल के संध्या समय में पर्यङ्क पर बैठकर वीणावादन से मनोविनोद करनेवाले राजा का चित्र हमारे सामने उपस्थित किया गया है (फ० ३, १५—१७)। प्रयाग की स्तम्भ-प्रशस्ति में कहा गया है कि संगीतकला में समुद्रगुप्त नारद तथा तुम्बरू से भी अधिक निपुण था। इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं कि राजा ने अपने संगीतप्रेम प्रजाजनों को अभिव्यक्त करने के लिए वीणा प्रकार के सिक्के संकलित किये हों। अश्वमेध प्रकार (फ० ३, ९—१२) की मुद्रा समुद्रगुप्त के प्रसिद्ध दिग्विजय को उद्घोषित करती है। जैसा गुप्त प्रशस्तिकारों ने वर्णन किया है कि अश्वमेध यज्ञ बहुत समय से लुप्तप्राय था, वैसा शायद नहीं था। तब भी यह निस्संदेह माना जा सकता है कि समुद्रगुप्त ने अभूतपूर्व ठाटबाट से अश्व-मेध यज्ञ किया था तथा उसीके स्मारकस्वरूप अश्वमेध सिक्के प्रचलित किये। निमंत्रित विद्वान् ब्राह्मणों तथा पुरोहितों को दक्षिणा देने में वे सर्वप्रथम उपयोग में लाये गये होंगे।

प्राचीन भारतीय मुद्राओं में वीणाधारी, व्याघ्रनिहंता तथा अश्वमेध प्रकार की मुद्राएँ अत्युच्च कला के नमूने मानी जाती हैं। राखालदास बनर्जी ने इन मुद्राओं को रूढ

प्रकार के (Freak type) सिक्के माने हैं। परन्तु इसमें संदेह नहीं कि ध्वजधारी, धनुर्धारी तथा परशुधारी प्रकारों की मुद्राओं का निर्माण जिस कुशलता तथा सावधानता से हुआ था, उससे भी उच्च प्रकार की कुशलता तथा सावधानता इन मुद्राओं के विविधविशेषों में दिखलाई देती है। बनर्जी बाबू ध्वजधारी, धनुर्धारी और परशुधारी मुद्राओं को नियमित प्रकार की मुद्रा मानते हैं। न जाने क्यों वे वीणा प्रकार के सिक्कों को एक दूसरी तरह के समझते हैं।

यह सत्य है कि वे बहुत दुष्प्राप्य हैं; पर समुद्रगुप्त के धनुर्धारी तथा परशुधारी प्रकार भी उसी तरह के हैं। अश्वमेध सिक्का परशुधारी तथा धनुर्धारी मुद्राओं से अधिक संख्या में मिलता है।

समुद्रगुप्त की मुद्राओं के पृष्ठभाग पर ऊँचे सिंहासनारूढ़ देवी की मूर्त्ति ही अधिकतर पाई जाती है। यह कुषाण ढंग का अनुकरण है और ध्वजधारी तथा धनुर्धारी सिक्कों पर उत्कीर्ण है (फ० १,३-४)। परशुधारी प्रकार की मुद्रा में इस मूर्त्ति को भारतीयकरण के फलस्वरूप देवी की चरण-पादुका के स्थान पर कमल दिखलाई पड़ता है (फ० ३, १-२)। वीणाधारी प्रकार में देवी बेंत की बनी तिपाई (मोढ़ा) पर बैठी है (फ० ३,१५-१७)। व्याघ्र-निहंता प्रकार में देवी मकर पर खड़ी है (फ० ३, १३-१४)। शायद कलाकार उसको गंगा के स्वरूप में दिखलाना चाहते थे। अश्वमेध मुद्रा के पृष्ठभाग पर रानी दत्तदेवी खड़ी है, जिसके कंधे पर चँवर विराजमान है और वह यज्ञीय अश्व के समीप परिचारिका की तरह दिखलाई पड़ती है।

काच की मुद्रा का वर्णन करते समय वह राजा कौन था, इस समस्या पर विचार किया जायगा। चूँकि काच का शासन थोड़े समय तक रहा, इसलिए उसने एक ही चक्रध्वज प्रकार का सिक्का चलाया था। इसमें राजा चक्रध्वज को धारण किये हुए है और दाहिने हाथ से आहुति दे रहा है। पृष्ठभाग पर एक देवी खड़ी है, जैसी पहले के व्याघ्र-निहंता मुद्रा पर अंकित है। काच के इस प्रकार का पीछे के किसी राजा ने अनुकरण नहीं किया।

द्वितीय चन्द्रगुप्त के आठ प्रकार के सिक्कों का अभी तक पता लगा है। आश्चर्य तो यह है कि पिता के समय के अत्यंत लोकप्रिय ध्वजधारी प्रकार को वह अत्यंत ही कम काम में लाया है। उस प्रकार के केवल एक ही सिक्का का पता लगा है। धनुर्धारी मुद्रा, जिसे समुद्र ने कम प्रचलित किया था, द्वितीय चन्द्रगुप्त के शासन में अत्यंत लोकप्रिय हो गया। बयाना की निधि में चन्द्रगुप्त की ९७२ मुद्राओं में ७९८ सिक्के इसी प्रकार के मिले हैं। प्रारंभ में निकाली गई मुद्राओं में देवी ऊँचे पीठवाले सिंहासन पर बैठी दिखलाई गई है, (फ० ४, ९-१२) जैसा पिछले कुषाण सिक्कों पर मिलता है। किंतु शीघ्र ही उस देवी को कमलासन पर बैठी लक्ष्मी बना दिया गया (फ० ४,१३-१५)। इस लोकप्रिय मुद्रा प्रकार

---

१. दि एज आफ इम्पीरियल गुप्ताज् पृ० २१५—१७

के पुरोभाग तथा पृष्ठभाग पर मनोहारी विविधता दिखलाने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया गया है। द्वितीय चन्द्रगुप्त का सिंह-निहंता प्रकार उच्च कला का एक सुन्दर नमूना है। इन प्रकार के कुछ सिक्के तो निस्संशय भारतीय कला के सर्वोत्तम उदाहरण हैं। मुद्रानिर्माताओं ने इस प्रकार में राजा और सिंह को अनेक ढंगों से दिखलाया है। किसी समय सिंह राजा के दाहिने (फ० ६,५-६) है और कभी बायें (फ० ६, १-४)। किसीमें सिंह राजा से डटा हुआ सामना करता है (फ० ६, १-४) तो किसीमें वह राजा पर झपट रहा है (फ० ६,५)। कभी राजा सिंह पर तनकर प्रहार करता है (फ० ६, ६-१०) तो कभी सिंह राजा से भाग रहा है (फ० ६, ५-७)। द्वितीय चन्द्रगुप्त के नये प्रकार की मुद्राओं में अश्वारोही तथा छत्रधारी प्रकार के सिक्के (फ० ७-८) अधिक प्रचलित थे। पहला प्रकार यह बतलाता है कि चन्द्रगुप्त अपने समकालीन राजाओं में कुशल अश्वारोही था। दूसरा प्रकार इन गुप्तशासकों के एकच्छत्र राज्य की ओर संकेत करता है और उसके महान् साम्राज्य की घोषणा करता है। चन्द्रगुप्त के पर्यङ्क प्रकार का सिक्का (फ० ६, १-५) सम्भवतः पिता के वीणा प्रकार का रूपान्तर है। इस प्रकार से क्या अभिव्यंजित करने का प्रयत्न किया गया है, यह कहना कठिन है। पर एक मुद्रा पर की रूपाकृति से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पर्यङ्क पर बैठ कर राजा किसी प्रकार का अभिनय देख रहा हो (फ० ६,१)। उस तरह के आसन पर बैठे राजा-रानी की एक स्वर्णमुद्रा मिली है जो राजा के व्यक्तिजीवन में एक घरेलू दृश्य दिखलाता है (फ० ६,६)। इस राजा के चक्रविक्रम प्रकार की एक ही स्वर्णमुद्रा प्राप्त हुई है, जिसपर राजा का व्यक्तिगत नाम नहीं है। पृष्ठभाग के चक्र विक्रम मुद्रा-लेख से पता चलता है कि उसे द्वितीय चन्द्रगुप्त ने ही प्रचलित किया था। पुरोभाग पर विष्णु खड़े हैं। उनका प्रभामण्डल वर्तुलद्वय युक्त है। उनके सामने प्रभामण्डलयुक्त राजा खड़ा है। विष्णु भगवान उसे भेंट दे रहे हैं जिसको लेने के लिए सम्राट् ने दाहिना हाथ फैलाया है (फ० ८, ६)।

द्वितीय चन्द्रगुप्त की स्वर्णमुद्राओं के पृष्ठभाग पर बैठी हुई देवी की आकृति है। अधिकतर वह कमलासन पर बैठी है; पर कुछ सिक्कों पर कुषाण ढंग से पीठवाले ऊँचे सिंहासन पर बैठी है। अश्वारोही प्रकार की मुद्रा पर वह बेंत के बने मोढ़े पर बैठी है। छत्रधारी मुद्राओं पर देवी कभी सम्मुख खड़ी है तो कभी बाईं ओर। कभी-कभी वह बाईं ओर चलती दिखाई गई है (फ० ८, ११-१५)। सिंह-निहंता प्रकार में वह सिंह पर बैठी है (फ० ६)। चन्द्रगुप्त के चाँदी तथा ताम्बे के सिक्कों का वर्णन यथा स्थान मिलेगा।

प्रथम कुमारगुप्त ने बहुत लम्बी अवधि तक राज्य किया (४१४-४५५ ई०) जो वहंश में वैभवपूर्ण था। इसने उतने प्रकार की स्वर्णमुद्राएँ प्रचलित कीं, जितने प्रकार की इसके पिता तथा पितामह मिलकर निकाल चुके थे। अभी तक चौदह प्रकार की मुद्राएँ ज्ञात हैं और सम्भव है कि कुछ अन्य प्रकार का भी पता लग जाय। धनुर्धारी (फ० ६,६-१४), अश्वारोही (फ० १०, ११-१६), सिंह-निहंता (फ० १२, १५) तथा छत्रधारी (फ० १२,१५)

को कुमारगुप्त ने जारी रक्खा। इन प्रकारों में छत्र प्रकार के सिक्के दुर्लभ हैं ; दूसरे सारे प्रचुर संख्या में मिलते हैं। कुमारगुप्त ने अपने पितामह के वीणाधारी, अश्वमेध तथा व्याघ्र-निहंता प्रकार को और प्रपितामह के राजारानी प्रकार को पुनर्जीवित किया (फ० १३, ७-१२ ; १४, ५; १२,११-१३;१४,४) कुमारगुप्त ने अनेक बिल्कुल नये प्रकार की मुद्राओं का भी प्रचलन किया था। उसकी कार्त्तिकेय प्रकार की मुद्रा में उस देवता का आदर किया गया है जिससे राजा का नामकरण 'कुमार' हुआ (फ० १३, ११-१३)। उसका खड्गधारी सिक्का प्रायः यह व्यक्त करता होगा कि राजा तलवार चलाने में कुशल था (फ० ११, १३-१४)। आखेट के सम्बन्ध में प्रथम कुमारगुप्त के तीन नये प्रकार के सिक्के प्रचलित किये गये—पहला गजारोही (फ० १२, १४-१५), दूसरा खड्गनिहंता (फ० १३, ३-६) तथा तीसरा गजारूढ सिंह-निहंता (फ० १३,१-२)। 'अप्रतिघ' प्रकार के सिक्के की गूढ़ता अभी तक हल न हो पाई।

कुमारगुप्त की स्वर्णमुद्राओं के पृष्ठभाग पर देवी की आकृति है। केवल कार्तिकेय प्रकार में देवी की जगह कार्तिकेय दिखलाये गये हैं। अश्वमेध प्रकार में महिषी यज्ञपशु की परिचर्या में चँवर के साथ खड़ी है। प्रायः देवी कमलासन पर बैठी अंकित की गई है। किंतु कभी वह बेंत के मोढ़े पर विराजमान है और कभी मोर को खिला रही है जो अश्वारोही व्याघ्रनिहंता तथा गजारोही सिंह-निहंतावाले सिक्कों में स्पष्ट प्रकट होता है। सिंह-निहंता प्रकार में पुराने ढंग का पालन हुआ है और देवी सिंह पर बैठी दिखलाई पड़ती है। गजारोही प्रकार में देवी सम्मुख खड़ी है।

प्रथम कुमारगुप्त के चाँदी के सिक्कों का विवरण यथास्थान दिया जायगा।

प्रथम कुमारगुप्त के शासन का अंतिम समय अत्यन्त दुःखमय रहा, जिसका वर्णन पहले अध्याय में किया गया है। उसके फलस्वरूप राजकीय कोश पर विषम आर्थिक संकट या कठिनाइयाँ आईं ; किंतु कुमारगुप्त ने हीन स्वर्ण की मुद्रा प्रचलित नहीं की। परन्तु चाँदी पानी के सिक्कों के प्रचलन के लिए उसे बाध्य होना पड़ा।

स्कन्दगुप्त के सिंहासनारूढ होने के पश्चात् गुप्त साम्राज्य की अवनति होने लगी, जिसका अनेक प्रकार का प्रतिबिंब मुद्राओं में मिलता है। गुप्त साम्राज्य के वैभवकाल में स्वर्णमुद्रा प्रकारों में जो आकर्षक विविधता और मौलिकता दिखाई देती थी, वह अब लुप्त होने लगी। स्वर्ण मुद्राओं की तौल तो १२० ग्रेन से बढ़ाकर १४४ ग्रेन की गई जो भारतीय परंपरा के 'सुवर्ण' सिक्कों की थी। किंतु स्वर्णमुद्राओं में शुद्ध सुवर्णांश अभी ५० फी सदी ही रहने लगा।

केवल दो प्रकार की मुद्राओं को स्कन्दगुप्त ने अधिक संख्या में चलाया। एक प्रकार था—धनुर्धारी (फ० १४,८-११) जो पहले के शासन में लोकप्रिय था। दूसरा प्रकार सर्वथा नवीन और मौलिक था, जिसमें यह दिखलाया गया है कि लक्ष्मी राजा को[1] मानों गुप्त साम्राज्य समर्पित कर रही है, जिसका संकेत एक प्रशस्ति में भी किया गया है (फ० १४,१२-१३)।

---

१. फ० १४ पर असावधानी से इस प्रकार का वर्णन राजारानी प्रकार में दिया गया है।

बयाना की निधि में छत्रधारी प्रकार का एक अद्वितीय सिक्का मिला है, जिसके पृष्ठ पर 'क्रमादित्य' मुद्रालेख उत्कीर्ण है। सम्भवतः वह स्कन्दगुप्त की मुद्रा है। वही स्थिति अकेले अश्वारोही मुद्रा की भी है, जिसपर पृष्ठ की ओर 'क्रमजित'(-क्रमादित्य ?) खुदा है। स्कंदगुप्त का विरुद क्रमादित्य था।

स्कन्दगुप्त के चाँदी के सिक्कों का विवरण आगे एकादश अध्याय में दिया जायगा।

स्कन्दगुप्त के उत्तराधिकारी धनुर्धारी प्रकार के ही सिक्के तैयार कराते रहे। यही स्थिति पुरगुप्त, नरसिंहगुप्त, द्वितीय कुमारगुप्त, विष्णुगुप्त तथा वैन्यगुप्त के शासन में रही। इन राजाओं की मुद्रा मिश्रित सोने धातु की है, जो तौल में १४४ ग्रेन से भी अधिक है। पिछले गुप्त नरेशों में केवल प्रकाशादित्य ने सुवर्ण-तौल के शुद्ध सोने की मुद्रा तैयार की थी। उसकी मुद्रा अश्वारूढ सिंह-निहंता प्रकार की थी। प्रकाशादित्य किस गुप्त सम्राट का विरुद था, यह अब तक मालूम नहीं हुआ है।

तीसरा अध्याय

प्रथम चन्द्रगुप्त की मुद्राएँ

प्रथम चन्द्रगुप्त ने राजा-रानी प्रकार की मुद्रा प्रचलित की, जो कम संख्या में मिली है। उत्तरप्रदेश के मथुरा, अयोध्या, लखनऊ, सीतापुर, टांडा, गाजीपुर, बनारस आदि स्थानों से तथा भरतपुर रियासत के बयाना से भी सिक्के उपलब्ध हुए हैं। आश्चर्य तो यह है कि बिहार में, किसी स्थान से भी, उसके सिक्के नहीं मिले हैं; यद्यपि गुप्त सम्राट् इस प्रान्त में दीर्घकाल तक शासन करते रहे। उन सिक्कों के व्यास ७५" से ८" तक हैं जो तौल में ११२ से १२३-८ ग्रेन तक के हैं। उनकी औसत तौल १२० ग्रेन है। इस प्रकार की दस मुद्राएँ बयाना निधि में मिलीं और नौ सिक्के बृटिश संग्रहालय तथा छः लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित हैं।[१]

उन सिक्कों के पुरोभाग में राजारानी सम्मुख खड़े हैं। राजा रानी को कुछ भेंट कर रहा है, जिसे महिषी ध्यानपूर्वक देख रही है। विभिन्न मुद्राओं पर भेंट की वस्तु पृथक्-पृथक् प्रकट होती है। एक स्थान पर यह अंगूठी मालूम पड़ती है, जिसे राजा अंगूठे और तर्जनी के बीच पकड़े हुए है (फ० १, ८)। किसी पर यह सिन्दूरदानी-सी दिखाई पड़ती है। राजा उसके ढक्कन को अंगुलियों से पकड़े है और उसका वृत्ताकार या वर्गाकार हिस्सा ऊपर दिखलाई पड़ता है। तीसरे स्थान पर वही वस्तु कंकण (कड़ा) (फ० १, १०) के रूप में है; किन्तु उसे उस विशिष्ट ढंग से पकड़ा नहीं जा सकता, जैसा उस मुद्रा पर दिखाया गया है। एक स्थान पर सिन्दूरदानी[२] पुष्पकली की तरह दृष्टिगोचर होती है (फ० १, ६) जो सम्भवतः उसके गोल किनारे को गलत ढंग से दिखलाने के कारण ऐसी हो गई है।

कुछ दुष्प्राप्य मुद्राओं पर राजा तथा रानी के पैरों के बीच में विन्दु-समूह दिखलाई पड़ता है (फ० १, १२-१३)।[३] इसीके सदृश पूर्ववर्ती मुद्राओं पर विन्दुसमूह के स्थान को ब्राह्मी अक्षर ने ले रक्खा था। उनको सम्भवतः प्रांतपतियों अथवा टकसाल के नामों के प्रथम

---

१. संग्रहालयों में मुद्राओं की जो संख्या इस ग्रंथ में दी गई है, वह उनके प्रकाशित कॅटलॉगों से दी गई है। हो सकता है कि पुस्तक प्रकाशन के बाद और सिक्के मिले हों।

२. स्त्रियाँ सिन्दूरदानी के मूंठ को सिन्दूर या कुमकुम से स्पर्श करा कर माथे पर बिन्दी लगाती हैं।

३. देखिए—वाई० एम० सी०; भा० १, पृ० १००।
बी० एम० सी० (सी० डी०) फ० २, २।

अक्षर माना गया है। गुप्तकाल में इस ढंग को त्याग दिया गया। कुछ निर्माताओं ने उस अक्षर के स्थान पर एक विभूषित वस्तु को रक्खा, जो तारा या बिन्दुसमूह के स्वरूप का था। कुछ स्थानों पर वह ऐसे सुन्दर ढंग से खोदा गया है कि महिषी की लटकती हुई चादर पर का फूल-सा मालूम होता है (फ० १, १३)। कहीं-कहीं उसकी खुदाई भद्दे ढंग से की गई है (फ० १,१२)।

राजा का नाम बायें हाथ के नीचे लम्बवत् लिखा मिलता है तथा कुछ अक्षर ध्वजदण्ड के बाहर भी वैसे ही खुदे गये हैं। कभी नाम चंद्र (फ० १, १३) और कभी चन्द्र पढ़ा जाता है (फ० १, ८-१२)। महिषी कुमारदेवी का नाम उसकी खड़ी आकृति के पीछे उत्कीर्ण मिलता है। नाम के पहले सम्मान-सूचक पद 'श्री' जुड़ा पाया जाता है। किन्तु कभी श्री शब्द नाम के अन्त में भी मिला है (फ० १, ११)। बिरले ही मुद्रा में श्री शब्द अंत में जुड़ा देखा गया है। ऐसा उदाहरण पश्चिमी क्षत्रप नरेश दामजद के सिक्कों पर मिलता है, जहाँ 'दामजद-श्रियः, यह मुद्रालेख उत्कीर्ण है [1]। पृष्ठभाग पर सिंहवाहिनी देवी की आकृति मिलती है, जिसमें उसके पैर नीचे लटके हुए हैं। दुष्प्राप्य सिक्के पर देवी का एक पैर ऊपर की ओर मुड़ा दिखलाई पड़ता है (फ० १, ११)। देवी अश्वारोही ढंग से न कभी सिंह पर बैठी दिखलाई पड़ती है और न सिंह चलता हुआ दिखलाया गया है। पीछे इन्हीं विभिन्नताओं का समावेश द्वितीय चन्द्रगुप्त के सिंहनिहंता सिक्कों पर किया गया है। पृष्ठभाग पर लिच्छवी जाति का नाम 'लिच्छवयः' शब्द से व्यक्त किया गया है।

पृष्ठभाग पर देवी के व्यक्तित्व के विषय में निश्चित विचार करना कठिन है। अगले पृष्ठों में इस पर विचार किया जायगा कि तृतीय कनिष्क के सिक्कों से कुछ अंश में यह चिह्न लिया गया था, जहाँ देवी सिंह पर बैठी है। किन्तु उसका नाम स्पष्ट नहीं है (फ० १,७)। कुछ अंश में वह चिह्न शक-मुद्रा का अनुकरण है। जहाँ देवी सिंहासन पर बैठी है और अर्दोक्षो नाम से वर्णित की गई है (फ० १,३)। उस देवी को सिंहवाहिनी दुर्गा का रूप देने के लिए सिंहासन के स्थान पर जान-बूझकर सिंह को प्रतिष्ठित किया गया है। यह असम्भव नहीं कि दुर्गा लिच्छवी राजवंश की संरक्षिका देवी हो, जिसका नाम पृष्ठभाग पर मिलता है। श्री ऍलन ने लिखा है कि देवी के पैर कमल पर स्थित हैं; किन्तु जिस वस्तु पर देवी के पद निहित हैं, वह कमल से सर्वथा भिन्न है। यह फ० ३,१-२ में दिखाई गई कमल की आकृति से विदित होगा। संभवतः देवी के पाद वर्तुलाकृति चटाई पर रखे हुए दिखाये गये हैं।

कुछ मुद्राओं पर देवी की दाहिनी ओर आधार-रहित त्रिभुज या बिंदुयुक्त त्रिभुज अंकित किया गया है। बाईं ओर जो चिह्न अंकित किया गया है, उसके सामने उसके समान दूसरा चिह्न दिखाने की इच्छा से वह अंकित किया गया होगा।

प्रायः सभी मुद्राशास्त्रवेत्ताओं ने चन्द्रगुप्त कुमारदेवी की मुद्रा को प्रथम चन्द्रगुप्त से सम्बन्धित किया है। किन्तु श्रीऍलन का विचार है कि इसे समुद्रगुप्त ने अपने पिता के

---

१. ब्रि० म्यू० कै० (ए० के०) पृ० ८१।

विवाह तथा अपने लिच्छवी वंशज होने की यादगार में निकाला था [१]। प्रस्तुत लेखक ने श्री ॲलन के कथन की विस्तृत आलोचना की है कि उनके प्रमाण कितने अमान्य तथा कमजोर हैं [२]। मातापिता की स्मृति-रक्षा में सिक्के बनानेवाला भी स्वयं अपना नाम सिक्के के पृष्ठभाग पर उत्कीर्ण कराता है। उदाहरणार्थ, यूनानी राजा ॲगटोमेकस तथा यूक्रेतिद ने (फ० १,१-२) अपनी स्मारक मुद्राओं पर अपना-अपना नाम पृष्ठभाग पर उत्कीर्ण कराया था। उसी प्रकार समुद्रगुप्त भी एक छोटा मुद्रालेख मातृपितृभक्तः समुद्रगुप्तः,—पृष्ठभाग पर दे सकता था। अश्वमेध सिक्कों पर अपना नाम न लिख कर उसने 'अश्वमेध पराक्रमः' की उपाधि से ही सभी आवश्यक बातों का संकेत कर दिया है। कोई कारण नहीं मालूम पड़ता है कि केवल इसी प्रकार के सिक्के पर उसने अपना नाम या विरुद देना उचित न समझा।

उन दिनों पाटलिपुत्र, गया और प्रयाग प्रथम चन्द्रगुप्त के राज्य में स्थित थे जो व्यापार तथा तीर्थ के प्रधान केन्द्र भी थे। वहाँ के बाजारों में पिछले कुषाण राजाओं की स्वर्ण मुद्राएँ अवश्यमेव प्रचलित होंगी। इस तरह का एक सिक्का पाटलिपुत्र के कुम्हरार की खुदाई में निकला है। दुर्भाग्यवश वह चुरा लिया गया। स्वर्ण मुद्राओं के अनुकरण पर प्रथम चन्द्रगुप्त के सोने के सिक्के तैयार किये गये होंगे। हमलोग यह मानने को बाध्य नहीं हैं कि चन्द्रगुप्त ने सिक्के ही नहीं चलाये; वे समुद्रगुप्त के द्वारा ही शुरू किये गये, जब उसका साम्राज्य पंजाब तक फैला और गुप्त शासकों की नजर में पहले-पहल सुवर्ण कुषाण मुद्राएँ आईं। चन्द्रगुप्त के राज्य-काल में भी, कुषाण-स्वर्णमुद्रा से मगधवालों को परिचय था, जब कि गुप्तसाम्राज्य पंजाब के पिछले कुषाण-नरेशों की राज्य-सीमा तक विस्तृत था।

श्री ॲलन इस बात पर विशेष जोर देते हैं कि यदि चन्द्रगुप्त कुमारदेवीवाले सिक्के को प्रथम चन्द्रगुप्त-द्वारा प्रचलित मुद्रा माना जाय तो यह समझाना कठिन हो जायगा कि गुप्त टकसालवालों ने इस प्रकार की मुद्राओं पर दिखाई देनेवाली अभिनवता तथा कल्पकता क्यों छोड़ दी और समुद्रगुप्त के ध्वजधारी सिक्के निकालने के समय फिर क्यों कुषाण मुद्राओं का अन्धानुकरण शुरू किया।

यह आलोचना ठोस आधार पर स्थित नहीं है। पंजाब में उन दिनों दो प्रकार के सिक्के प्रचलित थे [३]। शिव प्रकार वाले सिक्के, जिनमें शिवजी पृष्ठ की ओर अपने वाहन नन्दी के पास खड़े हैं (फ० १,४), पश्चिमी पंजाब में सर्वत्र प्रचलित थे।

---

१. ब्री० म्यू० कै० सी० डी० भूमिका पृ० ११४-११८।

२. न्यूमि० सप्लीमेंट, १९३७ पृ० १०५-११।

३. पूर्वी पंजाब में पिछले कुषाणों के प्रचलित सिक्कों पर बायें हाथ के नीचे विभिन्न राजाओं के नाम लिखे हैं। किंतु राजदण्ड के बाहर सदा शाक शब्द लिखा मिलता है। इसे सीथियन या पिछले कुषाण शैली भी कह सकते हैं। हमने उनका उल्लेख 'कुषाण शैली के सिक्के' ऐसा किया है।

आरदोक्षो प्रकार का सिक्का, जिसके पृष्ठ की ओर देवी सिंहासन पर बैठी है, पूर्व पंजाब में प्रचलित था। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि समुद्रगुप्त के दण्डधारी प्रकार का सिक्का दूसरे प्रकार का काफी अनुकरण करता है। उस प्रकार के सिक्कों पर समुद्रगुप्त कुषाण शैली का लम्बा कोट तथा पतलून पहने बाईं ओर खड़ा है और वेदी पर आहुति दे रहा है। किंतु कुषाण ढंग की नुकीली टोपी के स्थान पर भारतीय पगड़ी तथा त्रिशूल के स्थान पर गरुड़ध्वज दिखलाई पड़ते हैं। गुप्त वंश का यही राज्य-चिह्न था। पृष्ठ भाग पर अधिक अनुकरण दिखाई देता है। मूल सिक्कों पर की अरदोक्षो देवी अपने हाथ में कॉर्नुकोपिया लेकर वहाँ बैठी हैं। केवल उसका ग्रीक-लिपि का नाम-लेख मिटा कर वहाँ संस्कृत में 'पराक्रमः' यह मुद्रालेख खुदवाया है। उस ओर, आरदोक्षो के नाम को संस्कृत लेख 'पराक्रमः' में बदल दिया गया है। यही राजा की उपाधि थी (फ० १,१४-१५;२,१-७)।

यह निसंदेह कहा जा सकता है कि समुद्रगुप्त के दण्डधारी प्रकारवाले सिक्के में प्रथम चन्द्रगुप्त के राजारानी मुद्रा से कुषाणों का अनुकरण अधिक है। परन्तु अनुकरण के तुलनात्मक अध्ययन से यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि वह (दण्डधारी प्रकार) कालक्रमानुसार दूसरे से पहले प्रचलित किया गया था। दूसरे में मूल सिक्के से कम अनुकरण दिखलाई पड़ता है। उदाहरण के लिए, द्वितीय चन्द्रगुप्त के धनुर्धारी सिक्कों में (फ० ४,६-१०) चन्द्रगुप्त-कुमारदेवी ढंग से भी कुषाण मुद्राओं का अधिक अनुकरण है। हम इस बात को स्वीकार नहीं कर सकते कि द्वितीय चन्द्रगुप्त के धनुर्धारी सिक्कों में कुछ ढंग ऐसे भी हैं जो स्मारक मुद्रा से पहले के हैं, जिन्हें समुद्रगुप्त ने प्रचलित किया था। यों तो स्कन्दगुप्त के धनुर्धारी सिक्कों में सम्राट् कुषाण ढंग का कोट तथा पायजामा (फ० १४,८-११) पहने है; किंतु कालक्रम में यह द्वितीय चन्द्रगुप्त के उसी प्रकार के सिक्के से पहले का नहीं माना जा सकता, जिसमें राजा धोती पहने दिखलाया गया है।

चद्रगुप्त-कुमारदेवीवाली मुद्राओं में ढंग की मौलिकता तो अवश्य है: किंतु वह राजनीतिक परिस्थिति का परिणाम था। यह सभी स्वीकार करते हैं कि गुप्त शासक चन्द्रगुप्त का लिच्छवी वंश में विवाह होने के कारण सम्राट् पद प्राप्त करना सुलभ हो गया था। उसकी राज्यमहिषी लिच्छविकुलोद्भवा कुमारदेवी थी। इंगलैंड में ई० सन् १६८६ में परिस्थिति इस प्रकार की थी—राज्य की वारिस मेरी थी, किंतु पार्लमेंट ने उसके पति तृतीय विलियम को राज्य करने को बुलाया। समझौता यह हो गया कि विलियम को केवल रानी का सहचर (Prince consort) न माना जायगा; किंतु राज्याधिकार के साथ राजा की पदवी भी दी जायगी। फलस्वरूप तृतीय विलियम तथा द्वितीय मेरी के जीवन-काल में जितने सिक्के निकले, उनपर दोनों राजा-रानी के नाम तथा आकृति खुदे गये। सम्भव है कि लिच्छवी लोगों ने भी ऐसा आग्रह किया हो कि मुद्राओं पर न केवल चन्द्रगुप्त का, बल्कि कुमारदेवी की आकृति के साथ नाम भी पुरोभाग पर खोदा जाय और लिच्छवियों का नाम पृष्ठ भाग पर प्रथम चन्द्रगुप्त के सिक्कों पर। इसलिए पुरोभाग में राजा-रानी अंकित किये गये हैं जिससे उसमें मौलिकता का आभास मिलता है।

श्री ॲलन जैसा कहते हैं, उस प्रकार की मौलिकता पृष्ठ भाग पर दिखाई ही नहीं देती है। वहाँ सिंहवाहिनी देवी दिखाई गई है; किंतु वह कुषाण सिक्कों पर भी मिलती है। हुविष्क की मुद्रा पर नाना देवियाँ सिंह पर बैठी दिखलाई गई हैं (फ० १,६)। तीसरी सदी में पिछले कुषाण नरेश तृतीय कनिष्क के एक प्रकार के सिक्के पर भी सिंहवाहिनी देवी का चित्र है (फ० १,७)। इस प्रकार में देवी के सिंह पर बैठने तथा चादर के ओढ़ने का ढंग प्रथम चन्द्रगुप्त के सिक्कों के सदृश है (फ० १,८ और १०)। किंतु देवी के बायें हाथ में कॉर्नुकोपिया के स्थान पर दण्ड है। इसके देखने से प्रकट होता है कि प्रथम चन्द्रगुप्त के सिक्के के पृष्ठ भाग में इन दोनों प्रकार के सिक्कों का थोड़ा-बहुत अनुकरण कुछ शक मुद्रा के ढंग पर किया गया है, उसमें विशेष मौलिकता नहीं है। इससे हमें बाध्य होकर उनका आरंभिक काल समुद्रगुप्त के शासन-काल के अंत में मानना पड़ेगा।

यह भी संभव है कि सिंहवाहिनी दुर्गा लिच्छवी लोगों की कुलपूज्या देवी हो, इसलिए प्रथम चन्द्रगुप्त के सिक्के के पृष्ठभाग पर इसे स्थान मिला, जहाँ लिच्छवियों का नाम भी उत्कीर्ण किया गया है। पर यहाँ यह कहना उचित है कि अभी तक यह ठीक प्रमाणित न हो सका है कि दुर्गा लिच्छवी वंश की कुलदेवी थी। तथापि अन्य पुरातत्त्व सामग्रियों के आधार पर यह कहना ठीक भी है कि वैशाली में सिंह लोकप्रिय था। वहाँ के अशोक स्तम्भ का सिर सिंह से विभूषित है तथा ध्रुवस्वामिनी की मुद्रा पर भी यह चिह्न मिला है। गुप्त-लिच्छवी समझौते से बाध्य होकर चंद्रगुप्त को केवल एक ही प्रकार के सिक्के चलाना आवश्यक हुआ, इसलिए उसकी मुद्राओं के विविध प्रकार नहीं मिलते हैं। उसके सिक्के भी शासन के पिछले भाग में प्रचलित किये गये होंगे। अपने राज्यकाल के अंतिम भाग में उसने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की तथा गुप्त संवत् का आरम्भ किया। शिवाजी की भाँति राज्यसिंहासन के बाद प्रथम चन्द्रगुप्त चार अथवा पाँच वर्षों के भीतर ही मर गया। गुप्त टकसालवाले मुद्रानिर्माण में अनभ्यस्त थे और नये-नये प्रकार के सिक्के निर्माण करने के लिए जो अनुभव आवश्यक होता है, वह उनको प्राप्त नहीं था। लिच्छवी वंश के साथ राजनीतिक सम्बन्ध से राजा-रानी प्रकार के सिक्के का प्रचलन अवश्यम्भावी था; क्योंकि उससे लोगों को साम्राज्य स्थापन में लिच्छवियों के साहाय्य की भी कल्पना मिल सकती थी। मुद्राओं में दूसरे नये प्रकार का आरंभ करना असंभव-सा हो गया था।

जो प्रमाण उपलब्ध हो सके हैं, उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि राजा-रानी प्रकार के सिक्के, जिन पर चन्द्रगुप्त तथा कुमारदेवी का नाम उत्कीर्ण है, प्रथम चंद्रगुप्त के शासन-काल में ही प्रचलित किये गये थे। यह कहना आधार-रहित होगा कि समुद्रगुप्त ने मातापिता के स्मरणार्थ वे सिक्के निकाले थे। यदि ऐसा होता तो उसका नाम या विरुद पुरोभाग या पृष्ठभाग पर अवश्य उत्कीर्ण हुआ मिल जाता।

चन्द्रगुप्त के सिक्के निम्नलिखित प्रकार के मिले हैं—

राजारानी प्रकार

पुरोभाग—प्रायः प्रभामण्डल से युक्त चन्द्रगुप्त कभी मोतियों से विभूषित, पगड़ी, पतलून तथा लम्बा नुकीला कोट पहने बायें खड़ा है। उसके कानों में कुण्डल, छाती पर हार और हाथों में कड़ा है। बायें हाथ में चन्द्रकोर से अंकित ध्वज है जिसमें कभी-कभी फीता भी लगा है। दाहिने हाथ से राजा रानी कुमारदेवी को भेंट दे रहा है, जो उसके संमुख प्रायः प्रभामण्डल से युक्त खड़ी है। रानी साड़ी, ओढ़नी तथा शिरोवस्त्र पहने है। किनारे पर कभी मोती दिखाई पड़ते हैं। रानी के शरीर पर कुण्डल, हार और कंकण है। दाहिना हाथ कमर पर है और बायां नीचे लटका है। राजारानी के बीच कभी अर्द्धचन्द्र बना रहता है।

मुद्रालेख—राजा के बायें हाथ के नीचे लम्बवत् 'चन्द्र' दण्ड के बाहरी भाग में उसी तरह 'गुप्त' खुदा है। दाहिनी ओर ८,११[1] के बीच में 'श्री कुमारदेवी' या 'कुमारदेवी श्री'।

पृष्ठभाग—बिंदु-भूषित वर्तुल में, प्रभामण्डलयुक्त देवी, चोली तथा साड़ी पहने, चादर ओढ़े, हार तथा टीका सहित, धराशायी सिंह पर बैठी हुई[2]; दाहिने हाथ में पाश तथा बायें हाथ में कॉर्नुकोपिया, पैर तले गोल मणियों से आभूषित चटाई। सिंहासन के पीठ के अवशेष कभी-कभी प्रकट होते हैं। बाईं ओर प्रतीक (symbol) दाहिनी ओर कभी-कभी लेख सीधी पंक्ति में, 'लिच्छवयः' लिखा है।

फलकस्थित मुद्राओं का वर्णन

१—सोना, तौल .११७.६ ग्रेन, व्यास .८५" ब० निधि फ० १/१

पुरोभाग—राजारानी प्रभामण्डलयुक्त नहीं है जो असाधारण मालूम पड़ता है। राजा मोती-जड़े टोपी पहने और बटनदार पतलून पहने हैं। अंगूठे तथा तर्जनी के मध्य भाग में अँगूठी-सी मालूम होती है, जिसे वह दे रहा है। बायें हाथ में ध्वज है जिसके सिरे पर अर्द्धचन्द्र है। मुद्रालेख 'चन्द्रगुप्त'—अंतिम दो अक्षर अर्द्ध-लुप्त हो गये हैं। रानी के पीछे 'श्रीकुमार देवी' अंकित है।

पृष्ठभाग—सिंहासन की पीठ दिखलाई नहीं पड़ती। सिंह का मुख दाहिनी ओर और चिह्न बाईं ओर है।

---

१. इन संख्याओं का संकेत घड़ी पर लिखी हुई संख्याओं के स्थानों से है, जिससे पाठकों को मुद्रालेख के स्थान का ठीक पता आसानी से मिल जाय।

२. उसके पैर दोनों ओर लटके हैं। किसी मुद्रा पर (फ० १,११) बायाँ पैर सिंह के सिर पर मुड़ा है। देवी कभी भी सवारी करते नहीं दिखलाई गई है; और न सिंह चलते हुए मालूम पड़ता है जैसा उसके पौत्र के सिक्कों से मालूम पड़ता है।

२. सोना, .८″, १२१.३ ग्रेन, ब० नि० फ० १′३ (फ० १, ८)

पुरोभाग—प्रभामण्डल युक्त राजा, रानी भेंट की वस्तु मूँठ से पकड़े हुई है, किन्तु उसका गोल शिरोभाग बाहर दिखलाई पड़ता है। अर्द्धचन्द्र दिखलाई नहीं पड़ता। मुद्रालेख 'चन्द्रगुप्त' तथा 'श्रीकुमार देवी'।

पृष्ठभाग—सिंहासन की पीठ दाहिनी ओर दृष्टिगोचर होती है। धराशायी सिंह बाईं ओर; मुद्रालेख 'लिच्छवय;' (फलक १,६)।

३. सुवर्ण, .८५″, ११८.४ ग्रेन, ब० नि० (फ० १,६)

पुरोभाग—राजा-रानी के मध्य में अर्धचंद्र, ध्वज का अर्धचंद्र अदृश्य, मुद्रालेख पूर्ववत्, किन्तु अस्पष्ट और टूटे अक्षरों में। भेंट की वस्तु बड़े गोलवाली सिंदूरदानी हो या विचित्र तरह से रक्खा हुआ कंकन।

पृष्ठभाग—सिंह-मुख दाहिनी ओर; सिंहासन की पीठ दाहिनी ओर साफ दिखलाई पड़ती है, बाईं ओर का चिह्न मानों उसकी प्रतिरूपता के लिए बनाया है। मुद्रालेख—'लच्छवयः' (फ० १, १०)।

४. सुवर्ण; ८;″ १२३.८ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कै० गु० डा० (फ० ३, १०)।

पुरोभाग राजा-रानी के सिर मध्य अर्द्धचन्द्र, राजा के हाथ दण्ड अदृश्य, प्रायः सिन्दूरदानी की मूँठ तथा गोलाई का भाग स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। मुद्रा-लेख पूर्ववत्, किन्तु कुमार देवी का नाम (कु) मारदेव मिलता है। सम्मानसूचक शब्द 'श्री' अंत में।

पृष्ठभाग—सिंहासन की पीठ दिखलाई पड़ती है। सिंह-मुख दाहिनी ओर। मुद्रा-लेख 'लच्छवयः' (फ० १, ११)।

५. सुवर्ण, .८५,″११८ ग्रेन; बोडेलियन संग्रह (न्यू० क्रा० १८६१ फ० २, १)।

पुरोभाग—गंदी बनावट की मुद्रा, भेंट करनेवाली वस्तु को हैंडल से पकड़ा गया है और उसका शिरोभाग न तो स्पष्ट वर्गाकार है, न गोलाकार। मुद्रा-लेख पूर्ववत् है। किन्तु रानी का नाम अंकित नहीं हो सका है। राजा-रानी के पैर के मध्य तीन बिन्दु।

पृष्ठभाग—सिंह-मुख बाईं ओर, सिंहासन की पीठ सर्वथा अदृश्य, लेख अधूरा, चिह्न केवल बाईं ओर (फ० १, १२)।

६, सुवर्ण, .८,″ ११३ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कै० गु० डा० (फ० ३, १)।

पुरोभाग—दण्ड के सिरे पर अर्द्धचन्द्र, भेंट देनेवाली वस्तु का हैंडल मुट्ठी में और शिरो भाग बाहर, राजा-रानी के पैरों के मध्य बिन्दु-समूह। मुद्रालेख—'चंद्रगुप्त' 'श्री कुमारदेव;' 'च' पर अनुस्वार।

पृष्ठभाग—सिंह-मुख बाईं ओर, मुद्रालेख अधूरा, 'लच्छवयः' (फ० १, १३)।

इस अध्याय में उल्लिखित मुद्राओं का विवरण

(फलक १ पर)

अगँथोकल्स की स्मारक मुद्रा (Commemorative medal)

चाँदी, १.३;" २६३.५ ग्रेन; ब्रि० म्यू० कै० ग्री० सि० (फलक ४,३)।

पुरोभाग—बिंदुभूषित वर्तुल में यूथिडिमस का दक्षिणमुखी सिर, पट्टबंधविभूषित, मुद्रालेख यूनानी अक्षरों में, यूथिडेमाय थेयाय।

पृष्ठभाग—चट्टान पर हेरैकिल बैठा है, जाँघ पर गदा रखे, मुद्रालेख यूनानी अक्षरों में, डिकेइऑय अगाथोक्लियॉय बॅसिलियॉस (फ० १, १)।

यूक्रेतिद की स्मारक मुद्रा

चाँदी, १.२," तौल अज्ञात, पं० म्यू० कैट भा १ (फ० ६,४)।

पुरोभाग—हेलेक्लियस तथा लेओडिके की ऊर्ध्वभागीय युगल आकृति; मुद्रालेख यूनानी अक्षरों में—ऊपर हेलियोक्लियॉय, नीचे काथ लेओडिकेस।

पृष्ठभाग—यूक्रतिद का ताज पहने सिर; लेख ऊपर की ओर बॅसिलियॉस मेगालॉस, नीचे यूक्रेतिडॉय (फ० १, २)।

पूर्वी पंजाब के शक या पिछले कुषाण शैली के सिक्के

सुवर्ण, .८;" तौल अज्ञात, क० ले० इ० सि० (फ० २,१)।

पुरोभाग—ऊँची टोपी, बटनदार नुकीला कोट, पायजामा बटन वाला, खड़ा राजा, बायें हाथ में ध्वज लेकर, दाहिने हाथ से वेदी पर आहुति दे रहा है। राजा के सम्मुख त्रिशूल; अधूरे और अस्पष्ट यूनानी अक्षरों में वर्तुलाकार लेख; ब्राह्मी में लेख, बायें स्कन्द के नीचे भी; ध्वजदंड के बाहर लम्बवत् 'शाक'।

पृष्ठभाग—ऊँचे पीठवाले सिंहासन पर देवी आरदोक्षो बैठी है, बायें हाथ में कानुकोपिया और दाहिने में पाश; अधूरे यूनानी अक्षरों में अस्पष्ट लेख 'अर्दो' (फ० १, ३)।

पश्चिमी पंजाब के पिछले कुषाण शैली की मुद्रा

सुवर्ण; ६", तौल अज्ञात; क० ले० इ० सि०, (फ० १, १३-१४)।

पुरोभाग—फलक १,३ के सदृश राजा, अधूरे अस्पष्ट यूनानी अक्षरों में वर्तुलाकार लेख, ध्वजदंड के बाहर ब्राह्मी में लेख—'रोद'; पैरो के बीच 'यो' या 'धो', बाईं ओर 'श'।

पृष्ठभाग—शिवजी अपने वाहन नन्दी के समीप खड़े हैं; बायें हाथ में त्रिशूल, दाहिने में पाश; चिह्न बायें; दाहिने मुद्रालेख और ग्रीक लिपि में ओएशो (फ० १,४)।

पूर्वी पंजाब के राजा भद्र द्वारा प्रचलित सिक्के

सुवर्ण, .८"; तौल अज्ञात; क० ले० इ० सि० (फ० २, १२)।

पुरोभाग—फलक १,३ की तरह ; यूनानी लेख अदृश्य; बायें हाथ के नीचे भद्र, जिसे चन्द्र भी पढ़ा जा सकता है; दण्ड के बाहर 'शिलद'।

पृष्ठभाग—लेख पूर्ववत् , किंतु अस्पष्ट (फ० १, ५)।

हुविष्क का सिक्का

सुवर्ण, .८"; अज्ञात तौल; पं० म्यू० कै० (फ० २०, १०)।

पुरोभाग—दाहिने राजा की दक्षिणमुखी ऊर्ध्वभागीय आकृति, दाहिने हाथ में गदा, वर्तुलाकर यूनानी लेख कुछ अदृश्य—शाओ नैनोशाओ ओएष्की कोशानो।

पृष्ठभाग—नाना देवी, सिंहवाहिनी, पैर नीचे लटका हुआ, दाहिने हाथ में गदा; अस्पष्ट यूनानी लेख, नाना (फ० १, ६)।

तृतीय कनिष्क का सिक्का

सुवर्ण, १.२", तौल अज्ञात; ज० ए० सो० बं० १६३३ एन पृ० ७ (फ० १, ३-५)।

पुरोभाग–१–६ सिक्कों के सदृश राजा खड़ा है, बायें हाथ में त्रिशूल, सामने भी दूसरा त्रिशूल, अधूरा अस्पष्ट वर्तुलाकर यूनानी लेख 'कनेष्को शाओ,' बाईं ओर।

पृष्ठभाग—वाममुखी धराशायी सिंह पर आरूढ देवी, दाहिने हाथ में पाश, बायें में राजदण्ड, कन्धे से पीछे अर्द्धचन्द्र चिह्न, ऊपरी भाग में यूनानी अक्षर का लेख पढ़ा नहीं जाता; देवी के सिंह पर बैठने का तथा चादर ओढ़ने का ढंग प्रथम चन्द्रगुप्त की मुद्रा (फ० १, ८, ११, १३) के सदृश है (फ० १, ७)।

चौथा अध्याय

समुद्रगुप्त के सिक्के

मुद्रा-निर्माण का कार्य, जो प्रथम चन्द्रगुप्त के शासन-काल में देर से प्रारम्भ हुआ, उत्साह तथा कौशल के साथ उसके पुत्र और उत्तराधिकारी समुद्रगुप्त के द्वारा आगे चलाया गया। जिन राजनीतिक कारणों से प्रथम चन्द्रगुप्त एक ही मुद्रा प्रकार में सीमित रहा, वह परिस्थिति जाती रही। समुद्रगुप्त लिच्छवी तथा गुप्तवंश का उत्तराधिकारी था। इसलिए उसने अपनी लम्बी अवधि में अनेक प्रकार के सिक्के तैयार कराये। उनमें दण्डधारी सिक्का अधिक प्रिय था। वह पूर्वी पंजाब में प्रचलित पिछले कुषाण सिक्कों का अनुकरण-मात्र था। उनमें धनुषधारी और परशुधारी प्रकार के सिक्के सुधारकर तैयार किये गये थे। इनमें राजा दण्ड के स्थान पर धनुष या परशु लिये दिखलाया गया है। इन्हें सैनिक ढंग के सिक्के कहना चाहिए। सम्राट् ने दिग्विजय के पश्चात् अश्वमेध यज्ञ किया, जिस कारण अश्वमेध सिक्के तैयार किये गये। अपना क्रीडा-प्रेम तथा गायननैपुण्य आनेवाली पीढ़ी को भी दिखाने के लिए व्याघ्रनिहंता और वीणाप्रकार के सिक्के उसने निकाले। इन सब में दण्डधारी प्रकार ही लोकप्रिय रहा, जिसके बाद अश्वमेध और परशुधारी सिक्कों की गणना की जाती है। अन्य सिक्के उतने प्रिय न रहे।

समुद्रगुप्त के विभिन्न सिक्कों के क्रमिक विकास को निश्चित करना सम्भव नहीं। दण्डधारी सिक्का सर्वप्रथम तैयार किया गया और पूरे शासन-काल में प्रचलित रहा। धनुषधारी बाद का सिक्का है। इसमें अधिक मौलिकता है। परशुधारी सिक्के को देखने से अच्छी मुद्राकला के अनुभव का पता लगता है और क्रम में वह तीसरा माना जा सकता है। व्याघ्र-निहंता में कला-निपुणता दिखलाई पड़ती है। इसे चौथा स्थान मिल सकता है। कला की दृष्टि में वीणाधारी तथा अश्वमेध सिक्के ऊँची श्रेणी के प्रकट होते हैं। उनमें कुछ परस्पर संबंध भी होगा, अतएव दोनों पर भी 'सि' (सिद्धम्) अंकित किया गया है। चूँकि राज्य के अंत में अश्वमेध यज्ञ किया होगा, इसलिए सम्भवतः ये दोनों प्रकार शासन के पिछले समय में तैयार किये होंगे। सिक्कों की क्रमिक उत्पत्ति की यह बात केवल अनुमान से कही गई है।

समुद्रगुप्त ने चाँदी या ताम्बे के सिक्के तैयार नहीं कराये। किन्तु श्री राखाल दास बनर्जी ने कहा है कि उन्होंने बंगाल के बर्दवान जिले में कटवा गाँव में प्राप्त दो ताम्बे के सिक्के देखे थे, जिनके पुरोभाग के ऊपरी सिरे पर 'गरुड़' तथा नीचे की ओर 'समुद्र' अंकित था। पृष्ठभाग पर कुछ पढ़ा नहीं जा सकता। ये सिक्के प्रकाशित नहीं हुए,

अतः जल्दी में यह कहना अनुचित होगा कि समुद्रगुप्त ने ताम्बे के सिक्के तैयार कराये। समुद्र से पहले भी उस भू-भाग में चाँदी के सिक्के प्रचलित नहीं थे, अतएव उसने भी चाँदी का प्रयोग नहीं किया। समुद्रगुप्त की स्वर्ण-मुद्राओं का विवरण निम्नलिखित रीति से है।

ध्वजधारी प्रकार के सिक्के

समुद्रगुप्त के सिक्कों में ध्वजधारी सबसे अधिक लोकप्रिय था, जो गुप्त मुद्राओं के सूचीपत्र के देखने से स्पष्ट हो जाता है। बयाना निधि में समुद्रगुप्त के १८३ सिक्के मिले हैं, जिनमें १४३ ध्वजधारी प्रकार के हैं। ब्रिटिश संग्रहालय में १७; कलकत्ता संग्रहालय में १६ तथा लखनऊ संग्रहालय में २६ सिक्के इस प्रकार के सुरक्षित हैं। इस प्रकार के सिक्के गुप्त सम्राज्य में सहारनपुर से कलकत्ता तक सर्वत्र पाये गये हैं। उनका आकर .७५" से .८" तथा तौल १०४.५ ग्रेन से १२२ ग्रेन तक बदलता रहता है[१]।

इस प्रकार में राजा पुरोभाग पर बाईं ओर खड़ा है और बायें हाथ में दण्ड लिये है। दाहिने हाथ से वेदी पर आहुति दे रहा है। गरुड़ध्वज सम्मुख दिखलाई पड़ता है। पृष्ठभाग पर देवी सिंहासन पर बैठी है। एक हाथ में पाश तथा दूसरे हाथ में कानुकोपिया धारण किये है।

इस तरह के सिक्कों के नामकरण में विभिन्न विचार उपस्थित किये गये हैं। स्मिथ का कथन है कि राजा के बायें हाथ में बल्लम है, अतः उसने ऐसे सिक्के को बल्लम प्रकार का बतलाया है। श्री ॲलन ने इसे ध्वज माना है, अतएव ध्वजधारी प्रकार के नाम से वर्णन किया है। डा० छाब्रा ने इसे राजदण्ड के नाम से वर्णित किया है। इन सभी नामों में से किसी को चुनना कठिन है; क्योंकि सर्वत्र वह वस्तु एक-सी प्रदर्शित नहीं की गई है। किसी सिक्के पर (फ० १, १४: फ० २, २) उसमें नोक दिखलाई पड़ती है, दूसरे में (फ० २, १, २,५) वह राजदण्ड के सदृश है, जिसका सिरा मोटा और चपटा है। बल्लम मत के सिलसिले में यह कहा जाता है कि समुद्रगुप्त के अन्य सिक्कों में राजा बायें हाथ में परशु अथवा धनुष लिये हैं, अतएव इसे बल्लम मानना युक्तिसंगत होगा और अधिक सिक्कों में वही नुकीला हथियार के रूप में प्रकट भी होता है। इसके विरुद्ध यह कहा जा सकता है कि इसके ऊपरी भाग में ध्वजा का वस्त्र या फीत की तरह एक कपड़े की पट्टी बँधी हुई है, (फ० १, १४; २,४-५), जिसकी भाले के साथ उपयुक्तता असंभव है। श्री ॲलन के विरोध में यह कथन यथार्थ है कि राजा के सामने राजकीय गरुड़ध्वज की उपस्थिति में दूसरा ध्वज निरर्थक सिद्ध होगा। शासक को ध्वज-धारण करना भारतीय

---

१. कुछ बहुत ही विरल मुद्राओं की तौल १०४ या १०८ ग्रेन तक कम है। वे शायद असावधानी से निकाले गये होंगे। शायद तौल में इस प्रकार से ११५, ११८, १२१ ग्रेनों की तीन श्रेणियाँ थीं।

परम्परा, प्रतिष्ठा तथा मान के प्रतिकूल है। यदि इसे राजदण्ड माना जाय तो कभी-कभी कपड़े की फीत जो दिखाई देती है, उसका औचित्य नहीं जान पड़ता और अनेक सिक्कों पर भाले की तरह वह नुकीला है। राजदण्ड की स्थिति मानने पर यह समझ में नहीं आता कि पिछले सिक्कों पर से यह शाही दण्ड सर्वथा लुप्त क्यों हो गया तथा इसकी लोकप्रियता क्यों जाती रही। प्रत्येक मत के मानने में कुछ-न-कुछ कठिनाइयाँ हैं, अतः स्थित सिद्धान्त के अनुसार इसे ध्वज मान कर इस प्रकार का ध्वजधारी नाम स्वीकृत किया गया है।

पिछले कुषाणों के स्वर्ण-मुद्रा का दण्डधारी प्रकार से किस तरह अनुकरण किया गया—यह हम पहले ही कह चुके हैं। किन्तु गुप्त टकसालवालों ने इस प्रकार में भी समझ-बूझकर भारतीयता लाने का प्रयत्न किया, जिसपर पाठक का ध्यान आकर्षित करना आवश्यक है। कुषाण ढंग के लम्बे टोप की जगह सम्राट् के सिर पर एक भारतीय टोपी आई है, जो हिन्दू-रीति के अनुसार किनारे पर मोतियों की लड़ी से सुसज्जित की गई है। त्रिशूल का स्थान गरुड़ध्वज ने ले लिया है, जो गुप्तों का शाही-ध्वज था[1]। विशेष बात यह है कि पुरोभाग की यूनानी लिपि का मुद्रालेख निकाल कर उसके स्थान में ब्राह्मी लिपि में संस्कृत छंदोबद्ध मुद्रा-लेख दिया गया है। हाँ, राजा के सिर पर या गरुड़ के पास जो अर्द्धचन्द्र कभी दिखलाई पड़ता था, उसे कुछ लोग यूनानी अक्षर A या U का अवशेष मानते हैं (फ० १, १५; २, १)।

किन्तु यह अर्द्धचन्द्र कुछ दूसरे अर्थ में भी प्रयोग हो सकता है। चन्द्रध्वज तो अनेक मुद्राओं पर भी दृष्टिगोचर होता है। पृष्ठभाग में जो देवी का नाम 'आरदोक्षो' कुषाण मुद्राओं पर यूनानी लिपि में लिखा जाता था, उसके स्थान पर ध्वजधारी प्रकार के समुद्रगुप्त का विरुद 'पराक्रम' अंकित किया गया है। इसका अर्थ यह है कि गुप्त सिक्कों के निर्माता, जहाँ तक हो सकता था, विदेशीपन को हटा कर भारतीयता लाने का प्रयत्न कर रहे थे। इन सिक्कों की बनावट उन कुषाण सिक्कों से अधिक सुन्दर है। धातु भी शुद्ध सोना है, जिसमें दस फी-सदी मिलावट है; जहाँ पिछले कुषाणों की मुद्रा में ५० फी सदी मिलावट होती थी।

कुछ दंडधारी सिक्कों पर सिंहासन की पीठ दिखलाई नहीं गई है (फ० २-५, ८); यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि ये मगध में तैयार किये थे, जहाँ कुषाण मुद्रा का प्रभाव कम था। इसका विलीन होना मुद्राओं की भारतीयता की प्रगति का प्रमाण है।

इन सिक्कों पर जो देवी अंकित की गई है वह कौन है, यह बताना कठिन है। मुद्रा-निर्माताओं ने उसके नाम आरदोक्षो को मिटादिया है; लेकिन उसके स्थान में दूसरा नहीं दिया है। उसे उनलोगों ने भारतीय देवी के सदृश दर्शाया, जो प्रायः विष्णु-भार्या लक्ष्मी-सी प्रतीत

---

१. प्रयाग की प्रशस्ति में वर्णन आता है कि समुद्रगुप्त के ध्वज पर गरुड़ का चिह्न अंकित था। इसलिए स्मिथ का मत अमान्य हो जाता है कि गरुड़ चिह्न को रोम से लिया गया। गरुड़ध्वज भारत में ईसा पूर्व दूसरी सदी से ज्ञात था जिसका प्रदर्शन हेलियोडोरस के बेसनगर स्तंभ पर मिलता है।

होती है। पुरोभाग में विष्णु भगवान् का वाहन गरुड़ अंकित किया गया है; किंतु देवी के संबंध में लक्ष्मी का कोई विशेष चिह्न दिखलाई नहीं पड़ता, इसलिए उसको दुर्गा भी कह सकते हैं। प्रथम चन्द्रगुप्त के सिक्कों पर दिखाई गई देवी सिंह-वाहन के कारण दुर्गा ही मानी जा सकती है।

पुरोभाग पर राजा वेदी पर आहुति देते दिखलाया गया है। यह पिछले कुषाण सिक्के पर से लिया गया है (फ० १, ३-५)। यह कहते हुए हर्ष होता है कि पुरोभाग का चिह्नसमूह (motif) क्रमशः भारतीय ढँग पर बदलता गया। समुद्रगुप्त के कुछ सिक्कों पर (फ० १,१४-१५; फ० २, १) राजा के हाथ में गोल पुरोडाश दिखलाई पड़ता है; यज्ञ-हविष प्रायः गोलाकार रहता है। कुछ सिक्कों पर की वेदी गमला की तरह दिखलाई पड़ती है, जिसमें तुलसी का पौधा उगा हो (फ० २, ५, ८, ६)। इस स्थान पर यह कहना आवश्यक है कि तुलसी का पौधा विष्णु-पुजारियों के लिए पवित्र माना गया है और गुप्त-नरेश परमवैष्णव थे, इसलिए इस पौधे का वहाँ स्थान दिया गया हो।

समुद्रगुप्त भारतवर्ष का प्रथम राजा था, जिसने छंदोबद्ध मुद्रा-लेख खुदवाये[1]। प्रयाग की प्रशस्ति से पता चलता है कि समुद्रगुप्त को कविराज की उपाधि दी गई थी। उसके काव्यों के विषय में कुछ ज्ञान नहीं है। परन्तु पुरोभाग पर के छंद में लेख उत्कीर्ण कराने का निर्णय ही राजा के काव्य-प्रेम का परिचय देता है। सम्भव है, उसने स्वयं कुछ मुद्रालेखों की पद्य-पंक्तियों को तैयार किया हो।

प्रयाग की प्रशस्ति (पंक्ति १७) से प्रतीत होता है कि पराक्रम का विरुद समुद्रगुप्त ने लिया था; इसलिए पराक्रमः, व्याघ्रपराक्रमः तथा अश्वमेधपराक्रमः की जो उपाधियाँ ध्वजधारी, व्याघ्र-निहंता और अश्वमेध सिक्कों पर प्रयुक्त की गई हैं, वे सभी समुद्रगुप्त की ओर संकेत करती हैं। इंदौर के बमनाला से प्राप्त समुद्रगुप्त के एक ध्वजधारी सिक्के (फ० २, १०) पर भी 'विक्रमः' यह मुद्रालेख पृष्ठभाग पर अंकित किया गया है। यह विरुद द्वितीय चन्द्रगुप्त के लिए ही प्रयुक्त मिलता है तथा प्रयाग-प्रशस्ति में 'पराक्रम' उपाधि समुद्रगुप्त के लिए मिलती है, अतएव विक्रम विरुद का दण्डधारी सिक्का गलती से तैयार हो पाया। संभवतः द्वितीय चन्द्रगुप्त के राज्य में समुद्र के दण्डधारी प्रकार के सिक्के के पुरोभाग का टप्पा तथा नये राजा के धनुषधारी ढंग के सिक्के के पृष्ठभाग का टप्पा गलत ढंग से प्रयुक्त किये गये। उस गलती का पता जल्दी ही लग गया, इस कारण और सिक्के इस प्रकार के तैयार न हो पाये। यदि यह गलती मानी नहीं जायगी तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि समुद्रगुप्त ने पराक्रम के साथ विक्रम की भी उपाधि धारण की थी। प्रायः गुप्त नरेश एक ही विरुद रखते थे, इसलिए सिक्के के आधार पर यही कहा जा सकता है कि यह समुद्रगुप्त का सिक्का था।

पिछले कुषाण सिक्के की तरह भद्दी बनावटवाली एक स्वर्णमुद्रा पर राजा के बायें हाथ के नीचे समुद्र अंकित मिलता है (फ० २,११)। इसमें संदेह नहीं कि वह सिक्का गुप्त राज्य

---

१. श्री ऍलन ने सर्वप्रथम विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया था। गुप्तसिक्के छंदबद्ध हैं, इसलिए अपूर्ण लेखों की पूर्ति भी हो जाती है। स्वर भी निश्चित हो जाते हैं।

का नहीं है; वरन् पंजाब में प्रचलित पिछले कुषाण ढंग का है। राजा के सामने त्रिशूल है, गरुड़ध्वज नहीं। एक ब्राह्मी अक्षर 'स' राजा के दाहिने पैर तले दिखलाई पड़ता है (फ० १, ३-४)। दण्ड या भाले के बाहर एक लम्बवत् लेख खुदा है जिसे कनिंघम ने गाहर पढ़ा है। यह मुद्रा-लेख ठीक-ठीक पढ़ा नहीं गया है; क्योंकि अक्षर एक दूसरे से गुथे हैं। केवल 'ग' निश्चित है।

सम्भवतः यह सिक्का समुद्रगुप्त के किसी कुषाण सामंत ने तैयार किया था। प्रयाग की प्रशस्ति से यह स्पष्ट है कि शक तथा कुषाण सामंत समुद्रगुप्त के सामने नतमस्तक हो गये थे। इनलोगों ने अपने राज्य चलाने के लिए राजाज्ञा भी माँगी थी। सम्भव है, उनमें से किसीने राजभक्ति दिखाने के लिए यह सिक्का तैयार कराया हो, जिसपर अपने नाम के साथ-साथ सम्राट् का नाम भी अंकित किया गया था। समुद्रगुप्त के ध्वजधारी प्रकार के सिक्के निसंदेह पिछले कुषाणों की मुद्राओं के अनुकरण पर तैयार किये गये थे। किन्तु ऊपर वर्णित सिक्कों से मालूम होगा कि समुद्रगुप्त की मुद्राओं का भी अनुकरण कुछ कुषाण-शासकों ने किया था। हो सकता है कि, इस प्रकार के सिक्के और भी मिलें, यद्यपि अभी तक केवल एक ही मिला है।

दण्डधारी सिक्के के ऊपर चतुर्थ भाग में अनेक चिह्न (symbol) मिलते हैं। किसी-किसी में दाहिनी ओर भी चिह्न दिखलाई पड़ता है। इन चिह्नों का अर्थ अभी तक निश्चित नहीं हुआ है। प्रथम चन्द्रगुप्त के न घिसे हुए सिक्कों की तौल १२० ग्रेन है। रोम तथा कुषाण सुवर्णसिक्कों की तौल भी उतनी ही थी। किन्तु समुद्र के अच्छे सिक्कों में कुछ ११५ ग्रेन के हैं, कुछ ११८ ग्रेन के, तो कुछ १२१ ग्रेन के। मालूम पड़ता है कि इन तीनों तौलों के सिक्के उसने आरम्भ किये थे। समुद्रगुप्त के कुछ दुष्प्राप्य सिक्के तौल में १०८ ग्रेन हैं। इस तौल के सिक्के प्रायः सभी गुप्त शासकों के समय में मिलते हैं। शायद टकसाल में गलती से वे बनाये गये हों।

इस प्रकार के सिक्के पर तीन रूप के 'म' अक्षर का पता लगता है—देखिये फ० १,१४,१५ तथा २,१,५। वे जिन्हें पश्चिमी तथा पूर्वी 'म' कहा जाता है। 'म' के दोनों रूप कभी-कभी न केवल एक सिक्के पर किंतु एक सिक्के की एक ही ओर मिलते हैं (फ० १,१५)। इससे पता चलता है कि 'म' के सब रूप सर्वत्र प्रयुक्त होते थे, इसलिए उनका पूर्वी तथा पश्चिमी नामकरण अक्षरशः सही नहीं है।

समुद्रगुप्त के दण्डधारी सिक्कों पर राजा सदा बाईं ओर दिखलाया गया है। एशियाटिक रिसर्च भा० १७ (फ० १,५) में एक सिक्का प्रकाशित हुआ है जिसमें राजा दाहिनी ओर देख रहा है और बायें हाथ से आहुति दे रहा है। गुप्त-मुद्रा-निर्माता बायें हाथ से आहुति दिलाने की गलती नहीं कर सकते थे। अतएव चित्र के देखने से पता चलता है कि एशियाटिक रिसर्च में उलटी ओर से रेखा चित्र तैयार किया गया होगा। दंडधारी प्रकार की मुद्राओं में राजा सदा वाममुख ही दिखाया गया है।

समुद्रगुप्त के दण्डधारी सिक्के तीन वर्गो में विभक्त किये गये हैं—

१. इसमें पराक्रम की पदवी है।

२. इसमें विक्रम का विरुद लिखा है।

३. सम्राट् के कुषाण सामंत-द्वारा तैयार अंतिम वर्ग के सिक्के गुप्त-टकसाल में तैयार नहीं हुए और दूसरे वर्ग का सिक्का गलती से अंकित है, जैसा कहा गया है।

प्रथम वर्ग में सात उपप्रकार के सिक्के हैं। पहले में लेख ११ बजे के स्थान पर आरम्भ होता है तथा बाँह के नीचे केवल समुद्र है (फ० १,१४)। यह उपप्रकार अत्यंत साधारण था। दूसरे में राजा के सिर के पास अर्द्धचंद्र है (फ० १, १५:२, १), तीसरा उपप्रकार (फ० २,३) पहले के सदृश है; किंतु आकार और बनावट में अधिक सुन्दर है। उसकी तौल या चिह्न (Symbol) में कभी फर्क नहीं पड़ता है। चौथा भी पहले के समान है; किंतु राजा एक कटार लिये है (फ० २,६)। इस उपप्रकार का सिर्फ एक सिक्का अभी तक मिलता है। पाँचवें तथा छठे उपप्रकारों में लेख बाईं ओर आरम्भ होता है। पाँचवें में यह गोलाकार है (फ० २,४); किंतु छठे में लेख सीधी लकीर में है (फ० २,३)। सातवें उपप्रकार में राजा का पूरा नाम समुद्रगुप्त अंकित किया है, बाँह के नीचे समुद्र और ध्वजदंड के बाहर गुप्त (फ० २,७-८)। इस प्रकार की मुद्रा का सविस्तर वर्णन हम अभी आगे करेंगे।

दण्डधारी सिक्के

पुरोभाग—प्रभामंडलयुक्त राजा बाईं ओर खड़ा है। उसके कान में कुण्डल, छाती पर हार और हाथ में कड़ा है। वह चिपकी टोपी, कोट तथा पतलून पहने है, बायें हाथ में ध्वज है और दाहिने से वेदी पर हवन डाल रहा है; वेदी के पीछे गरुड़ध्वज है, जिसमें फीत पट्टी लगी है।

राजा के बायें हाथ के नीचे लम्बवत् 'समुद्र' तथा कुछ मुद्राओं में दण्ड के बाहर 'गुप्त' लिखा है। वर्तुलाकार मुद्रालेख–'समर-शत-वितत विजयो जित-रिपुरजितो...............दिव जयति'—सर्वत्र विजयी राजा जिसने सैकड़ों युद्ध में सफलता प्राप्त की और शत्रु को पराजित किया, स्वर्ग-श्री प्राप्त करता है।

छंद—उपगीति।

पृष्ठभाग— बिंदुभूषित वर्तुल में प्रभामण्डलयुक्त, लक्ष्मी सिंहासन पर बैठी, जिसके पैर सुन्दर रीति से बनाये गये हैं। साड़ी, चोली, चादर, हार, भुजदण्ड तथा मोती की लड़ी की अचरी पहने है। बायें हाथ में कॉर्नुकोपिया तथा दाहिने में पाश; गोलाकार चटाई पर पैर रखे है। अधिकतर मुद्राओं पर सिंहासन की पीठ दिखलाई पड़ती है। कभी उसके चार पैर तो कभी दो दिखलाई पड़ते हैं। चिह्न सदा बाईं ओर कभी दाहिने; मुद्रालेख—पराक्रमः। इस प्रकार के वर्ग और उपप्रकार नीचे दिये जाते हैं।

प्रथम वर्ग

राजा बाईं ओर देख रहा है।

पहला उपप्रकार[1]

लेख एक बजे से; केवल समुद्र बायें हाथ के नीचे।

१. सोना, .८", ११७.५ ग्रेन, बयाना निधि, फ० २।७।

पुरोभाग—राजा प्रभामण्डलयुक्त, आकृति स्फूर्तिवान्, गरुड़ध्वज का दण्ड अदृश्य, वर्तुलाकार मुद्रालेख 'समरसत-वतत' बाईं ओर का लेख स्थान में स्थूल, दण्ड का सिरा भाले की तरह नुकीला।

पृष्ठभाग— सिंहासन की पीठ दिखलाई पड़ती है। मुद्रालेख—'पराक्रमः' (फ० १,१४)।

दूसरा उपप्रकार[2]

पूर्ववत् अर्द्धचन्द्र के साथ

२. स्वर्ण, .६", ११६. ५ ग्रेन, बयाना निधि फ० २, १४

पुरोभाग—गरुड़ध्वज के सिरे पर अर्द्धचन्द्र, उसका दण्ड दिखलाई पड़ता है। ध्वज-दण्ड का सिर राजदंड के समान मोटा और चपटा; वर्तुलाकार मुद्रालेख; दाहिनी ओर ७ बजे से 'समरशत-वत' बाईं ओर ६ बजे से 'जत रपं' (फ० २, १)।

पृष्ठभाग—सिंहासन के चारों पैर दिखलाई पड़ते हैं। इसकी पीठ अधिक झुकी है। दाहिनी ओर भी चिह्न, चारबिन्दु-समूह के रूप में 'मुद्रालेख—'पराक्रमः'।

इस ग्रंथ में अप्रकाशित।

३. स्वर्ण; .८५", ११३.७ ग्रेन, बयाना निधि फ० २,१२।

पुरोभाग—ऊँचे ढंग का जूता पहने राजा की आकृति, सिर पर अर्द्धचन्द्र; मुद्रालेख दाईं ओर 'समर-शत-म (व)त' बाईं ओर 'त वजय जत रपर' 'व' की जगह 'म' गलती से खुदाया है; व का अधोभाग गोलाकार; समुद्र का 'म' पूर्वी प्रकार का तथा समर का 'म' पश्चिमी प्रकार का है। इस तरह 'म' के दोनों प्रकार एक ही सिक्के में वर्तमान हैं। पृष्ठभाग का 'म' पश्चिमी प्रकार का।

पृष्ठभाग—मुद्रालेख—पराक्रम, 'म' पश्चिमी ढंग का (फ० १,१५)।

---

१. ब्रि० म्यू० कै० जी० डी० फ० १, ५-१०,१२ १३,१६,१७ ज० ए० सो० ब० ८८४ (फ० २,३-४)

२. ऐसे १२ सिक्के बयाना तथा ४ ब्रि० म्यू० कै० में हैं (फ० १,१-४)।

४. स्वर्ण, ·८", ११६.४ ग्रेन ; बयाना निधि (फ० २,७)।

पुरोभाग—राजा के सिर पर अर्द्धचंद्र, पुरोभाग पर दो बार टप्पा लगाया गया है जिस कारण दो राजा की आकृति तथा दो गरुड़ध्वज ; वर्तुलाकार मुद्रालेख अस्पष्ट, कुछ अक्षर दो ध्वजों के बीच, 'म' पूर्वी ढंग का (फ० २,७)।

पृष्ठभाग—लेख—पराक्रमः; 'म' पश्चिमी ढंग का (इस ग्रन्थ में अप्रकाशित)।

तीसरा उपप्रकार[1]

पूर्ववत् किंतु आकार में छोटा।

५. स्वर्ण ; ·७२"-१२१·६ ग्रेन, बयाना निधि (फ० ३,२)।

पुरोभाग—वर्तुलकार मुद्रालेख दाहिनी ओर 'समरसत वतत'; बाईं ओर 'तरपुरजितो दिव जयत'।

पृष्ठभाग—पैरों के बीच में साड़ी की चूनन दिखलाई पड़ती है (फ० २,३)।

चौथा उपप्रकार

पहले की तरह किंतु राजा कटार लिये हुए।

६. स्वर्ण ; ·८५", तौल अज्ञात, न्यूमि० स० १६

पुरोभाग—लेख-भद्दा, बाईं ओर कटार लटक रही है (समुद्र के स की बाईं ओर) (फ० २,६)।

पृष्ठभाग—(इस ग्रंथ में अप्रकाशित)

पाँचवाँ उपप्रकार

पहले की तरह, केवल लेख बाईं ओर से आरंभ।

७. स्वर्ण, ·६", ११६·४ ग्रेन, बयाना निधि (फ० ३,१२)।

पुरोभाग—बायें हाथ की वस्तु राजदण्ड प्रकट होती है, वेदी के ऊपर की ज्वालाएँ पौधे की शाखा के समान प्रतीत होती हैं। मुद्रा-लेख बायें—'समर-शत-वत', दाहिने—'तविजय जत'।

पृष्ठभाग—सिंहासन की पीठ अदृश्य ; मुद्रा-लेख—'पराक्रमः' (फ० २, ५)।

छठा उपप्रकार[2]

ऊपरी सिक्के की तरह, लेख दाहिनी ओर सीधी पंक्ति में।

८. स्वर्ण ; ८" ; ११८·२ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कै० जी डी० फ० १,२।

---

१. इस तरह के १८ सिक्के बयाना निधि तथा दो बृटिश म्यूजियम में हैं (फ० १, १४-१५)।

२. यह बताया गया है कि ज० न्यू० सो० ई० भा० ८ फ० ३, ३ पर जो सिक्का प्रकाशित किया गया है, उसमें भी सीधी पंक्ति में लेख है। किंतु वह मुद्रालेख वर्तुलाकार-सा ही दिखाई देता है, सीधी पंक्ति में नहीं। किंतु यदि वह सीधी पंक्ति का लेख माना जाय तो वह सिक्का इस उपप्रकार का एक नया उपोपप्रकार मानना पड़ेगा।

पुरोभाग—बाईं ओर—'समरस', दाहिने—'तत विजयो जितर' सीधी पंक्ति में।
पृष्ठभाग—मुद्रा-लेख—'पराक्रमः' (फ० २, २)।

सातवाँ उपप्रकार[१]

ऊपर की तरह; किन्तु राजा का पूरा नाम समुद्रगुप्त लिखा है।
६. स्वर्ण ; '६", ११६'३ ग्रेन ; ब्रि० म्यू० कै० (फ० २, ४)।

पुरोभाग—वेदी फूल के गमले की तरह जिसमें पौधे की शाखाएँ दिखलाई पड़ती हैं। 'म' पूर्वी प्रकार का, मुद्रालेख सात बजे आरम्भ व अपूर्ण, 'समर-शत-वितत' ; विजयो दस बजे, दाहिनी ओर—'जत रप रजितो दव'।
पृष्ठभाग—सिंहासन की पीठ अदृश्य, मुद्रालेख–'पराक्रम' (फ० २, ७)।
१०. स्वर्ण, '८५", १२२'५ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कै० (फ० २,७)।

पुरोभाग—बाईं ओर लेख स्पष्ट, [स] मर-शत-वतत-व; वेदी गमले की तरह।
पृष्ठभाग—सिंहासन स्पष्ट है ; मुद्रा-लेख—पराक्रमः (फ० २, ८)।

द्वितीय वर्ग

(विक्रम उपाधि सहित)

स्वर्ण .८"; ११२ ग्रेन; बमनाला निधि [२]।
पुरोभाग—मुद्रा-लेख [स] मर-शत-वतत'
पृष्ठभाग—मुद्रालेख–'श्रीविक्रम' (फ० २, १०)

तृतीय वर्ग

समुद्रगुप्त का दण्डधारी सिक्का, जिसे कुषाण सामंत ने तैयार किया।
पीला सोना, '८" तौल अज्ञात, सी० एल० आई० एस (फ० २, ११)

पुरोभाग—राजा प्रभामण्डल युक्त, बेढंगी आकृति, बाईं ओर खड़ा, कुषाण ढंग का कोट, चिपटी टोपी, जिस पर एक वर्तुल और दो पंख हैं। बायें हाथ में दण्ड, दाहिने हाथ से वेदी पर हवन डाल रहा है। दाहिने हाथ के पीछे त्रिशूल, बायें हाथ के नीचे लम्बवत लेख–'समुद्र' भाले के बाहर लेख को कनिंघम ने 'गडहर' पढ़ा, किन्तु लेख अस्पष्ट, दाहिने पैर के समीप 'प' या 'पु'।
पृष्ठभाग—ऊँचे पीठवाले सिंहासन पर देवी बैठी हैं। मुद्रालेख अनुत्कीर्ण (फ० २, ११)। तथा-कथित दाहिनी ओर खड़े राजावाला सिक्का।

---

१. ब्रि० म्यू० कै० फ० २, १ ; ज० ए० सो० बं० १८८४ फ० २, ५ : जे० आर० ए० एस १८८९ फ० १, ९।
२. ज० न्यू० सो० इ० फलक ९, ७।

स्वर्ण, '८" तौल अज्ञात; एशियाटिक रिसर्च भाग १० (फ० १,५)।

ोभाग—राजा दाहिनी ओर खड़ा है, दण्ड दाहिने हाथ में, सामने वेदी पर बायें हाथ से हवन करता हुआ, दाहिने गरुड़ध्वज, दाहिने हाथ के नीचे समुद्र, बाईं ओर लेख के अक्षर उलटे हुए।

ठभाग—सिंहासन पर बैठी देवी, दाहिने हाथ में कनुकोपिया, बायें हाथ में पाश, चिह्न दाहिनी ओर, दाहिने के बदले बाईं ओर मुद्रालेख-'पराक्रमः' उलटे अंकित (फ० २, ४)।

धनुर्धारी प्रकार

इस प्रकार के सिक्के ८"से ९"तक आकार तथा ११० से १२० ग्रेन तक तौल में विभिन्नता ते हैं। ऐसे सिक्के भरसार निधि, जौनपुर, बोधगया तथा बयाना में मिले हैं। इस रह के तीन सिक्के बयाना निधि में, ब्रिटिश म्यूजियम तथा कलकत्ता संग्रहालय में चार-ार और लखनऊ संग्रहालय में एक है।

धनुर्धारी प्रकार पहले के दण्डधारी सिक्के का परिवर्तित रूप है, जिसमें राजा बायें ाथ में धनुष तथा दाहिने में बाण लिये है। इसमें दण्डधारी प्रकार के भारतीयकरण ा प्रयत्न किया गया है। भारतीय परम्परा में कोट तथा पायजामा पतलून पहने हवन करने ी परिपाटी नहीं है। किंतु भारतीय मुद्रा-शास्त्र में प्राचीन बातों का ग्रहण या अनुकरण विशेष-या किया जाता था, इस कारण पहले राजा इस प्रकार दिखाया गया। धीरे-धीरे द्रा तैयार करनेवाले कुषाण ढंग के ऊपर सुधार करने लगे, जिस कारण राजा को धनुर्धर रूप में दिखलाया है। परशु प्रकार के सिक्कों में राजा को परशुधारी अथवा मृत्यु के वता का स्वरूप दिया गया है। पुरोभाग में लेख छंदबद्ध है जिसमें राजा द्वारा पृथ्वी की ंजय तथा सत्कर्मों द्वारा स्वर्ग प्राप्ति की घोषणा की गई है। पृष्ठभाग पर अप्रतिरथ अद्वितीय रथारोही) का विरुद उल्लिखित है। राजा इस विरुद का गर्व रखता था; क्योंकि ह प्रयाग की प्रशस्ति में 'पृथ्वीव्याम् अप्रतिरथ' कहा गया है।

गुप्तसिक्कों में धनुर्धारी प्रकार अत्यन्त लोकप्रिय था, इसलिए सबसे अधिक समय क इसे तैयार कराते रहे। द्वितीय चन्द्रगुप्त के शासन काल में तो यह अत्यन्त प्रसिद्ध रहा। केन्तु समुद्रगुप्त के इस प्रकार के कुछ ही सिक्के मिले हैं।

इन सिक्कों पर पूर्वी ढंग का 'म' अक्षर पाया जाता है, अतएव यह संभव है कि ूर्वी प्रान्त में ये सिक्के अधिक प्रचलित रहे। वहाँ कुषाण-मुद्रा का प्रभाव कम था। किन्तु केवल म' अक्षर के रहने से कोई मत निश्चित नहीं किया जा सकता, क्योंकि दोनों 'म' (पूर्वी तथा ाश्चिमी) किसी सिक्के पर एक ही लेख में मिलते हैं (फ० १, १५)।

इस प्रकार के प्रायः दो वर्ग माने जाते हैं—एक वर्ग में राजा दाहिने हाथ में बाण लेये है तो दूसरे में उसी हाथ से हवन कर रहा है। किंतु दूसरे वर्ग के सिक्के अप्रकाशित

हैं। केवल भरसार निधि में उसके तीन सिक्के मिले थे[१]। किंतु उनका अभी पता नहीं है और न उनका चित्र ही प्रकाशित हो पाया है। यह आश्चर्य की बात है कि तीनों मुद्राओं में दाहिने हाथ से बाण पकड़ने के बदले सबमें हवन डालने का दृश्य दिखलाई पड़ता था। यदि फलक २, १२ पर लापरवाही से देखा जाय तो क्षण भर के लिए यह आभास होगा कि राजा हवन छोड़ रहा है और उँगलियाँ (जिनसे राजा बाण तथा गरुड़ध्वज स्पर्श कर रहा है) यज्ञ-वेदी की तरह ज्ञात होती हैं। भरसार सिक्के का चित्र छप न सका और अप्रकाशित वस्तु के ऊपर कोई मत भी स्थिर नहीं किया जा सकता। सम्भव है कि भ्रम के कारण वह वेदी मानी गई होगी। किंतु उनके पृष्ठभाग पर पराक्रम लिखा था और अप्रतिरथः का विरुद नहीं था। अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि द्वितीय वर्ग के सिक्के सचमुच निकाले गये थे। वे दण्डधारी से धनुर्धारी प्रकार के मध्यवर्ती रूप हैं। राजा बाएँ हाथ में धनुष पकड़े हुए है और दाहिने से हवन कर रहा है (जैसा दण्डधारी सिक्के में)।

उत्कीर्ण लेख की भिन्नता से पहला वर्ग दो उपविभाग में बँटा है। पहले में मुद्रालेख–'अप्रतिरथो विजित्य क्षितिं सुचरितैर्दिवं जयति' दूसरे में 'सुचरितैः के स्थान पर (म) वनीशो' लिखा है। 'मवनीशो' शब्द निश्चित नही है; क्योंकि उसके केवल पहले दो अक्षर स्पष्ट रूप में दिखलाई देते हैं। इस प्रकार के केवल दो ही सिक्के मिले हैं।

इस प्रकार का वर्णन निम्न लिखित है[२]—

पुरोभाग--राजा खड़ा, प्रभामण्डलयुक्त, दंडधारी प्रकार की तरह वस्त्र धारण किये, बायें हाथ में धनुष जिसकी प्रत्यंचा अन्दर है, दाहिने हाथ में बाण अथवा वेदी पर हवन छोड़ता हुआ, बाईं ओर गरुड़ध्वज फीता के साथ, कहीं झण्डे और राजा के सिर मध्य चन्द्रमा, बायें हाथ के नीचे मुद्रालेख 'समुद्र', वृत्ताकार मुद्रा-लेख, जो एक बजे आरम्भ होता है-'अप्रतिरथो विजित्य क्षितिं सुचरितैः (या अवनीशो) दिवम् जयति'--पृथ्वी को जीतकर अपराजित राजा सुकर्मों से स्वर्ग प्राप्त करता है। छंद-उपगीति।

पृष्ठभाग—पृष्ठयुक्त चौकी पर लक्ष्मी बैठी, बायें हाथ में कार्नुकोपिया, दाहिने में पाश, बाईं ओर चिह्न, मुद्रालेख–अप्रतिरथः।

पहला उपप्रकार[३]

१. स्वर्ण, '८५", ११६·४ ग्रेन ब्रि० म्यू० कै० फ० ४, १

पुरोभाग--राजा के बायें हाथ में धनुष तथा दाहिने में बाण; इस सिक्के में गरुड़ध्वज के डण्डे तथा बाण को एक साथ स्पर्श करने से उँगलियों की शकल वेदी के रूप में

१. ज० ए० सो० बं० १८५२ पृ० ३९०-४०० ।

२. ब्रि० म्यू० कैट० फ० ४, १-७ पी० ई० फ० २३, १९; ज० रा० ए० सो० १८८९ पृ० ७१। ज० ए० सो० बं० भा० २१ पृ० ३९५-४०० ।

३. ब्रि० म्यू० कै० फ० ४, १-६ पी० ई० फ० २३, १०।

प्रकट होती है। मुद्रा-लेख अधूरा, 'रथवज' दो-चार बजे के मध्य, 'सुचरितैः दिर्वंजयति' समुद्र का 'म' पश्चिमी शैली का।

पृष्ठभाग—दाहिने सिंहासन की पीठ दिखलाई पड़ती है। मुद्रालेख-'अप्रतिरथ' (फ० २,१३)।

२. स्वर्ण, ·८", १०८·२ ग्रेन, बयाना निधि (फ० ६, १)।

पुरोभाग—समुद्र का 'म' पूर्वी शैली का वर्तुलकार मुद्रालेख दाहिने-'अप्रतिरथ विजित्य क्षत' बायें लेख मुद्रा के बाहर।

पृष्ठभाग—पूर्ववत् (फ० २, १४)।

दूसरा उपप्रकार[1]

स्वर्ण, ·८", ११८ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कै० (फ० ४,६)।

पुरोभाग—राजा साधारणतया चड्ढी और कमीज पहने है, गरुड़ध्वज के ऊपर अर्द्धचन्द्र, 'म' पूर्वी शैली का, वर्तुलाकार मुद्रालेख, बाईं ओर-'अप्रतिरथो वजत्य क्षतभव' (अंतिम अक्षर अधूरे), दाहिनी ओर 'वजत्य'।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, कॉर्नुकोपिया बायें हाथ में (फ० २, २५)।

द्वितीय वर्ग[2]

स्वर्ण, आकार अज्ञात, ११० ग्रेन (दो सिक्के) तौल ११४ ग्रेन (तीसरा) भरसाड़-निधि।

पुरोभाग—राजा पूर्ववत् दाहिने हाथ से वेदी पर हवन डाल रहा है, बाण का अभाव।

पृष्ठभाग—लेख—पराक्रमः।

(सिक्के अभी अज्ञात, उनका चित्र अप्रकाशित)

परशुधारी प्रकार

इस प्रकार के सिक्कों की तौल ११७·८ ग्रेन से १२३·४ ग्रेन तक और व्यास ·७५" से ·८५" तक रहता है। औसत तौल ११८ ग्रेन है। कन्नौज, बनारस तथा बयाना में ये सिक्के मिले हैं। ब्रिटिश संग्रहालय में ८ सिक्के, कलकत्ता संग्रहालय में एक, लखनऊ संग्रहालय में तीन तथा बयाना निधि में नौ मुद्राएँ सुरक्षित हैं।

इसके पुरोभाग में राजा बायें हाथ में परशु लिये खड़ा है। सामने वामन राजा को देख रहा है। दोनों के बीच में ध्वजा है जिसके सिरे पर अर्द्धचन्द्र है। पृष्ठभाग में देवी सिंहासन पर बैठी है।

'कृतांतपरशु' का विरुद समुद्रगुप्त के उत्तराधिकारियों के लेख में उसे दिया गया है; किंतु प्रयाग की प्रशस्ति में नहीं। उस लेख में समुद्रगुप्त को धराधिवासी देव कह कर उसकी

---

१. ज० ए० सो० बं० १८८४, फ० २, ६; ज० रा० ए० सो० १८८९ फ० १, १० दोनों में 'मव' स्पष्ट है।

२. ज० ए० सो० बं०, १८५२, पृ० ३९०-४००।

तुलना कुबेर, वरुण, अन्तक या कृतान्त से की गई है ; संभवतः उसके फलस्वरूप राजा को कृतांतपरशु दिखानेवाले ये सिक्के निकाले गये होंगे ।

समुद्रगुप्त को कृतांतपरशु कहने में संभवतः उसके देवांशत्व की ओर ध्यान आकृष्ट करना अभिप्रेत था; किंतु यह अधिक संभव है कि इस प्रकार के सिक्कों से राजा की शक्ति पर ध्यान आकृष्ट करना अभिप्रेत था जिस कारण मुद्रालेख में राजा को कृतांतपरशु और अजित राजाओं का विजेता बतलाया गया है ।

पुरोभाग के दृश्य से पता चलता है कि राजा युद्ध का निरीक्षण कर रहा है। एक सिक्के पर वामन सचमुच ही सैनिक वेश में दिखाया गया है (फ० २, १२), जो सम्भवतः अपने स्वामी को युद्ध-विजय का संदेशा कहने के लिए उपस्थित हो, जो एक अच्छे स्थान से युद्ध का निरीक्षण और संचालन कर रहा था ।

इस सिक्के के पृष्ठभाग पर मुद्रा के भारतीयकरण में अधिक प्रगति दिखलाई पड़ती है। अनेक मुद्राओं पर देवी के बायें हाथ में कॉर्नुकोपिया तथा दाहिने में पाश रहता है। किंतु कुछ सिक्कों पर कमल ने कॉर्नुकोपिया का स्थान ले लिया है (फ० २, १५ : ३, ३)। इससे प्रकट होता है कि मुद्रा बनानेवालों ने उसे लक्ष्मी का रूप दे दिया था, पैर के तले कमल का आसन भी है ।

इस प्रकार के सिक्के दो वर्ग में विभक्त हैं। एक वर्ग में राजा बायें भाग में तथा वामन दाहिने भाग में है (फ० ३,७-५)। दूसरे वर्ग में इसका उलटा है (फ० २, १५,१७)। दूसरे वर्ग के सिक्के दुष्प्राप्य हैं ; किंतु पहले में कई उपप्रकार के सिक्के मिलते हैं। पहले उपप्रकार में राजा का नाम 'समुद्र' बायें हाथ के नीचे लिखा है और यह अधिक संख्या में मिलता है (फ० २,१६ : ३, १)। दूसरे उपप्रकार में समुद्र के स्थान पर 'कृ' लिखा है (फ० ३, २)। यह कृतांतपरशु का संक्षिप्त रूप है। तीसरे उपप्रकर में राजा का पूरा नाम समुद्र-गुप्त मिलता है। 'समुद्र' राजा तथा वामन के मध्य में तथा 'गुप्त' बायें हाथ के नीचे (फ० ३,४) पृष्ठभाग में देवी कमल की कली लिये है। चौथे उपप्रकार में भी राजा का पूरा नाम समुद्रगुप्त मिलता है ; किंतु 'समुद्र' राजा के बायें हाथ के नीचे तथा 'गुप्त' परशु-दण्ड के बाहर लिखा है (फ० ३, ३)। दूसरे, तीसरे तथा चौथे उपप्रकार की मुद्राएँ दुष्प्राप्य हैं ।

परशुधारी प्रकार के सिक्कों का वर्णन निम्नलिखित है[१]—

पुरोभाग--राजा खड़ा, प्रभामण्डलयुक्त बायें या दाहिने भाग में दण्डधारी सिक्के की तरह, वस्त्रधारण किये, तलवार लिये, दाहिना हाथ कमर पर आश्रित, बायें हाथ में परशु, बायें या दाहिने वामन पुरुष, सामने खड़ा तथा राजा को देखता हुआ, दोनों के मध्य में ध्वजा, जिस के सिर पर चन्द्रमा, वर्तुलाकार मुद्रा-लेख एक या

१. ब्रि० म्यू० कैट० फ० ४; इ० म्यू० कै० फ० १५, ९; ज० रा० ए० सो० १८८९ पृ० ७२-४ फ० १, १२; ज० ए० सो० ब० १८८४ पृ० १७७-९ फ० २,११ ।

सात बजे आरम्भ 'कृतान्तपरशुर्जयत्यजितराजजेताजितः'—कृतांत का परशु धारण करनेवाला अजेय राजाओं को भी जीतनेवाला, पराभव से सर्वथा अपरिचित राजा विजयी है। छंद 'पृथ्वी'।

पृष्ठभाग—लक्ष्मी सिंहासन पर बैठी, बायें हाथ में कार्नुकोपिया अथवा कमल की कली तथा दाहिने में पाश, कमलासन पर पैर, कभी सिंहासन की पीठ दिखलाई पड़ती है और कभी अदृश्य, कमल पुष्प से ढँके रहने के कारण कभी सिंहासन सर्वथा अदृश्य, केवल देवी के बैठने के ढंग से उसका अस्तित्व अनुमित होता है। चिह्न कभी बायें या दाहिने, मुद्रालेख—'कृतांतपरशुः'।

प्रथम वर्ग

राजा बायें भाग में और वामन पुरुष दाहिने भाग में

पहला उपप्रकार[1]

समुद्र बायें हाथ के नीचे

१. स्वर्ण; .६", ११४.४ ग्रेन, बयाना निधि फ० ६, ६

पुरोभाग—राजा का शरीर भव्य तथा प्रभावशाली, बगल में तलवार स्पष्ट, अर्द्धचंद्र में एक बिन्दु, समुद्र में का 'म' पूर्वी शैली का; सात बजे से लेख, 'कृतांतपरशुर्जयत्य'—दाहिनी ओर के अक्षर अस्पष्ट।

पृष्ठभाग—देवी के बायें हाथ में कमल-कली, मुद्रालेख 'कृतांत परशु' (फ० २,१६)।

२. स्वर्ण; .८", ११६.७ ग्रेन; ब्रि० म्यू० कै० फ० ४,८

पुरोभाग—पूर्ववत्, किंतु लेख एक बजे से, अर्धचंद्र में बिन्दु, वर्तुलाकार मुद्रालेख-'कृतांत परशु'।

पृष्ठभाग—देवी के बायें हाथ में कॉर्नुकोपिया, सिंहासन के पीठ पर दाहिनी ओर भी चिह्न, मुद्रालेख—'कृतांतपरशु' (फ० ३,५)।

३. स्वर्ण; .८", ११५.६ ग्रेन, बयाना-निधि फ० ५,१२

पुरोभाग—कोट का आस्तीन ऊपर लपेटा हुआ, सिर के पीछे पट्टबंध, एक बजे लेख आरम्भ—'कृतांतपरशु'...।'

पृष्ठभाग—देवी के पैर-तले कमल सिंहासन को छिपा देता है, पैर रखने के ढंग से उसका अनुमान, देवी को पद्मासना बनाने की यह पूर्वतैयारी है (फ० ३,१)।

---

1. ब्रि० म्यू० कै० फ० ४,८-१२ इ० म्यू० कै० फ० १५,६, ज० रा० ए० सो० १८९४, फ०१;११।

दूसरा उपप्रकार [१]

('कृ' बाँह के नीचे)

स्वर्ण ; .८५", ११३.२ ग्रेन, बयाना-निधि फ० ४,१३

पुरोभाग—पूर्ववत्, बायें हाथ के नीचे कृ, वर्तुलाकार लेख दाहिने अदृश्य, बायें 'तरजजेता'।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, पैर-तले कमल, उससे सिंहासन आच्छादित नहीं है, मुद्रालेख—'कृतांत-परशुः' (फ० ३,२)।

तीसरा उपप्रकार [२]

('समुद्र' राजा तथा वामन के मध्य में और 'गुप्त' बायें हाथ के नीचे)

स्वर्ण ; .८५", ११७.७ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कै० फ० ४,१५

पुरोभाग—अर्धचंद्र में बिन्दु का अभाव ; 'समुद्र' राजा तथा वामन के बीच, 'गुप्त' बायें हाथ के नीचे, वर्तुलाकार मुद्रालेख अधूरा, बाईं ओर—'त्यजतराजजेताजत'।

पृष्ठभाग—देवी बायें हाथ में कमल लिये, लेख—'कृतांतपरशु (फ० ३,४)।

चौथा उपप्रकार

('समुद्र' बायें हाथ के नीचे, 'गुप्त' दण्ड के बाहर)

स्वर्ण ; .८५", ११६.७ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कै० फ० ४, १६

पुरोभाग—राजा के पास तलवार नहीं, 'समुद्र' बायें हाथ के नीचे, 'गुप्त' परशु-दण्ड के बाहर, मुद्रालेख—दाहिने अदृश्य, बायें 'रजजतजत'।

पृष्ठभाग—देवी बायें हाथ में कमल-कली पकड़े, मुद्रालेख—'कृतांतपरशु' (फ० ३,३)।

द्वितीय वर्ग [३]

(राजा बायें भाग में तथा वामन दाहिने भाग में)

१ स्वर्ण ; .८", तौल अज्ञात, आ० स० इ० वा० रि० १९२७-८ फ० २३ ब

पुरोभाग—राजा बायें भाग में, दाहिने देखनेवाला तथा बामन, उसके सम्मुख दाहिने भाग में, परशु दाहिने हाथ में, बायाँ हाथ कमर पर अवलम्बित, कटार दाहिनी ओर, लंबवत् लेख 'समुद्र' अस्पष्ट, वर्तुलाकार लेख १ बजे से—'कृतांतपरशुर्ज्जयत्य', दाहिनी ओर, 'राजजतजत'।

पृष्ठभाग—देवी के बायें हाथ में कमल, मुद्रालेख—'कृतांतपरशु' (फ० २,१७)।

---

१. ब्रि० म्यू० कै० ४,१३-१४ ज० रा० ए० सो० १८९४ फ० १,१२।

२. वही ४,१५ ; ज० ए० सो० ब० १९०४ फ० १,१।

३. ए० अँ० फ० १८,१० में इस तरह का तीसरा सिक्का प्रकाशित है।

२ स्वर्ण ; .८", तौल अज्ञात, न्यू० क्रा० १९२१ पृ० ३२१, फ० ६,१।

पुरोभाग—पूर्ववत्, राजा के गले में हार, वामन असली सैनिक वेष में, चन्द्रध्वज को पकड़ रहा है, राजा के बायें हाथ के नीचे 'समुद्र'। वर्तुलाकार मुद्रालेख १ बजे से, 'कृतांतपरशु', बाईं ओर 'जजेताजितः' अस्पष्ट रूप में।

पृष्ठभाग—देवी के बायें हाथ में कमल, मुद्रालेख—'कृतांतपरशु' (२,१५)।

(ई) अश्वमेध प्रकार

समुद्रगुप्त ने उत्तरी तथा दक्षिणी भारत के विजय-स्मारक में अश्वमेध यज्ञ किया था ; जो सम्भवतः शासन के अंतिम भाग में सम्पन्न हुआ था। इस यज्ञ के पुनरुत्थान में उसने गर्व का अनुभव किया होगा और आश्चर्य नहीं कि उसी को चिरस्थायी बनाने के निमित्त सोने का सिक्का तैयार कराया हो। वैसे सिक्के विपुल संख्या में तैयार किये गये थे[1]। ब्रिटिश संग्रहालय, कलकत्ता तथा लखनऊ संग्रहालयों में क्रमशः सात, दो और पाँच अश्वमेध सिक्के सुरक्षित हैं। बयाना-निधि में बीस सिक्के मिले हैं।

ये सिक्के आकार में '७५" से '९" तथा तौल में ११२'५ से ११६ ग्रेन के मिले हैं। औसत तौल में ११५ ग्रेन के बराबर हैं और कभी ११८ ग्रेन भी हैं। ऐसे सिक्के पटना से सहारनपुर (उत्तरप्रदेश) तक मिलते हैं।

इसके पुरोभाग में यज्ञ का घोड़ा यूप (यज्ञ-स्तम्भ) के सामने खड़ा है। वह एक चबूतरे पर खड़ा है और यूप के ऊपर से पताका घोड़े के पीठ पर उड़ रही है। पृष्ठभाग पर राजमहिषी मणियों की लड़ी से सुसज्जित चटाई[2] पर खड़ी है और दाहिने हाथ में चँवर तथा बायें में तौलिया पकड़े हुए है। भालानुमा नुकीली वस्तु सामने रखी है, जिसका नाम 'सूची' था।

प्राचीन भारत की मुद्रा-सम्बन्धी कला में अश्वमेध सिक्के सर्वोत्तम उदाहरण माने जाते हैं। पुरोभाग पर का घोड़ा भव्य तथा सुन्दर दीखता है ; वह अपनी अटल मृत्यु के बारे में बेपरवाही दिखाता है। रानी की आकृति सुन्दर और पतली है; यज्ञ में अपने सेवाकार्य के लिए वह सतर्क खड़ी है। ऐसे ठप्पे को तैयार करने के लिए अच्छे-से-अच्छे कलाकार चुने

---

१. समुद्रगुप्त ने पिछले समय में अश्वमेध चिह्न को मुद्रा पर भी अंकित कराया था। रैपसन ने ब्रिटिश-संग्रहालय से एक मिट्टी की मुद्रा का वर्णन किया है जिसमें अश्व एक खम्भे से बँधा है, जिसके नीचे पराक्रम लिखा है। ज० रा० ए० सो० १९०१ पृ० १०२। मालूम पड़ता है कि समुद्रगुप्त ने अपनी मुहर (seal) पर भी अश्वमेध चिह्नसमूह को पिछले समय स्वीकृत किया था।

२. फ० ३, ६ पर कमल प्रकट होता है, पर वह कमलनुमा चटाई है।

गये। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि वे अश्वमेध यज्ञ के स्मारक रूप में बनाई जानेवाली मुद्राओं का महत्त्व पूर्ण रूप से जानते थे, और उनको कलापूर्ण बनाने पर तुले हुए थे।

सभी सिक्कों में घोड़े की पीठ पर जीन नहीं है। किसी दुष्प्राप्य मुद्रा में उसके गले में पट्टा दिखलाया गया है (फ० ३, ८) और किसी पर (फ० ३, ७-११ तथा १२) उसके केश में मोती पिरोये गये हैं। यह शास्त्रोक्त विधान के अनुसार ही किया गया था, जहाँ यज्ञ-अश्व के अयाल तथा पुच्छ में एक सौ मोती पिरोने की बात कही गई है[१]; परन्तु पूँछ में कहीं भी मोती दिखलाई नहीं पड़ते। अयाल के अतिरिक्त अश्व की पीठ पर मोतियों की एक लड़ी दिखलाई पड़ती है (फ० ३, ७-१०)। सम्भवतः यह रूप आभूषण के निमित्त प्रयोग किया गया था।

प्रत्येक सिक्के में घोड़े के नीचे 'सि' अक्षर अंकित मिलता है। यह 'सिद्ध' शब्द का संक्षिप्त रूप मालूम पड़ता है। चबूतरा जिसपर घोड़ा खड़ा है, वेदी का रूप प्रकट करता है। यूप का निचला भाग कुछ वेदी के बाहर तथा कुछ भीतर दिखलाया गया है। तैत्तरीय संहिता (४, ६, ४) में ऐसा वर्णन आता है कि यदि यूप वेदी के अन्दर स्थित हो तो यज्ञ-कर्त्ता को स्वर्ग की प्राप्ति होती है, और यदि वह वेदी से सर्वथा बाहर हो तो उसे सांसारिक वैभव प्राप्त होता है। किन्तु यदि वेदी से थोड़ा बाहर और कुछ भीतर स्थित हो तो यज्ञकर्त्ता को दोनों लोक में यश मिलेगा। सिक्का-निर्माताओं की यह अभिलाषा थी कि राजा को दोनों लोक में यश प्राप्त हो, इसीलिए उन्होंने वेदी से कुछ भीतर तथा बाहर यूप को स्थित रखा। सुन्दरता के विचार से एक लकीर द्वारा वेदी से यूप को कुछ मुद्राओं में मिला दिया है (फ० ३, १०)। कुछ विरल सिक्के पर वेदी के ऊपर एक दूसरा छोटा चबूतरा दिखलाई पड़ता है (फ० ३, १२)। श्री ऍलन के मतानुसार वह सोने का पत्थर है, जिसपर यज्ञ के समय होता बैठा करता है।[२] यदि यह माना लिया जाय तो प्रश्न उठता है कि उसे अश्व के पैरों के तले क्यों दिखाया गया है? इस छोटे चबूतरे का वास्तविक प्रयोजन अज्ञात ही है।

यूप-निर्माण में गुप्त कलाकारों ने कुछ शास्त्रीय तथा कुछ कलात्मक विचारों से काम लिया है। प्रत्येक मुद्रा पर यूप के नीचे दो सीढ़ियों का चबूतरा दिखलाया गया है। यह शास्त्राज्ञा के विरुद्ध है; क्योंकि शास्त्रों में बताया है कि यूप की जमीन चारों ओर से पीटकर समतल बनानी चाहिए[३]। किंतु चबूतरे पर स्थित यूप के समान समतल जमीन पर का यूप सुन्दर नहीं दीखेगा, इस विचार से मुद्रा-निर्माताओं ने यूप के चारों ओर दो सीढ़ियों का चबूतरा दिखाया है, यद्यपि वैसा करना शास्त्रानुकूल नहीं था।

---

१ अश्वस्यमानान्मणीन्सौवर्णानेकशतमेकशतं केशपुच्छेषु अवयन्ति भूर्भुवः स्वारिति। (कात्यायन श्रोत सूत्र २३, ८) टीकाकार ने लिखा है—भूरिति महिषी अश्वस्य शिरोरोमसु भुव इति वावाता ग्रीवारोमसु स्वरिति परिवृक्ता पुच्छरोमसु।

२ ब्रि० म्यू० कै० गु० डा० पृ० ७७।

३ ब्रह्म वनित्वा इति पांसुःभिपर्यूहति (का० श्रौत्र सू० ६।३।३) टीकाकार लिखता है—कुट्टनेन च पांसूनवटेऽधः प्रवेशयेत्।

यूप के ऊपर उड़ता हुआ कपड़ा भी सुन्दरता के विचार से रखा गया है। यद्यपि वैदिक साहित्य में इसका वर्णन नहीं मिलता, तथापि रामायण में राजा दशरथ के अश्वमेध यज्ञ के समय इक्कीस यूपों के ऊपर कपड़े का आवरण दिया गया था [१]। यूप के दूसरे अलंकरण में निर्माताओं ने शास्त्रीय वचन का पालन किया था। यह सिक्का छोटा था, अतएव यूप दण्ड को अठकोन दिखाना सम्भव नहीं था। किन्तु उसको शास्त्रीय ढंग से मध्य तथा अन्त में झुकता हुआ दिखलाया है [२]। यूप की रशना आवश्यक होती है जो यूप के मध्य में बँधी दिखलाई गई है और उस रशना के दोनों टोक नीचे लटक रहे हैं। शास्त्रों में वर्णन आता [३] है कि रशना के दोनों टोक यूप-शकल[४] के चारों ओर घिरे रहने चाहिए। यह दिखाना छोटे सिक्के पर सम्भव नहीं था। किन्तु मुद्रा निर्माताओं ने चषाल को, जो लकड़ी की अँगूठी के समान दीखता है, यूप के किनारे पर सुचारु रूप से दिखलाया है। सभी सिक्कों पर यूप के सिरे पर दो बिन्दुओं से उसको व्यक्त किया है[५]। चषाल मध्य में सकरा रहता है, इसीलिए दो बिन्दुओं द्वारा प्रदर्शित किया गया है। दोनों के मध्य स्थान को उसका सकरा केन्द्र कह सकते हैं।

श्री ॲलन ने इस सिक्के के पुरोभाग पर 'राजाधिराजः पृथिवीमवित्वा दिवं जयत्यप्रतिवार्यवीर्यः' [६] लेख पढ़ा है। अन्त के अक्षर सिक्कों पर अस्पष्ट हैं। १६१४ ई० में एक उपलब्ध सिक्के पर बेनिस ने त, व, ज, म, ध अक्षरों को अंत में पढ़ा था, इसलिए उसने इस आधार पर लेख को इस तरह पूरा किया—'दिवं जयत्याहृतवाजिमेधः'।[७] बयाना–निधि में ऐसे कुछ सिक्के मिले हैं, जिनमें अंतिम 'वाजिमेधः' स्पष्ट है। अतः यह कहा जा सकता है कि लेख 'दिवं जयत्याहृतवाजिमेधः' से अन्त होता है।

श्री ॲलन का कथन है कि डा० हॉय के पास की एक मुद्रा पर तथा बोडिलयन-संग्रह के एक सिक्के पर की पहली पंक्ति 'पृथिवीं विजित्य' से समाप्त होती है। किंतु इन मुद्राओं का

---

१. शोभार्थं तस्य यज्ञस्य काञ्चनालंकृता भवन्
एकविंशतिरूपास्ते एकविंशत्यरत्नयाः
वासोभिरेकविंशद्भिरेकैकं समलंकृताः।

रामायण १, १४, २२

२. अथ य एष आनत उपरिष्टादुपननो मध्ये
सोऽन्नाद्यस्य रूपं तस्मात्तादृशमन्नाद्यकामः कुर्वीत

(शतपथ ब्रा० १०, ७, ३, २)

३. यूपशकलमस्यामवगूहति—का० श्रो० सू० ६, ३. १३।

४. यूपशकल उस पेड़ की शाखा के एक छोटे टुकड़े को कहते हैं, जिससे यूप (लकड़ी का स्तम्भ) काटा जाता है।

५. अग्राच्चषालं पृथामात्रं अष्टाश्रिमध्यमसंगृहीतम्। का० श्रौ० सू० ६, १२७,८।

६. ब्रि० म्यू० कै० गु० डा० पृ० २१।

७. ज० ए० सो० बं० १९१४ पृ० २०५।

छायाचित्र प्रकाशित नहीं है। बयाना-निधि में एक सिक्के पर 'पृथिवी' के बाद ज, त, द तथा व अक्षर दिखलाई पड़ते हैं (फ० ३,६)। अतएव यह स्पष्ट है कि कुछ सिक्कों पर 'राजाधिराजः पृथिवीं विजित्य दिवं जयत्याहृतवाजिमेधः' अंकित किया गया है।

पृष्ठभाग पर राजमहिषी चंवर पकड़े दिखलाई गई है जो उसके दाहिने कंधे पर अवलम्बित है। बायें हाथ में कपड़े का टुकड़ा या तौलिया दिखलाई पड़ता है जो बाईं ओर लटका है। रानी का कर्त्तव्य था कि वह यज्ञ अश्व को जल से धोवे तथा हवा करे[1], जिसके लिए तौलिया तथा चंवर दिया गया है। ब्रिटिश म्यूजियम कैटलाग में फ० ५,१४ पर जो सिक्का प्रकाशित किया गया है, उस पर रानी के पैर-तले तुम्बा (जलपात्र) रखा है; परन्तु अस्पष्ट है। रानी का कर्त्तव्य था कि वह अश्व को धोवे, किंतु किसी भी मुद्रा पर रानी जलकुम्भ ढोनेवाली नहीं दिखाई गई है। सम्भवतः वह कार्य नौकर करते थे। घोड़े को पोछ लेने पर उसका कर्त्तव्य समाप्त हो जाता है। पहले तो नौकर पानी डालते और रानी धो देती और पोछ लेती थी।

रानी के सामने नुकीले दण्ड को यज्ञ का बर्छा कहा गया है[2]। उसपर पताका नहीं हैं, अतएव ध्वज नहीं माना जा सकता। यद्यपि वह बर्छा की तरह दिखलाई पड़ता है, तथापि यज्ञ में इसकी कोई आवश्यकता न थी। घोड़े के मृत्यु के पश्चात् शास्त्रीय नियम के अनुसार तीन रानियाँ सूई (सूचि) से उसके शरीर को छेदती थीं ताकि शरीर में तलवार आसानी से घुस सके। राजमहिषी स्वर्ण सूई, वावाता चाँदी की सूई तथा परिवृक्ता ताम्बे की सूई प्रयोग में लाती रही[3]। सम्भवतः रानी के सम्मुख नुकीली वस्तु 'सूई' है। जिसके मध्य भाग के मूँठ को पकड़ कर रानी घोड़े के मोटे चमड़े में सूई चुभोती थी। रानी की सम्मुखवाली वस्तु को नुकीली यज्ञ-सूचि समझना ही उचित मालूम पड़ता है।

अश्वमेध सिक्के का वर्णन निम्नलिखित है—

अश्वमेध सिक्के[4]

पुरोभाग—जीनरहित घोड़ा, कभी गले में पट्टा, बाईं ओर चबूतरा के साथ यूप, स्तम्भ के सिरे पर से घोड़े के ऊपरी भाग में वस्त्र पताका उड़ रही है, कभी-कभी अयाल मोतियों की लड़ी से आभूषित, कभी पीठ पर भी मौक्तिक माला और अर्द्धचन्द्र,

---

१. धावित्रै रुपवीजयंति। पात्रेजनहस्तां वाचयति।

२. ज० रा० ए० सो० १८८९ पृ० ६५: ब्रि० म्यू० कै० पृ० २१।

३. तिस्रः पत्न्य; असिपथान्कल्पयंति। अश्वस्यं सूचिभिस्ताअराजतसौवर्णाभिः, मणिसंख्याभि; (का० श्रौ० सू० २०, ७) टीकाकार—अश्वस्य शरीरे असेः सुखेन प्रवेशार्थं सूचिभिः वितुद्य तुनुं जर्जरां कुर्युः।

४. ब्रि० म्यू० कै० फ० ५, ९-१०; ज० ए० सो० बँ० १८८४ फ० २, ९: ज० रा० ए० सो० १८८९ फ० १, ४: ए० अ० फ० १८; २: प्रि० ए० फ० १३; ३१ ज० ए० सो० बँ० १९१५ पृ० ४७८।

घोड़े के नीचे 'सि' अक्षर, कभी उसके नीचे छोटा चबूतरा, वर्तुलाकार मुद्रा लेख, छः, नौ या बारह बजे आरम्भ, 'राजाधिराजः पृथिवीमवित्वा (या विजित्य) दिवं जयत्याहृतवाजिमेधः'–राजाधिराज, जिसने अश्वमेध किया है, पृथिवी का रक्षण कर (या जीत कर) स्वर्ग को प्राप्त करता है। छंद-उपजाति।

पृष्ठभाग––महिषी (दत्तदेवी) बायें खड़ी है, मणी लगी चटाई पर, साड़ी, चोली, कुण्डल, हार, भुजदण्ड तथा कंकण शरीर पर धारण किये है। दाहिने कंधे पर चंवर धारण किये, बायें हाथ में तौलिया लटकता हुआ। सामने फीत से आभूषित 'सूचि', साड़ी की किनारी किसी सिक्के पर पैरों में रस्सी की तरह प्रकट होती है, मुद्रालेख 'अश्वमेधपराक्रमः'–शक्तिशाली राजा जो अश्वमेध यज्ञ कर सकता है।

फलक पर के सिक्के

१. स्वर्ण .६२", ११५.७ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० ४,६

पुरोभाग—घोड़े के केश विभूषित, मोती की लड़ी पीठ पर, मुद्रालेख ग्यारह बजे आरम्भ, 'राजाधिराजः पथवममवत्व दवज', बाईं ओर 'वजमध' (वाजिमेध) स्पष्ट है, कुछ अक्षर अधूरे।

पृष्ठभाग—राजमहिषी सुन्दर तथा पतली, चटाई कमल-सा प्रकट होती है। मुद्रालेख–'अश्वमेधपराक्रमः' (फ० ३,६)।

२. स्वर्ण .८७", १११ ग्रेन, बयाना निधि फ० ४,१३ ; सिक्का किनारे में ६ बजे जगह फटा है।

पुरोभाग––मोती की लड़ी पीठ पर, वेदी यूप से लकीर द्वारा सम्बन्धित, आठ बजे से मुद्रालेख, अंतिम अक्षर घोड़े के पैर-तले, पैर से बाईं ओर 'ह' और दाहिनी ओर 'तवजमध' कुछ और अधूरे अक्षर भी दृश्यमान (फ० ३,१०)।

पृष्ठभाग––पूर्ववत्।

३. स्वर्ण .८७", ११३.३ ग्रेन ; बयाना निधि, फ० ४,१२

पुरोभाग—घोड़े के अयाल में मोती की लड़ी, पीठ पर अर्द्धचन्द्र नहीं, लेख आठ बजे से—'राजाधिराज पृथवमवत्व दव जय'।

पृष्ठभाग –रानी के पैर तले मणी लगी चटाई; मुद्रालेख––'अश्वमेधपराक्रमः' (फ० ३,७)।

४. स्वर्ण .८", ११४.८ ग्रेन ; बयाना निधि, फ० ५,४

पुरोभाग—घोड़े के गले में पट्टा, मुद्रालेख पाँच बजे से—'रजधरज पृथव'।

पृष्ठभाग—रानी का कद छोटा, मणी लगी चटाई, मुद्रालेख—'अश्वमेधपराक्रम' ; 'र' में 'क' जुड़ा हुआ (फ० ३,८)।

५. स्वर्ण .८", ११५.२ ग्रेन, बयाना निधि, फ० ५,१

पुरोभाग—नौ बजे से मुद्रालेख शुरू, पहला अक्षर अदृश्य, बारह बजे से 'जु त द व ज', यहाँ पर लेख 'विजित्य दिवं' ज, या जु गलती से खुदा गया 'जि' के स्थान पर, पताका के बड़े होने के कारण स्थानाभाव से 'त्य' के स्थान पर 'त'[1] (फ० ३,६)।

पृष्ठभाग—रानी नाटे कद की, लेख–'अश्वमेधपराक्रमः'।

६. स्वर्ण, .८४" ११५.१ ग्रेन, बयाना निधि, फ० ५,२

पुरोभाग—नौ बजे के स्थान पर सिक्का फटा ; घोड़े की पीठ पर अर्द्धचंद्र, आठ बजे से लेख ; 'मवत दव जयत्यहृत' यूप तथा घोड़े के मुख पर फट का निशान (फ० ३,११)।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्।

७ स्वर्ण, .८", ११५ ग्रेन, न्यू० क्रा० [2] १८६१, फ० २,३

पुरोभाग—घोड़े के गले में पट्टा, घोड़े के नीचे चबूतरा ; वेदी के ऊपर मुद्रालेख बारह बजे से आरम्भ–'राजाधिराज पृथि।'

पृष्ठभाग—मुद्रालेख–'अश्वमेधपराक्रम' (फ० ३, १२)

(उ) व्याघ्रनिहंता प्रकार

समुद्रगुप्त के दुष्प्राप्य सिक्कों में व्याघ्रनिहंता का नाम लिया जा सकता है। इसके केवल छः सिक्के अभी तक मिले हैं—दो बयाना से प्राप्त, किन्तु शेष अन्य का स्थान ज्ञात नहीं। आकार .८५" तथा तौल १११ से ११७ ग्रेन। कम तौलवाले सिक्के घिसे हैं ; पर औसत तौल ११५ ग्रेन है।

इसके पुरोभाग पर राजा बायें खड़ा है और व्याघ्र को पैर से दबा कर धनुष से निशाना लगा रहा है। राजा तथा व्याघ्र के मध्य में चन्द्रध्वज है। पृष्ठभाग पर मकरवाहिनी गंगा खड़ी हैं। उसके बायें हाथ में कमल है ; किंतु दाहिना हाथ खाली है। देवी के सम्मुख भी चन्द्रध्वज है।

कलात्मक दृष्टि से व्याघ्रनिहंता प्रकार अत्यन्त सुन्दर है तथा दृश्य का प्रदर्शन प्रभावोत्पादक है। राजा का शरीर भव्य तथा आकृति आवेशपूर्ण है। चिपके वस्त्रों में से राजा का सुगठित मांसल शरीर दीख पड़ता है। सिक्के में विदेशीपन का लेश भी नहीं है। कुषाण पोशाक की जगह भारतीय वस्त्र दिखलाई पड़ते हैं। पृष्ठभाग पर सिंहासनारूढ़ देवी के स्थान गंगादेवी है, जिसकी शरीर-यष्टि सुन्दर है। वह कुशलता से अंकित की गई है।

---

१. श्री ऍलन का कथन है कि बोडलिन तथा डा० हॉय के एक सिक्के पर पहली पंक्ति में 'पृथिवीं बिजित्य' यह मुद्रालेख है। दोनों ही मुद्राएँ अप्रकाशित हैं। (ब्रि० म्यू० कै० पृ० २१ नोट १)।

२. इ० म्यू० कै० भा १ फ० १५, ३ पर ऐसा ही सिक्का प्रकाशित है, पर 'सि' के नीचे चबूतरा अस्पष्ट है। ऐसे दो सिक्के मिले हैं।

दीर्घ अनुभव के कारण टकसालवालों को जो कुशलता मिली थी, उसका आभास इन सिक्कों से मिलता है। इसलिए यह अनुमान किया जा सकता है कि इस प्रकार के सिक्के समुद्रगुप्त के अंतिम काल में तैयार किये गये होंगे। इसी प्रकार से सिंहनिहंता प्रकार का सिक्का उत्तराधिकारियों के समय नकल किया गया था जो अगले समय में बहुत ही लोकप्रिय हो गया।

पृष्ठभाग पर की देवी कौन है, यह कहना कठिन है। स्मिथ का विचार था कि यदि देवी के वाहन मकर का विचार किया जाय तो उसको वरुण पत्नी वरुणानी मानना चाहिए, राजा का नाम समुद्र भी वरुण से संबंधित है। उनका यह भी सुझाव था कि देवी कामदेव की भार्या रती भी हो सकती जिसका वाहन मकर है [१]। गुप्तकाल में गंगा यमुना का प्रदर्शन मिलता है और देवी यहाँ मकर पर खड़ी है जो मकर गंगा का वाहन है। इस पर विचार करने से गंगा ही मालूम पड़ती है। बायें हाथ में कमल है; किंतु वह पुष्प केवल लक्ष्मी से ही सम्बन्धित नहीं हैं।

पृष्ठ भाग पर गंगा की स्थिति अश्वमेध सिक्के पर स्थित रानी से मिलती-जुलती है। दोनों सुन्दर रीति से अंकित की गई हैं। दोनों पर कोई भी चिह्न (symbol) नहीं है। सम्भवतः दोनों समकालीन थे।

इस प्रकार के प्रथम उपप्रकार के पृष्ठभाग पर मुद्रा-लेख 'राजा समुद्रगुप्त', लिखा है। उसमें कोई राजकीय पदवी नहीं है जिसके लिए कई अनुमान उपस्थित किये जाते हैं। स्मिथ ने कहा था कि समुद्र ने अपने पिता के जीवन में युवराज काल में चलाया था [२]। जायसवाल का मत था कि वाकाटक राजा प्रथम प्रवरसेन के शासन में जब गुप्त राजाओं का दर्जा गिर कर सामंतो का हुआ था, तभी यह प्रकार निकाला गया था [३]। किंतु समुद्रगुप्त वाकाटकों का सामंत कुछ काल के लिए हुआ था, इसका कोई भी प्रमाण नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि यह मुद्राप्रकार समुद्रगुप्त के शासन के पिछले समय में तैयार कराया गया था। मुद्रानिर्माण की परिपाटी के कारण पृष्ट भाग का मुद्रालेख हमेशा छोटासा रहता था। इसलिए उसमें समुद्रगुप्त को केवल राजा की उपाधि दी गई है, उसके युवराज या सामंत होने के कारण नहीं। इसलिए समुद्रगुप्त के वीणाधारी तथा प्रथम कुमारगुप्त के खड्गधारी प्रकार के सिक्कों पर पृष्ठभाग में इस से भी अधिक संक्षिप्त लेख अंकित हैं। उधर सब प्रकार की पदवी का अभाव है और केवल नाम मात्र खोदा गया है। 'समुद्रगुप्त' तथा 'श्री कुमारगुप्त'। प्रथम कुमारगुप्त के खड्गनिहंता प्रकार के सिक्कों पर पुरोभाग या पृष्ठभाग में कोई पदवी अंकित नहीं है। क्या इससे यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि कुमारगुप्त उस समय सामंत भी न था?

इस प्रकार के सिक्के के दो उपप्रकार हैं। पहले में 'व्याघ्रपराक्रमः' मुद्रालेख दोनों ओर हैं; परन्तु दूसरे में पुरोभाग पर 'व्याघ्रपराक्रमः' और पृष्ठभाग पर 'राजा समुद्रगुप्त' लिखा है।

---

१. ज॰ ए॰ सो॰ बं॰ १८८४, १ पृ॰ १७७।
२. ज॰ रा॰ ए॰ सो॰ १८८९ पृ॰ ६५।
३. भारत का इतिहास पृ॰ ११८।

इसका विवरण निम्नलिखित है—

व्याघ्र-निहंता प्रकार [1]

पुरोभाग—राजा बायें खड़ा, पगड़ी, जाकेट तथा धोती पहने, हार, कुण्डल, भुजबंध धारण किये, झपटता हुआ व्याघ्र को पैर से कुचलते हुए, दाहिने हाथ से प्रत्यंचा कान तक खींचते हुए ; व्याघ्र पीछे गिर रहा है, उसके पीछे चन्द्रध्वज फीता से विभूषित ; वर्तुलाकार मुद्रालेख केवल दाहिने भाग में 'व्याघ्रपराक्रमः' (व्याघ्र की तरह शक्तिशाली) ।

पृष्ठभाग—विंदुविभूषित वर्तुल में मकरवाहिनी गंगा, साड़ी, चोली, कुण्डल, हार, भुजबंध व कंकण कड़ा पहने हुए, बायें हाथ में खिला कमल, दाहिना हाथ खाली, फीता लगा चन्द्रध्वज, मुद्रालेख 'व्याघ्रपराक्रमः' अथवा 'राजा समुद्रगुप्तः' ।

प्रथम उपप्रकार

स्वर्ण ; .८, ११६ ग्रेन, बयाना-निधि फ० ६, १०

पुरोभाग— राजा की आकृति भव्य तथा आवेशपूर्ण, व्याघ्र को कुचलता हुआ ; लेख अधूरा, केवल 'व्याघ्र' तथा 'र' दिखलाई पड़ता है; व्याघ्र गिरता हुआ दीखता है, ब्रि० म्यू० कै० (फ० २, १५) से यह मुद्रा अधिक अच्छी हालत में ।

पृष्ठभाग—मुद्रालेख 'व्याघ्रपराक्रमः' (फ० ३, १३) ।

द्वितीय उपप्रकार

स्वर्ण ; .८५, ११६·६ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कै० फ० २, १४ ।

पुरोभाग—पूर्ववत्, मुद्रालेख 'व्याघ्रपराक्रमः' ।

पृष्ठभाग— मुद्रालेख अधूरा, 'राजा समुद्रगुप्त[2] (फ० ३, १४) ।

(ऊ) वीणाधारी प्रकार

प्रायः वीणाधारी प्रकार के सिक्के दुष्प्राप्य हैं। पहले ढंग के सिक्के तो पाँच, दो तथा एक की संख्याक्रम से ब्रिटिश संग्रहालय, कलकत्ता तथा लखनऊ के संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। बयाना निधि में इस प्रकार के दो सिक्के मिले हैं ।

दूसरे उपप्रकार के सिक्के भी कम मिलते हैं। ब्रिटिश संग्रहालय में तीन हैं और बयाना निधि में चार मिलते हैं । बमनाला निधि में एक मिला है । इन सिक्कों का आकार ·८५" (प्रथम उपप्रकार तथा ·७५" (द्वितीय उपप्रकार) है ; परन्तु बड़े आकारवाले सिक्के तौल में

---

१. ब्रि० म्यू० कै० फ० २, १४-१५ ; ज० ए० सो बं० १८८४ फ० २, १० : १८९४ फ० ६, २; ज० रा० ए० सो० १८८९ फ० १; २ ।

२. ज० ए० सो० बं० १८८४ फ० २, १० ; ज० रा० ए० सो० १८८९ फ० १,२ ।

कम हैं, जिनकी तौल १११-११७ ग्रेन तक पाई जाती है। छोटे आकारवाले सिक्के तौल में भारी हैं तथा ११६ से १२१ ग्रेन तक के पाये गये हैं।

वीणाधारी प्रकार में राजा गद्देदार पर्यङ्क पर बैठकर वीणा बजा रहा है जो उसकी गोद में रखी है। पृष्ठभाग पर देवी मोढ़े पर बैठी है। बायें हाथ में कार्नुकोपिया तथा दाहिने में पाश धारण किये है।

वीणाधारी प्रकार में निहित भावना सर्वथा भारतीय है, और उनकी बनावट सुंदर है। कार्नुकोपिया को छोड़ दिया जाय तो उनमें विदेशीपन की कोई भी निशानी नहीं मिलती है। महाराजा ऊँची पीठवाले पर्यङ्क पर बैठे वीणा बजा रहे हैं। शरीर के अर्द्धभाग पर वे कुछ भी वस्त्र नहीं पहिने हैं। संभवतः महाराज गर्मियों में महल के खुले बुर्ज पर वीणा बजाकर अपने विरले अवकाश का सदुपयोग कर रहे हैं। समुद्रगुप्त के गान-नैपुण्य का वर्णन प्रयाग स्तम्भ-प्रशस्ति में भी मिलता है, जहाँ नारद और तुम्बरू से भी समुद्रगुप्त का संगीत अच्छा बतलाया गया है।

आजकल की सीधी वीणा से समुद्र के वीणायंत्र में अन्तर है। आजकल की वीणा आकार में सीधी रहती है और उसमें दोनों ओर खुटियाँ लगी रहती हैं। ऐसी वीणा पाल-युग से आगे के काल में मिलती है। किन्तु इसके पहले काल में वीणायंत्र शृंगाकार या अर्ध-वर्तुलाकार रहता था, और उसमें सात तार लगे रहते थे। ऐसी ही वीणा भारहुत, सांची तथा बेसनगर की कला में मिली है।[1]

चबूतरे के नीचे 'सि' अक्षर से सिद्ध का छोटा रूप प्रकट होता है। चूँकि समुद्र के अश्वमेध सिक्के पर भी यह अक्षर मिलता है, अतः यह सुझाव रखा जा सकता है कि किसी शुभ घड़ी अथवा शुभ घटना के अवसर पर इस प्रकार के सिक्के तैयार किये गये होंगे। शतपथ ब्राह्मण में वर्णन आता है कि एक राजन्य को ऐसे अवसर पर वीणा पर स्वरचित तीन गाथा (गीत) गाना जरूरी था, जिससे यज्ञकर्त्ता की सामर्थ्य और ऐश्वर्य का पता लगे।[2] यह असम्भव है कि समुद्रगुप्त के अश्वमेध में खुद राजा ने एसी गाथाओं को गाया; किन्तु अश्वमेध यज्ञ का गाथागान और समुद्रगुप्त का गान-प्रेम इन दोनों के कारण वीणाधारी प्रकार की कल्पना टकसालवालों को आई होगी।

पृष्ठभाग पर देवी मोढ़े पर बैठी है। यहाँ मुद्रा निर्माताओं ने देवी के बैठने में नवीनता दिखाने का प्रयत्न किया है। स्मिथ के मतानुसार यह उस दिमतर देवी का अनुकरण है जिसकी आकृति ब्रिटिश संग्रहालय में सुरक्षित एक परास द्वीप के सिक्के पर दिखाई देती है।[3] जब तक यह पूरी तरह से ज्ञात नहीं हो जाता कि ये विदेशी सिक्के भारत में प्रचलित थे, उस समय तक विदेशी सिक्कों के अनुकरण की बात यथार्थ नहीं मानी जा सकती है।

---

१. ज० अ० ओ० सो० १९३० पृ० २४४।

२. श० ब्रा० १३, ४, ३;५।

३. ज० ए० ए० सो० १८८९ पृ० २४।

मोढ़े पर स्थित देवी का चिह्न समूह (motif) उत्तर काल में लोकप्रिय होता गया जो द्वितीय चन्द्रगुप्त तथा प्रथम कुमारगुप्त के अश्वरोही प्रकार में प्रयुक्त है।

इस प्रकार के एक सिक्के के पृष्ठभाग पर 'सर्मुद्रगुप्त' लिखा मिलता है (फ० ३, १५)। श्री ॲलन का कथन है कि मुद्रा-निर्माता ने प्रथम अनवधान से काच सिक्के के पृष्ठभाग पर खुदे 'सर्वराजोच्छेता' लेख लिखना शुरू किया, किन्तु जब 'सर्व' खोदने के पश्चात् गलती ध्यान में आई तो 'र्व' अक्षर का रूपान्तर 'मु' करने का प्रयत्न किया है। अक्षर निस्संदेह 'मु' के समान दीखता है। किन्तु स्मिथ महोदय का मत तभी स्वीकार किया जा सकता है जब हम काच और समुद्रगुप्त को एक ही व्यक्ति का नाम मानें। किन्तु आगे चलकर यह दिखाया जायगा कि काच समुद्र से भिन्न था।

वीणा प्रकार के दो उपप्रकार मिलते हैं। पहले उपप्रकार के सिक्के पतले, आकार में बड़े और कलाकी दृष्टि से सुन्दर हैं। उनपर पुरोभाग में राजा के पैर-तले तिपाई है; पर पृष्ठभाग पर चिह्न का अभाव है। द्वितीय उपप्रकार के सिक्के छोटे तथा सौन्दर्य-हीन हैं। इनके पुरोभाग में प्रायः तिपाई नहीं रहती है और पृष्ठभाग पर चिह्न मिलता है। किंतु हाल ही मैने एक द्वितीय प्रकार की मुद्रा देखी थी जिसके पृष्ठभाग पर चिह्न नहीं था।

इस सिक्के के प्रथम उपप्रकार का निरीक्षण करने से प्रकट होता है कि यह राजधानी में तैयार किया गया था। एक तो अधिकतर सिक्के काशी और अवध में उपलब्ध हुए हैं और दूसरे इसमें पूर्वी शैली का 'ह' अक्षर खुदा है। द्वितीय ढंग के सिक्के तो राज्य के चारों ओर, अलवर में १, बयाना में चार, तथा बमनाला में १ ऐसे प्राप्त हुए थे। 'म' अक्षर पश्चिमी शैली का है। विभिन्न शैली के अक्षरों का अंकन कोई सबल प्रमाण नहीं है; क्योंकि सोने के सिक्के दूर तक भ्रमण किया करते हैं। समुद्रगुप्त के ध्वजधारी सिक्के पर दोनों शैली के 'म' एक ही सिक्के पर खुदा देखा गया है। तथापि यह अनुमान करना अनुचित न होगा कि पहले उपप्रकार के सिक्के राजधानी में तथा दूसरे उपप्रकार के सिक्के प्रान्त में तैयार किये गये होंगे। राजधानी में तैयार सिक्के के लिए अच्छे कलाकार भी मिले होंगे। अतः वे अधिक सुन्दर हैं।

वीणाधारी प्रकार के सिक्कों का वर्णन निम्नलिखित प्रकार का होगा—

पुरोभाग—प्रभामण्डलयुक्त राजा, पैर मोड़े गद्देदार पर्यङ्क पर बैठा, जाँघिया पहने, मोती लगे टोपी, हार, कुण्डल, भुजबंध पहने, वीणा बजाता, गोद में वीणा रक्खे; पर्यङ्क के नीचे तिपाई जिसपर 'सि' अक्षर (पहले उपप्रकार में); वर्तुलाकार मुद्रा-लेख बारह बजे से—'महाराजाधिराजश्रीसमुद्रगुप्तः' (महाराजाओं का अधिराज श्री समुद्रगुप्त)।

पृष्ठभाग—लक्ष्मी प्रभामण्डलयुक्त, मोढ़े पर बैठी, साड़ी, चोली, चादर, हार, कुण्डल, भुजबंध, कंकण पहने, बायें हाथ में कार्नुकोपिया, दाहिने में पाश (दूसरे उपप्रकार में चिह्न) बायें लेख एक लकीर से देवी से विभक्त 'समुद्रगुप्त'।

फलक-स्थित मुद्रा का वर्णन

प्रथम उपप्रकार

(१) स्वर्ण—·८५, ११० ग्रेन, बि० म्यु० कै०, फ० ५, १

पुरोभाग—पर्यङ्क के चारों पैर दृष्टिगोचर होते हैं। पीठ पर गद्दा, राजा टोपी पहने, पर्यङ्क के नीचे पादासन, बारह बजे से लेख—'महाराजधिराजश्रीसमुद्रगुप्तः' अधूरा।

पृष्ठभाग—मोढ़े में कलात्मक पट्टियाँ, लेख समुद्रगुप्त; 'मुं' 'मु' के स्थान पर (फ० ३, १५)

(२) स्वर्ण, ८५, ११६·५ ग्रेन, वही, फ० ५, ३

पुरोभाग—पूर्ववत्, टोपी पहने राजा, शरीर के दबाव से गद्दी में गहराई, पर्यङ्क का पीठ एक ओर मणिभूषित। वीणा के तीन तार स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं। वर्तुलाकार लेख दाहिने—'महाराजाधराज', बायें–'समुद्रगुप्तः'।

पृष्ठभाग—चिह्न का अभाव, पर्यङ्क के नीचे पादासन, मुद्रा-लेख,–'समुद्रगुप्त' (फ० ३, १६)।

द्वितीय उपप्रकार [२]

(३) स्वर्ण—·७५, ११६·१ ग्रेन, बयाना निधि, फ० ६, ८

पुरोभाग—राजा नंगे सिर, केश तीन लटों में नीचे गिर रहे हैं, पर्यङ्क के नीचे पादासन नहीं. एक बजे से लेख–'महा· · · · · ·'दाहिने, सात बजे से 'समुद्रगुप्तः' अधूरा।

पृष्ठभाग—ऊपर बाईं ओर चिह्न, लेख 'समुद्रगुप्तः' (फ० ३, १७)

---

१. ब्रि० म्यू० कै० (फ० ५ १-७) ज० ए० सो० बं०; १८८४ पृ० ८२ (फ० २; ७)।

२. ब्रि० म्यू० कै० (फ० ५; ६); ज० न्यू० सो० इ०, भा० ५ (फ० ९, ७); ज० ए० सो० बं० १८८४ (फ० २, ८); ज० रा० ए० सो० १८८६ (फ० १, ६)।

पाँचवाँ अध्याय

काच के सिक्के

काच राजा का केवल एक ही प्रकार का सिक्का उपलब्ध हुआ है, जिसका आकार .७५" से .८५" है तथा तौल १११ से ११८ ग्रेन तक मिला है। उसकी मुद्रा दो तौल की थी, जिसमें एक की तौल ११५ ग्रेन तथा दूसरे की ११८ ग्रेन थी। इसके सिक्के बहुत दुष्प्राप्य नहीं हैं। इसके सात सिक्के ब्रिटिश संग्रहालय, तीन कलकत्ता संग्रहालय तथा चार लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित हैं। बयाना की निधि में काच के सोलह सिक्के मिले हैं। बयाना की तरह जौनपुर तथा टांडा से भी इस राजा के सिक्के प्राप्त हुए हैं।

काच के सिक्के समुद्रगुप्त के ध्वजधारी सिक्के से मिलते-जुलते हैं। दोनों के पुरोभाग पर राजा बाईं ओर खड़ा वेदी पर आहुति दे रहा है। समुद्रगुप्त के हाथ में साधारण दण्ड है; किंतु काच के हाथ में 'चक्रध्वज' है जिसके सिरे पर चक्र है। पृष्ठभाग पर बहुत विभिन्नता दिखलाई पड़ती है। काच के सिक्के पर देवी बाईं ओर खड़ी हैं और दाहिने हाथ में पुष्प धारण किये है। किंतु समुद्रगुप्त के सिक्के पर वह सिंहासन पर बैठी है खड़ी नहीं है।

इन सिक्कों को चलानेवाला कौन गुप्त राजा था या वह गुप्तेतर वंश का कोई शासक था, यह कहना कठिन है। काच नाम के किसी राजा का नाम गुप्त वंशावलियों में कहीं भी नहीं मिलता है। यह सर्वसम्मति से स्वीकृत है कि काच राजा का काल गुप्त राज्य के आरंभ में ही हो सकता है। कारण यह है कि इसके सिक्के प्रायः प्रथम चन्द्रगुप्त, समुद्रगुप्त तथा द्वितीय चन्द्रगुप्त के साथ ही मिले हैं। जैसे टांडा-निधि में प्रथम चन्द्रगुप्त, समुद्रगुप्त तथा काच के सिक्के मिले हैं। बलिया में केवल समुद्रगुप्त के और काच के सिक्के उपलब्ध हुए। बयाना के १८२१ सिक्कों में से एक भी ऐसा सिक्का नहीं है, जो गुप्त राजाओं का न हो। उसी में काच के सोलह सिक्के प्राप्त हुए थे। अतः यह सम्भव है कि काच एक गुप्त शासक था। यद्यपि यह असम्भव नहीं समझा जा सकता कि काच एक शक्तिशाली व्यक्ति था, जिसने प्रथम चन्द्रगुप्त से गद्दी छीन ली अथवा समुद्र के दक्षिण विजययात्रा के दिनों में पाटलीपुत्र में बगावत की और कुछ काल राज्य चलाया। अधिकतर विद्वान् प्रायः काच को एक गुप्तवंश का राजा मानते हैं; किंतु वह कौन था, इस विषय में गहरा मतभेद है। आरम्भ में प्रिन्सेप तथा टामस ने यह मत प्रकट किया था कि काच और घटोत्कच (प्रथम चन्द्रगुप्त के पिता) एक ही व्यक्ति हैं। परन्तु यह मत अमान्य हो गया। घटोत्कच एक सामन्त था, अतएव उसके द्वारा सिक्का तैयार करने की सम्भावना नहीं। कई सिक्कों पर कच के बदले स्पष्ट रूप से काच दीखता है। अतः यह सम्भव नहीं है कि घटोत्कच को संक्षेप कर के कच कर दिया गया हो।

अब इसके सम्बन्ध में दो मुख्य मत हैं। एक मतानुसार काच तथा समुद्रगुप्त की एकता स्थिर की गई है। दूसरे मत से वह समुद्रगुप्त का पुत्र या भाई माना जाता है। किंतु किसी भी मत की पुष्टि के लिए प्रबल प्रमाण नही है। प्रमाण कितने विवादास्पद और अनिर्णयकारी हैं—यह इससे ज्ञात होगा कि स्मिथ-ऐसे विद्वान् ने तीन बार अपना मत बदल दिया है[1]।

समुद्रगुप्त तथा काच की एकता के बारे में निम्नलिखित प्रमाण दिये जाते हैं —

(१) काच सिक्कों की औसत तौल ११६ ग्रेन समुद्रगुप्त के बराबर है।

(२) उसके पुरोभाग का लेख—'काचो गामवजित्य कर्मभिरुत्तमैर्दिवं जयति'—समुद्रगुप्त के लेख (अप्रतिरथो विजित्य क्षितिं सुचरितैर्दिवं जयति) का परिवर्तित रूप है जो धनुर्धारी सिक्कों पर उत्कीर्ण मिला है।

(३) इसका पृष्ठभाग समुद्रगुप्त के व्याघ्र-निहंता तथा अश्वमेध सिक्कों के उसी भाग से बहुत अंश तक मिलता है।

(४) काच सिक्कों के पृष्ठभाग पर खुदा हुआ विरुद 'सर्वराजोच्छेता' गुप्त लेखों में केवल समुद्रगुप्त के लिए ही प्रयुक्त मिलता है।

(५) नामों की विभिन्नता व्यक्ति की एकता के लिए बाधा नहीं डाल सकती है। द्वितीय चन्द्रगुप्त का एक दूसरा नाम देवगुप्त भी था। समुद्रगुप्त का मूल नाम काच था, बंगाल तक राज्य फैलने पर समुद्र से सम्पर्क होने के बाद उसने समुद्रगुप्त नाम रख लिया।

किन्तु अभिमत सिद्धान्त प्रस्थापित करने के लिए ऊपर के प्रमाण पर्याप्त नहीं हैं। प्रथम प्रमाण केवल यह बतलायेगा कि काच द्वितीय चन्द्रगुप्त से पीछे नहीं रक्खा जा सकता। उस समय गुप्त सिक्कों की औसत तौल १२५, १२६ ग्रेन तक बढ़ गई थी। द्वितीय प्रमाण भी विशेष पुष्ट नहीं है। मुद्रालेखों के साधर्म्य या समानता के आधार पर चलानेवालों की एकता नहीं सिद्ध होती। काच के मुद्रालेख से मिलने-जुलनेवाला लेख 'गामवजित्य सुचरितैः कुमारगुप्तो दिवं जयति' प्रथम कुमारगुप्त के खड्गधारी सिक्के पर मिलता है। वह 'काचो गामवजित्य सुचरितैः दिवं जयति' से मिलता-जुलता है। इस लेख में साधर्म्य के आधार पर यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि प्रथम कुमारगुप्त काच या समुद्रगुप्त एक ही व्यक्ति हैं। तीसरे प्रमाण से यह प्रकट होता है कि काच सिक्का व्याघ्रनिहंता या अश्वमेध सिक्का के बाद में प्रचलित किया गया था। उसे काच अथवा किसी उत्तराधिकारी ने तैयार किया होगा ; किंतु अंतिम दोनों प्रमाण काफी सबल हैं। सम्भवतः द्वितीय चन्द्रगुप्त की तरह समुद्रगुप्त के दो नाम थे और दोनों को भी सिक्कों पर स्थान दिया गया था। 'सर्वराजोच्छेता' पदवी गुप्त राजकीय लेखों में समुद्रगुप्त के लिए प्रयुक्त की गई है। और वह काच की मुद्राओं पर मिलती

---

१. ज० रा० ए० सो०१८८९प०७५-७६ में स्मिथ ने समुद्र और काच को एक ही माना; फिर रैपसन से सहमत होकर दोनों को विभिन्न घोषित किया [ज० रा० ए० सो० १८९३पृ० ९५] कुछ साल बाद वह अपने पूर्वमत को फिर से पुष्ट करने लगे (इ. अँ० १९०२ पृ० २५९) फ्लीट तथा श्री एलन ने दोनो को एक ही माना है (कॉ० इ० इ०;३,पृ० २७; ब्रि० म्यू० कै०, प्रस्तावना पृ०३२)।

अतएव काच तथा समुद्र एक माने जा सकते हैं। चन्द्रगुप्त के द्वितीय नाम देवगुप्त की तरह समुद्र का दूसरा नाम काच था।

किंतु उपर्युक्त प्रमाण निर्णायक नहीं है, हमें काच का समुद्रगुप्त से भिन्न होना ही संभवनीय मालूम पड़ता है। द्वितीय चन्द्रगुप्त का दूसरा प्रिय या घरेलू नाम देवगुप्त था। तथापि उसे सिक्कों पर स्थान नहीं मिला। समुद्रगुप्त के दूसरे नाम को सिक्कों पर क्यों स्थान दिया गया, यह समझना कठिन है। 'सर्वराजोच्छेत्ता' की पदवी पिछले गुप्त लेखों में समुद्रगुप्त के लिए प्रयुक्त की गई थी। यह असंभव नहीं है कि समुद्र से पूर्व या समकालीन राजा ने भी उसका प्रयोग किया होगा। उत्तरकालीन लेखों में समुद्रगुप्त के दिग्विजय के उपलक्ष्य में उसे यह भी पदवी दी गई होगी।

काच को समुद्रगुप्त से पृथक व्यक्ति मानने में निम्नलिखित प्रमाण हम उपस्थित कर सकते हैं।

(१) गुप्तसम्राटों की विभिन्न पदवियाँ जैसे अप्रतिरथ या सर्वराजोच्छेता उनके सिक्कों पर मिलती हैं, किंतु एक सम्राट् के सिक्के पर उसका एक ही व्यक्तिगत नाम सर्वत्र रहता है जो बाँह के नीचे लिखा जाता था। चूँकि बाँह के नीचे 'काच' और 'समुद्र' लिखा गया है, इस वजह से हमें काच व्यक्ति को समुद्र से पृथक् मानना उचित होगा।

(२) चक्रध्वज किसी अन्य राजा की मुद्रा पर नहीं मिलता है। अतएव काच उन सभी गुप्त राजाओं से भिन्न व्यक्ति है, जिनके सिक्के पर यह चक्रध्वज नहीं मिलता है।

(३) यदि काच तथा समुद्र एक ही व्यक्ति हैं तो समुद्रगुप्त के अन्य सिक्कों पर भी 'चक्रध्वज' रहना चाहिए। यह पताका केवल काच के सिक्के पर ही मिलती है।

(४) यदि समुद्र का प्रिय नाम काच था तो 'चक्रध्वज' प्रकार के अतिरिक्त किसी भी सिक्का पर वह क्यों नहीं अंकित कराया गया, यह समझना कठिन है।

काच को समुद्र से पृथक् मानने से ही सब मसला तय नहीं हो जाता, वरन् यह समस्या जटिल हो जाती है। क्योंकि साहित्य तथा प्रशस्तियों से ऐसे राजा का पता नहीं लगता। अनेक स्थानों पर गुप्त वंशावली का उल्लेख मिलता है; पर सब इस नाम से अनभिज्ञ हैं।

श्री राखालदास बनर्जी का मत था कि समुद्रगुप्त ने अपने भ्राता की यादगार में काच सिक्के को प्रचलित किया,[१] जो (भाई) देश को मुक्त करते समय युद्ध में मारा गया। उसका निजी नाम काच था और पदवी सर्वराजोच्छेत्ता। उस सिक्के की सुन्दरता तथा मौलिकता का एकमात्र कारण यही हो सकता है कि समुद्रगुप्त ने अपने शासन के अंतिम दिनों में इस प्रकार के सिक्के निकाले थे।

किंतु यह ध्यान में रखना है कि हिन्दू परम्परा में स्मारक सिक्कों को कोई स्थान नहीं। यह भी प्रमाणित नहीं हो सका है कि काच नामक व्यक्ति समुद्र का कोई भाई था, जो कुषाण युद्ध में मारा गया था।

---

१. एज आफ इम्पीरियल गुप्त—पृ० ९-११।

अभी हमें विचार करना है कि क्या काच समुद्रगुप्त का भाई था, जिसने उसके राज्यारोहण का विरोध किया था। समुद्र को युवराज घोषित करते समय उसके प्रतिस्पर्द्धियों के चेहरे पीले पड़ गये थे। प्रयाग प्रशस्ति के पाँचवे पद्य में प्रारम्भिक युद्ध का भी वर्णन किया गया है जो उत्तराधिकार का युद्ध हो सकता है। मंजुश्रीमूलकल्प में समुद्रगुप्त के कनिष्ठ भ्राता का उल्लेख मिलता है, जिसने गद्दी के लिए युद्ध किया था। यह सही है कि वहाँ उसके भ्राता का नाम 'भस्म' दिया है; किन्तु यह भी भूलना नहीं है कि इस ग्रंथ में ग्रंथकार ने कई जगह राजाओं के नामों के केवल आधे अक्षर दिये हैं और कई जगह उसका वृत्तांत अस्पष्ट है। काच राजा का दूसरा प्रिय नाम भस्म भी हो सकता है। काच के समुद्रगुप्त का समकालीन होने के कारण उसके सिक्के प्रायः चंद्रगुप्त और समुद्रगुप्त के सिक्कों के साथ मिलते हैं। समुद्रगुप्त ने थोड़े ही समय में उसका विद्रोह कुचल डाला; इसलिए वह एक ही प्रकार का सिक्का निकाल सका। किंतु मुद्राशास्त्रीय प्रमाणों से यह अधिक संभवनीय दीखता है कि काच समुद्रगुप्त के पीछे राज्याधिकारी हुआ होगा, न उसके राज्यारोहण के समय पर। काच के सिक्के समुद्र की दण्डधारी तथा धनुर्धारी मुद्राओं के बाद तैयार किये गये हों। उनमें जो कला-कौशल तथा चिह्न-समूह (motif) दिखाई देते हैं, वे प्रथम चन्द्रगुप्त के पश्चात् तुरंत असंभव थे। इस आधार पर काच की स्थिति समुद्रगुप्त के बाद ही रखना उचित होगा, क्योंकि उसके सिक्के के पृष्ठभाग पर व्याघ्रनिहंता तथा अश्वमेध प्रकारों के पृष्ठभाग का अनुकरण निस्संशय किया गया है। अभी यह देखना है कि क्या समुद्र तथा द्वितीय चन्द्रगुप्त के बीच कोई राजा सचमुच हुआ था?

देवी चंद्रगुप्त नामक नाटक में जो कथानक आया है इससे यह मालूम पड़ता है कि द्वितीय चंद्रगुप्त का एक रामगुप्त नामक बड़ा भाई था जिसने समुद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात् कुछ समय तक राज्य किया था।

किंतु शिलालेख या मुद्राओं पर रामगुप्त का नाम नहीं मिलता है। ऊपर दिखाया गया है हि काच समुद्रगुप्त से भिन्न था और उसके पश्चात् राज्याधिकारी हो चुका था। उसे रामगुप्त से अभिन्न मानने से कुछ समस्याएँ हल होती हैं। इस सिद्धान्त की पुष्टि के लिए निम्नलिखित प्रमाण दिये जा सकते हैं--

(१) जिसतरह द्वितीय चन्द्रगुप्त का दूसरा नाम देवगुप्त था, उसी तरह रामगुप्त भी काच होगा। यह भी सम्भव है कि चन्द्रगुप्त के ज्येष्ठ भ्राता का वास्तविक नाम 'काच' था जो लिखने की अशुद्धि से 'राम' हो गया। डा० डी० आर० भण्डारकर ने इसी मत का प्रतिपादन किया है [१]। गुप्तकालीन ब्राह्मी अक्षर 'का' के मध्य की लकीर हट जाने पर वह 'रा' की तरह प्रकट होने लगता है। 'म' अक्षर की बाईं ओर मोड़ हटा दी जाय तो वह 'य' से मिलने लगता है। इस तरह केवल लेखकों की लापरवाही के कारण काच का राम बन जायगा। काच नाम अज्ञात नहीं कहा जा सकता; क्योंकि एक ही वंश के दो वाकाटक

१. मालवीय कामेमोरेशन व्हॉलुम, पृ० १८९।

सामंतों ने ऐसा नाम धारण किया था। यदि साहित्य के रामगुप्त को मुद्रा के काच से एकता स्थापित करें तो काच सिक्के की विशेषता को निम्नलिखित रूप से समझाया जा सकता है।

(२) काच समुद्र का उत्तराधिकारी होने के कारण उसके सिक्के समुद्र के व्याघ्र-निहंता तथा अश्वमेधवाली मुद्रा का अनुकरण करते हैं।

(३) उस दशा में यह स्वाभाविक है कि काच ने प्रारम्भ में यह तय किया कि पिता की मुद्रा पर खुदे लेख कुछ परिवर्तन के साथ ग्रहण कर ले।

(४) समुद्रगुप्त ने अपने सिक्कों के पृष्ठ भाग पर 'सर्वराजोच्छेत्ता' की पदवी नहीं ली है। काच ने अधिक राजाओं के जीतने के विचार से इस पदवी को धारण किया ताकि पिता से भी अधिक ख्यातिवाला हो जाय। जिन्हें पिछले इतिहास का ज्ञान है, वे समझ सकेंगे कि यह पदवी अत्यधिक आशा के कारण धारण की गई थी। क्योंकि पंजाब के युद्ध में घिर जाने से पहले उसने कोई ऐसा कार्य नहीं किया जिसने पदवी की सार्थकता प्रकट हो।

(५) काचगुप्त या रामगुप्त ने थोड़े समय तक शासन किया। यही कारण था कि उसने एक ही ढंग के, तथा कम संख्या में, सिक्के तैयार करवाये।

(६) इसके सिक्कों की धातु तथा तौल यह बतलाती है कि यह मुद्रा चन्द्रगुप्त के १२५ ग्रेन वाले सिक्कों से पहले तैयार हो चुकी थी। काचगुप्त तथा रामगुप्त की एकता मान ली जाय तो यह समस्या हल हो जाती है।

(७) टांडा-निधि[१] से प्राप्त २५ सिक्कों में से दो प्रथम चन्द्रगुप्त का तथा शेष समुद्र और काचगुप्त का है। इसपर विचार करने से प्रश्न हल हो जाता है कि काच सिक्के समुद्रगुप्त से पीछे निकाले गये।

(८) काच उपनाम रामगुप्त अपने भाई चन्द्रगुप्त के सदृश वैष्णव मत का मानने वाला होगा; इसीलिए उसने चक्रध्वज का प्रयोग किया है।

(९) पिछले गुप्त लेखों से जान-बूझकर काच का नाम हटा दिया गया था। इसके सिक्के को भी पिछले राजाओं ने अनुकरण नहीं किया।

(१०) इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है कि गुप्त वंशावली में काच या रामगुप्त के नामोल्लेख का अभाव है। रामगुप्त की संतान उत्तराधिकारी नहीं हुई और वह स्वयं कुल-लांछन था। इसलिए उसका नाम जानबूझ कर मिटाया गया। स्कन्दगुप्त के छोटे भाई पुरगुप्त के पौत्र द्वितीय कुमारगुप्त के मुहर के वंशावली में स्कन्दगुप्त का नाम नहीं पाया जाता है। चूँकि वह उसके पितामह का भाई था न कि पिता। वंशावलियों में समकक्ष वंशजों के नाम प्रायः छोड़ दिये जाते है।

रामगुप्त का काच से एकता स्थापित करने के उपरिनिर्दिष्ट प्रमाण काफी महत्व के हैं इसमें शंका नहीं है। किन्तु हाल में रामगुप्त के ताम्बे के सिक्के प्रकाशित हुए हैं,

---

१. ज० ए० सो० बे० १८८४ पृ० १५२; इ० ऍ०, १९०२ पृ० २५९।

उसके कारण उस सिद्धान्त के मानने में कुछ बाधा आने लगी है। ये सिक्के मालवा में मिले हैं,[१] और उनपर रामगुप्त नाम स्पष्ट लिखा है। यदि इस रामगुप्त को गुप्तवंशी माना जाय तो 'देवी चन्द्रगुप्त' के चन्द्रगुप्त के बड़े भाई रामगुप्त की ऐतिहासिकता निस्संदेह सिद्ध होगी; किन्तु रामगुप्त की काच के साथ एकता मानने में कुछ बाधा होगी। यह विचित्र-सा मालूम होगा कि एक ही राजा सोने के सिक्के पर काच अंकित करें और ताम्बे के सिक्के पर रामगुप्त। यदि सचमुच उसके दो नाम हों तो यह करने में अशक्य नहीं था। किन्तु हमें अभी तक एक ही राजा के दो व्यक्तिगत नाम सिक्के पर नहीं मिले हैं। अभी तक द्वितीय चन्द्रगुप्त के किसी भी पूर्वाधिकारी के ताम्रसिक्के नहीं मिले हैं। ताम्रमुद्रावाला रामगुप्त मालवा का कोई छोटा राजा हो सकता है। जो प्रमाण इस समय ज्ञात हैं, उनसे हम रामगुप्त और काच की एकता के विषय में कुछ भी सिद्धान्तरूप से नहीं कह सकते। यह भी नहीं कहा जा सकता कि काच गुप्तवंश का था या नहीं। अधिक ठोस प्रमाण मिलने से ही इस समस्या का हल होगा।

बयाना-निधि के पता लगने से पूर्व काच का एक ही प्रकार का सिक्का ज्ञात था। बयाना-निधि से दूसरे उपप्रकार का सिक्का मिला है, जिसमें गरुड़ध्वज पुरोभाग पर तथा पाशयुक्त देवी पृष्ठ भाग पर दिखलाई पड़ती है।

सिक्कों का विवरण

पुरोभाग—समुद्र के दण्डधारी सिक्के की तरह राजा वस्त्र पहने, बाईं ओर खड़ा, बायें हाथ में चक्रध्वज, दाहिने से वेदी पर आहुति दे रहा है; सामने गरुडध्वज, बायें हाथ के नीचे 'काच', वर्तुलाकार मुद्रालेख, एक बजे से आरम्भ 'काचो गामवजित्य दिवं कर्मभिरुत्तमैः जयति' : 'पृथ्वी को विजय कर काच पुण्यकर्म से स्वर्ग की प्राप्ति करेगा।' छंद—उपगीति

पृष्ठभाग—प्रभामण्डल युक्त लक्ष्मी, गोल कालीन पर खड़ी, साड़ी, चोली, चादर, कर्णफूल, हार, भुजबंध पहने, दाहिने हाथ में फूल (पहले उपप्रकार में), पाश (दूसरे उप-प्रकार में), बायें हाथ में कॉर्नुकोपिया, चिह्न वर्तमान (मध्य में अथवा सिरे पर), मुद्रालेख 'सर्वराजोच्छेत्ता।'

पहला उपप्रकार[२]

गरुड़ध्वज के साथ

(१) स्वर्ण,—.७५", तौल, ११४.२ ग्रेन, बयाना-निधि फ० ६,१४

पुरोभाग—काच में का 'का' मात्रा पड़ी (horizontal) लकीर के रूप में सुस्पष्ट। मुद्रा लेख बाईं ओर से आरम्भ।

---

१. ज० न्यू० सो० इं०, १२, प० १०३, फ० ९।

२. ब्रि० म्यू० कै० गु० डा० फ० २,६—११; ज० ए० सो० बे० १८८४ फ० २, १; ज० रॉ० ए० सो० १८८९, फ० १, ३।

'काचोगामवजित्य दव', दाहिने 'मभरुत्तमै ज'

पृष्ठभाग—फूल अस्पष्ट, मध्य में चिह्न, लेख 'सर्वराजोच्छेत्ता' (फलक ४, १)।

(२) स्वर्ण, .८५",११६ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कै०, २,६

पुरोभाग—मोती लगा टोपी राजा के सिर पर, चेहरा सुस्पष्ट, वैसी ही का की 'आ' मात्रा। अंग-प्रत्यंग स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं। पड़ी मात्रा आ (का में); लेख बाईं ओर—'काचो गामवजित्य दव', दाहिने ओर, 'कमभरुत्तम ज'।

पृष्ठभाग—फूल का लम्बा नाल सुन्दर है, मध्य में चिह्न, लेख 'सर्वराजोच्छेत्ता' (फ० ४,२)।

(३) स्वर्ण, .८", ११७.३ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कै० गु० डा०, ११, १२

पुरोभाग—का की आ मात्रा स्पष्ट है जो तिरछी लकीर-सी दिखलाई पड़ती है। मुद्रा-लेख दाहिने, 'कर्मभिरुत्तमर्जय'।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, मुद्रा लेख, 'सर्वराजोच्छेत्ता' (फ० ४,३)।

(४) स्वर्ण, .८", ११६ ग्रेन पुरोभाग, ११४ ग्रेन पृष्ठभाग, बयाना निधि, फ० ७,५

पुरोभाग—हाथ के नीचे राजा का नाम कच (काच नहीं), मुद्रा-लेख बाईं ओर, 'कच गामवजित्य द', दाहिनी ओर, 'भरुत्त'।

पृष्ठभाग—देवी की सुन्दर मूर्ति, साड़ी और शिरोवस्त्र के साथ, वैचित्रपूर्ण चिह्न, लेख 'सर्व-राजोच्छेत्ता' (फ० ४,४)।

दूसरा उपप्रकार

गरुड़ध्वज के साथ

(५) स्वर्ण, .७५", ११६ ग्रेन, बयाना निधि फ० ७,११

पुरोभाग—बायें हाथ के नीचे काच अस्पष्ट, बायें हाथ में ध्वजदंड का उर्ध्वभाग दिखलाई नहीं देता किंतु उसके ऊपर का चक्र राजा के प्रभामण्डल के समीप अस्पष्ट रूप में दीखता है। बाईं ओर मुद्रा-लेख, दाहिनी और 'गरुड़ध्वज', मुद्रालेख 'रुत्तम जयत', इसपर अंतिम अक्षर न साफ है।

पृष्ठभाग—देवी दाहिने हाथ में फूल के बदले पाश लिये, बाईं ओर ऊपर चिह्न, लेख अस्पष्ट तथा अधूरा (फ० ४,५)।

---

१. इस चित्र के पुरोभाग और पृष्ठ भाग अलग सिक्के के हैं।

छठा अध्याय

द्वितीय चन्द्रगुप्त की स्वर्णमुद्राएँ

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के सदृश किसी अन्य हिन्दू राजा ने सम्भवतः इतने बड़े पैमाने पर स्वर्णमुद्राएँ तैयार नहीं कीं । उसके राज्य में सभी टकसाल कार्य में व्यस्त रहे । वर्त्तमान काल में भी साधारणतया प्राचीन सोने के सिक्कों में इसकी मुद्रा अधिकतर पाई जाती है । कुछ समय पूर्व तक द्वितीय चन्द्रगुप्त के छः प्रकार के सिक्के ज्ञात थे; किन्तु हाल में ही चक्र-विक्रम तथा दण्डधारी सिक्के ज्ञात होने के कारण उनकी संख्या आठ हो गई है । द्वितीय चन्द्रगुप्त ने अपने पिता के कई प्रकार के सिक्के को बंद कर दिया । प्रख्यात विजेता होते हुए भी उसने अश्वमेध सिक्के तैयार नहीं किये । क्योंकि संभवतः वह वैष्णवधर्मानुयायी था । परशुधारी प्रकार का भी सिक्का छोड़ दिया गया । जिसका कारण यही था कि कृतांतपरशु केवल उसके पिता का विरुद् था । समुद्रगुप्त के दण्डधारी सिक्के अत्यंत विपुल थे ; किंतु चन्द्रगुप्त के सिक्कों में उस प्रकार का केवल एक नमूना मिला है । धनुर्धारी प्रकार, जो शायद समुद्र-गुप्त के अपने अंतिम दिनों में निकाला गया था, चंद्रगुप्त ने अत्यधिक संख्या में निकाला । इस प्रकार में आश्चर्यजनक उपप्रकार दिखलाई पड़ते हैं । समुद्रगुप्त के व्याघ्रनिहंता को चंद्रगुप्त ने सिंहनिहंता के रूप में बदल दिया, जो लोकप्रिय हो गया । वीणाधारी प्रकार को पर्यङ्क प्रकार के रूप में लाया गया, जिस प्रकार के सिक्के दुष्प्राप्य हैं । इसीको सुधार कर पर्यङ्क स्थित राजारानी प्रकार निकाला गया होगा, जो और भी दुष्प्राप्य है । इस प्रकार के केवल दो सिक्के आज तक प्राप्त हुए हैं । चक्रविक्रम तो अत्यंत विरल है और आज तक उसका एक ही नमूना मिला है । अश्वारोही तथा छत्र प्रकार सर्वथा नवीन हैं और वे पर्याप्त संख्या में प्राप्त होते हैं ।

चन्द्रगुप्त के सिक्कों में केवल विक्रम, या अजित, सिंह या चक्र शब्दों से जुड़ी हुई विक्रम की पदवी मिलती है । स्टेसी के संग्रह में टामस ने एक सिक्का देखा था, जिसे वह मूल सिक्के का प्रतिरूप कहते हैं । वह सिंहनिहंता प्रकार का सिक्का है जिसके पुरोभाग पर टामस ने 'सिंहविक्रम कुमार (गुप्त परिधि) सिंह महेन्द्र' लेख पढ़ा है जिसके आधार पर, उनका सुझाव है कि विक्रम और महेन्द्र दोनों द्वितीय चन्द्रगुप्त के विरुद थे । वह सिक्का जाली प्रकट होता है और उसका लेख भी अस्पष्ट है । हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है कि चन्द्रगुप्त की पदवी महेन्द्र भी थी । उसका विरुद विक्रम था जिसका उपयोग उसने ही प्रथम किया । हम दिखा चुके हैं कि समुद्रगुप्त के लिए विक्रम पदवी का प्रयोग अत्यन्त संदेहात्मक है ।

द्वितीय चन्द्रगुप्त ने शासन के पिछले दिनों में चाँदी के सिक्के चलाये थे जो नये विजित प्रदेश गुजरात तथा काठियाबाड़ की आवश्यकता-पूर्ति के निमित्त तैयार किये गये थे । ताम्बे के कई प्रकार के सिक्के निकाले गये; पर उनकी संख्या बहुत कम है ।

इस राजा के विभिन्न प्रकार के सिक्कों का वर्णन अभी किया जायगा ।

(अ) धनुर्धारी प्रकार

द्वितीय चन्द्रगुप्त के समय में यह धनुर्धारी प्रकार का सिक्का अत्यन्त लोकप्रिय था । बयाना-निधि में ६७३ सिक्कों में से ७६८ सिक्के धनुर्धारी प्रकार के प्राप्त हुए हैं । ब्रिटिश तथा भारतीय संग्रहालयों में भी यह साधारणतया पाया जाता है । इस प्रकार के सिक्के अधिक संख्या में मिले हैं । ब्रिटिश-संग्रहालय में ३६ तथा कलकत्ता संग्रहालय में २८ सिक्के सुरक्षित हैं । धनुर्धारी प्रकार अगले दिनों में भी काफी लोकप्रिय रहा । गुप्तवंश के अवनतिकाल में भी दुर्बल शासक इसी प्रकार के मिश्रितधातु के सिक्के निकाल कर संतुष्ट होते रहे ।

इस प्रकार के सिक्के का व्यास .७५" से .६" तक होता है । उनकी तीन तौल मिली है—१२१ ग्रेन, १२४ ग्रेन, और १२७ ग्रेन । धनुर्धारी प्रकार के सिक्के गंगा की घाटी में सर्वत्र मिलते हैं ।

इस प्रकार में साधारणतया राजा बाईं ओर गरुड़ध्वज के साथ खड़ा रहता है । बायें हाथ में धनुष तथा दाहिने में बाण । इसके पहले वर्ग में देवी सिंहासन पर बैठी दिखलाई पड़ती है; किन्तु दूसरे वर्ग में कमल पर बैठी है । दूसरे वर्ग में देवी को निस्संशय लक्ष्मी बनाया है, चूँकि उसके बायें हाथ में कमल है और वह कमलासन पर बैठी भी है । बयाना-निधि में दूसरे वर्ग के ७५७ और पहले वर्ग के केवल ४१ सिक्के मिले हैं । इस निधि के सिक्के उत्तर-प्रदेश के उत्तरी भाग में इकट्ठे किये गये थे, जहाँ एक समय पिछले कुषाणों की मुद्राओं पर आरदोक्षो देवी लोकप्रिय हुई थीं । अभी उस प्रदेश में भी कमलासना लक्ष्मी रूढ़ होने लगी थी ।

यद्यपि पहले वर्ग के कम सिक्के मिले हैं; तथापि उनमें पुरोभाग तथा पृष्ठभाग पर पर्याप्त विविधता या विचित्रता वर्तमान हैं । पहले उपप्रकार में राजा का नाम बायें हाथ के नीचे लिखा गया है, पृष्ठभाग पर देवी के बायें हाथ में कॉर्नुकोपिया या कमल है तथा दाहिना हाथ खाली, पाश लिये हुए अथवा सुवर्ण मुद्रा बिखेरते हुए दिखलाया गया है । दूसरे और तीसरे उपप्रकारों में राजा का नाम धनुष तथा प्रत्यंचा के मध्य अंकित है । किंतु दूसरे उपप्रकार में प्रत्यंचा भीतर की ओर है और तीसरे में बाहर की ओर है । लेख बाईं ओर से आरम्भ होता है । चौथे प्रकार में राजा धनुष का मध्य भाग पकड़े है । प्रत्यंचा बाहर है । राजा का नाम डोरी के बाहर है । पाँचवें उपप्रकार में राजा का नाम 'चन्द्र' बाँह के नीचे अविद्यमान है । कमर से तलवार लटक रही है । इस प्रकार के सभी सिक्के १२१ ग्रेन तौल में हैं । कोई भी १२४ या १२७ ग्रेन का नहीं मिला है ।

धनुर्धारी प्रकार

पहला वर्ग

(पृष्ठ पर सिंहासनाधिष्ठित देवी)

पुरोभाग—राजा बाईं ओर खड़ा है। प्रभामण्डल युक्त कोट तथा पायजामा पहने, चिपकी टोपी—कभी-कभी मोती की लड़ी से युक्त, कुण्डल हार, भुजदण्ड, पहने हैं। बाएँ हाथ में धनुष और दाहिने में बाण, सामने गरुड़ध्वज, 'चन्द्र' लम्बवत् अंकित; वर्तुलाकार मुद्रालेख, 'देवश्रीमहाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तः'।

पृष्ठभाग—विन्दुविभूषित वर्तुल में सिंहासन पर बैठी लक्ष्मी, साड़ी, चोली तथा चादर पहने, कुण्डल, हार, भुजदण्ड, टीका धारण किये, पैरोंतले कमल का आसन या चटाई, किसी में सिंहासन की पीठ दिखलाई पड़ती है किन्तु दूसरे में अदृश्य; देवी के बायें हाथ में कार्नुकोपिया अथवा कमल, दाहिने हाथ में पाश, जो कभी खाली तथा कभी मुद्राएँ बिखेरते दिखाई पड़ते हैं। मुद्रालेख—'श्रीविक्रमः'; चिह्न दाहिनी ओर कभी-कभी, बाईं ओर सर्वत्र।

फलकस्थित सिक्के

पहला उपप्रकार

(राजा के बायें हाथ के नीचे 'चंद्र')

(१) सोना, .८५"(पुरो०), .८" (पृष्ठ०), तौल ११७.५ ग्रेन (पुरो०), १२२.५ (पृष्ठ०), बयाना निधि फ० ८, १२ पु०, फ० ८, ६ पृ०

पुरोभाग—राजा सुन्दर मोतियों की लड़ी से युक्त टोपी पहने है। मुद्रालेख बायें—'देव-श्रीमहाराजधिराज,—दाहिने, 'चन्द्रगुप्त' अस्पष्ट।

पृष्ठभाग—देवी के दाहिने हाथ में पाश, बायें में कॉर्नुकोपिया, सिंहासन की पीठ दृष्टिगोचर होती है। लेख—'श्री विक्रमः।'[१] (फ० ४, ६)

(२) सोना, '८", १२०.१ ग्रेन, बयाना निधि, फ० ८, ८१

पुरोभाग—राजा की टोपी सुन्दर है, सिर के पीछे पटबंध के दो खूँट उड़ते दिखलाई पड़ते हैं। बायें मुद्रालेख—'देव श्री महाराजाधराज'—दाहिने 'चन्द्रगुप्तः'।

पृष्ठभाग—देवी के मुड़े हुए बायें हाथ में कमल, दाहिने में पाश, सिंहासन की पीठ अदृश्य, लेख-'श्री विक्रमः' (फ० ४, ७)।

(३) सोना, .७५", ११६ ग्रेन, बयाना निधि, फ० ८, ६

पुरोभाग—लेख अस्पष्ट तथा अधूरा, बायें-'देव श्री महाराजाधराज'।

---

१. पुरोभाग व पृष्ठभाग अलग-अलग सिक्के के हैं।

पृष्ठभाग—देवी के बायें हाथ में कॉर्नुकोपिया, दाहिने हाथ से वह वर्तुल मुद्राएँ बिखेर रही है। सिंहासन की पीठ दाहिने कोने में दिखलाई पड़ती (फ० ४, ८)।

(४) सोना, .७५", ११८.५ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० ८, १

पुरोभाग—राजा की टोपी सुन्दर, दाहिनी ओर लेख—'देवश्रीमहाराज' बायें—'चन्द्रगुप्त'।

पृष्ठभाग—देवी का दाहिना हाथ खाली, बायें हाथ में कमल (फ० ४, ९)।

दूसरा उपप्रकार

(नाम 'चन्द्र' धनुष तथा प्रत्यंचा के बीच में)

सोना, .८५", ११९.८ ग्रेन (पुरो०), १२१.९ ग्रेन (पृष्ठ०) ब्रि० म्यू० कै० जी० डी०, फ० ४,४, तथा बयाना-निधि, फ० ८, १३

पुरोभाग—राजा का चेहरा सुस्पष्ठ, कोट में एक किनारे बटन, उसकी बाँहें छोटी, बायें हाथ में भुजबंध, राजा का नाम 'चन्द्र', धनुष तथा प्रत्यंचा के मध्य खुदा, प्रत्यंचा भीतर की ओर।

पृष्ठभाग—सिंहासन के चारों पाये दिखलाई पड़ते हैं, दाहिने ओर भी चिह्न, लेख–'श्रीविक्रम' (फ० ४, १०)।

तीसरा उपप्रकार

(प्रत्यंचा बाहर की ओर)

सोना, .८", ११९.४ ग्रेन, बयाना-निधि फ० ९, १२

पुरोभाग—सिक्के का टप्पा भद्दा है, सात बजे से वर्तुलाकार लेख आरम्भ, किन्तु बाईं ओर लेख सिक्के की सीमा से बाहर, दाहिने—'श्री चन्द्रगुप्त'; 'चन्द्र' धनुष तथा प्रत्यंचा के मध्य, जो बाहर की ओर है।

पृष्ठभाग—देवी के दाहिने हाथ में पाश तथा मुड़े हुए बायें में कमल, सिंहासन की पीठ अदृश्य (फ० ४, ११)।

चौथा उपप्रकार

('चन्द्र' प्रत्यंचा के बाहर अंकित)

सोना, .८", १२०.९ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कै० गु० डा०, फ० ६, ५

पुरोभाग—राजा के कोट में दोनो किनारे बटन, बाँहें छोटी. धनुष बीच से पकड़े है, प्रत्यंचा बाहर की ओर, 'चन्द्र' प्रत्यंचा के बाहर अंकित है।

पृष्ठभाग—देवी के बायें हाथ में कॉर्नुकोपिया, दाहिने में पाश, लेख अधूरा, 'श्रीविक्रमः' (फ० ४,१२)।

पाँचवाँ उपप्रकार

(पुरोभाग 'चन्द्र' रहित)

इस सिक्का का केवल वर्णन किया है। उसका चित्र, तौल और आकार अप्रकाशित है।

पुरोभाग--राजा बायें खड़ा है, धनुष पकड़े, प्रत्यंचा बाहर की ओर, बगल में तलवार लटकती हुई, लंबवत् मुद्रालेख--'चन्द्र' अनुत्कीर्ण।

पृष्ठभाग—सिंहासनारूढ देवी।

दूसरा वर्ग

इसमें पुरोभाग पहले वर्ग की मुद्रा के सदृश है। किन्तु राजा की स्थिति से कई ढंग में सिक्के विभाजित किये गये हैं। पतलून या पायजामा के स्थान पर राजा प्रायः धोती पहने है। पृष्ठ की ओर देवी सदा कमल पर बैठी है। दाहिने हाथ में पाश तथा बायें में कमल वर्तमान है। बायाँ हाथ कभी मुड़ा है, कभी कमर पर स्थित है या कभी जाँघ पर रखा है। इस वर्ग में ऐसा कोई भी सिक्का नहीं मिला है, जिसमें देवी का दाहिना हाथ खाली है या उससे स्वर्णमुद्राएँ बिखेर रही है। इस वर्ग में १६ उपप्रकार के सिक्के पाये गये है। पहले उपप्रकार (फ० ४,१३-१४) में राजा बाईं ओर खड़ा है। बायें हाथ से धनुष का सिरा तथा दाहिने में बाण पकड़े है। बायें हाथ के नीचे नाम 'चन्द्र' लिखा है। इस ढंग के सिक्के अत्यधिक मिले हैं। बयाना निधि के ७६८ धनुर्धारी प्रकार के सिक्कों में ७०० इसी उपप्रकार के हैं। इस उपप्रकार में तीन विभिन्न तौल के सिक्के तैयार किये गये थे—१२१ ग्रेन, १२४ ग्रेन तथा १२७ ग्रेन। पहली तौल लोकप्रिय थी। दूसरे उपप्रकार के (फ० ४,१५) (फ० ५,१), सिक्कों में गरुड़ध्वज के ऊपर अथवा राजा के सिर के समीप अर्द्धचन्द्र दिखलाई पड़ता है। तीसरे उपप्रकार के (फ० ५,२) सिक्के में उसी स्थान पर चक्र दृष्टिगोचर होता है, जो काच के चक्रध्वज के सदृश प्रकट होता है। चौथे उपप्रकार के (फ० ५,३) सिक्के में राजा बायें खड़ा है किन्तु दाहिने देख रहा है। इस उपप्रकार की मुद्राएँ केवल १२१ ग्रेन तौल की मिलती हैं। पाँचवें उपप्रकार (फ० ५,४) में राजा के बगल में छोटा चाबूक (hunter) तथा छठे प्रकार में (फ० ५,५) तलवार दिखलाई पड़ती है। पाँचवें उपप्रकार में सिक्के १२१, १२४ तथा १२७ ग्रेन के मिलते हैं; परन्तु छठे उपप्रकार के सभी सिक्के १२७ ग्रेन के हैं। सातवें उपप्रकार (फ० ५,६) पहले के सदृश है; किन्तु इसके पृष्ठ ओर देवी सुन्दर कमलासन पर बैठी है, जिसका दाहिना पैर नीचे लटका है। इस उपप्रकार के सभी सिक्के १२१ ग्रेन तौल में हैं। आठवें उपप्रकार (फ० ५,७) के सिक्के पहले उपप्रकार के समान ही हैं। किन्तु उनके पृष्ठभाग पर मुद्रा लेख 'श्रीविक्रमः' के स्थान पर 'चन्द्रगुप्त' मिलता है। नवें उपप्रकार (फ० ५,८ व ११)[1]

---

1. फ० ५,८, फ० ५, ११ से अभिन्न है। अनवधानता से फलक बनाते समय एक मुद्रा के दो फोटो अन्तर्भूत हुए है।

में राजा बायें खड़ा है किन्तु दाहिने में धनुष तथा बायें में बाण धारण किये है। उसका नाम चन्द्र दाहिने हाथ के नीचे लिखा है, बायें के नीचे नहीं। गरुड़ध्वज दाहिनी ओर वर्तमान है। दसवाँ उपप्रकार (फ० ५,६) नवें के समान है; किन्तु राजा दाहिने देख रहा है तथा बायें हाथ से बाण लुप्त सा हो गया है। वह हाथ कमर पर अवलम्बित है। इन दोनों उपप्रकारों में बायें हाथ में बाण दिखलाने का यह कारण हो सकता है कि टकसालवाले राजा को सव्यसाची दिखलाना चाहते थे। यह भी हो सकता है कि कलाकारों ने केवल विभिन्नता लाने के लिए यह परिवर्तन किया हो। इन दोनों उपप्रकारों के सिक्के तौल में १२० ग्रेन के लगभग मिलते हैं। ग्यारहवें उपप्रकार (फ० ५,१०) में राजा का नाम 'चन्द्र' धनुष तथा प्रत्यंचा के मध्य में खुदा है। राजा बायें हाथ से धनुष का मध्य भाग पकड़े है तथा दाहिने हाथ से तरकस से बाण निकाल रहा है। ध्वजधारी प्रकार के यज्ञवेदी स्थान पर तरकस दिखलाया गया है, जिसे वर्न ने भ्रम से एक समय वेदी ही समझ लिया था।[१] श्री ॲलन ने उसे तरकस कहकर उल्लिखित किया है। उसमें कई बाणों की नोक बाहर दिखलाई पड़ती हैं। किन्तु यह भी बतलाना आवश्यक है कि सिक्के में प्रदर्शित ढंग से तरकस कभी जमीन पर रखा नहीं दिखलाया जाता। बारहवें उपप्रकार में (फ० ५,१४) राजा दाहिनी ओर देख रहा है तथा मध्य में धनुष को पकड़े है जिसकी प्रत्यंचा बाहर की तरफ है। 'चन्द्र' प्रत्यंचा की दाहिनी ओर खुदा है।[२] तेरहवें उपप्रकार (फ० ५,१५) पूर्ववर्ती सिक्के के सदृश है ; पर राजा बाईं ओर देख रहा है और उसका नाम पुरोभाग पर लिखा नहीं मिलता। चौदहवें उपप्रकार का सिक्का प्रकाशित न हो पाया है।[२] उसके उल्लेख से प्रकट होता है कि वह पहले उपप्रकार की तरह तैयार किया गया है ; किन्तु राजा का नाम बाण से बाहर बाईं ओर अंकित है। यह कहना सम्भव नहीं कि पंद्रहवें उपप्रकार के सिक्कों को द्वितीय चन्द्रगुप्त ने तैयार किया था या किसी तृतीय चन्द्रगुप्त ने, जिसका अस्तित्व अभी तक अज्ञात है। इस प्रकार के केवल तीन सिक्के मिले हैं जो कलकत्ता संग्रहालय में सुरक्षित हैं। उनकी क्रम संख्या ३०,३१,३२ है। ये सब सिक्के तौल में लगभग १४० ग्रेन के हैं। उनमें से केवल एक पर राजा का नाम 'चन्द्र' लिखा है (फ० ५,१७)। दूसरे दो सिक्कों पर नाम न होते हुए भी स्मिथ ने उनको द्वितीय चन्द्रगुप्त का माना है। क्या ये सिक्के सचमुच द्वितीय चन्द्रगुप्त ने निकाले थे, यह कहना कठिन है। फ० ५,१७ पर राजा का नाम 'चन्द्र' लिखा है। किन्तु उनपर राजा के मुँह के सामने एक चिह्न है जैसा द्वितीय चन्द्रगुप्त के सिक्कों पर नहीं पाया जाता है। तीनों सिक्कों के धातु में मिलावट बहुत है। ३१ न० का सिक्का तो पीतल की तरह दीखता है। द्वितीय चन्द्रगुप्त के समय गुप्तसाम्राज्य वैभव-पूर्ण था। इसलिए यह असम्भव-सा प्रतीत होता है कि द्वितीय चन्द्रगुप्त ने ऐसे मिश्रितधातु के सिक्के निकाले हों। १४० ग्रेन तौल के भारी

---

१. न्यू० क्रॉ० १९१९ प० ३६९।

२. ज० रा० ए० सो० १८८३ पृ० १०५। यह सिक्का रिव्हेंट कर्नाक के संग्रह में था।

सिक्के द्वितीय चन्द्रगुप्त के समय प्रचलित नहीं थे। यदि इन कारणों से हम इन्हें द्वितीय चन्द्रगुप्त के न मानें तो उनको तृतीय चन्द्रगुप्त का समझना पड़ेगा, जिसका राज्यकाल छठी सदी के आरम्भ में हो। ठोस प्रमाण मिलने तक यह मानना अनुचित न होगा कि इस उपप्रकार के सिक्के द्वितीय चन्द्रगुप्त ने ही प्रचलित किये होंगे। उसका एक अश्वारोही सिक्का १४० ग्रेन का है जो बोडलियन संग्रह में है।[१]

स्मिथ के विचार में ये सिक्के द्वितीय चन्द्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात् तैयार हुए थे। पर इसके पक्ष में कोई प्रमाण नहीं है।

सोलहवाँ उपप्रकार (फ० ५,१३) का एक सिक्का बम्बई के संग्रहालय में सुरक्षित है। यह पहले ढंग-सा होने पर भी तौल में अर्द्ध दीनार है। दूसरे वर्ग का साधारण वर्णन पहले वर्ग के सदृश है, इसलिए उसकी पुनरावृत्ति न कर सिक्कों का वर्णन किया जायगा।

पहला उपप्रकार

(चन्द्र बायें हाथ के नीचे)

सोना, .८″ ; १२३.८ ग्रेन, बयाना-निधि फ० १०, १४।

पुरोभाग—राजा बायें खड़ा है, धोती पहने है ; बायाँ हाथ धनुष के सिर पर तथा दाहिने में बाण स्थित है। राजा के सिर पर बालों का फैलाव सुन्दर तथा भव्य है। सामने गरुड़ध्वज है। बायें हाथ के नीचे 'चन्द्र' लिखा है, वर्तुलाकार मुद्रा-लेख एक बजे से आरम्भ-'देवश्रीमहाराजाधिराज'; दाहिने के नीचे अस्पष्ट अक्षर 'चन्द्रगुप्त'।

पृष्ठभाग—देवी लक्ष्मी कमलासन पर बैठी, दाहिने हाथ में पाश तथा बायें में कमल है। बाईं ओर चिह्न, लेख—'श्रीविक्रमः' (फ० ४, १३)।

सोना, .८″, १२१.६ ग्रेन, बयाना-निधि फ० १०, ७।

पुरोभाग—पूर्ववत्, राजा पायजामा पहने है। दाहिने लेख—'श्रीचन्द्रगुप्तः'।

पृष्ठभाग—देवी का हाथ फैला हुआ, जाँघ पर अवलम्बित नहीं, लेख अधूरा पर पूर्ववत्। (फ० ४, १४)।

दूसरा उपप्रकार

(अर्द्धचन्द्र युक्त)

(११) सोना, .८″, १२०. ग्रेन, बयाना-निधि फ० ११, ११ पुरोभाग, फ० १२,२ पृष्ठभाग

पुरोभाग—पूर्ववत्, राजा के कोट में किनारे पर बटन हैं, मोती की लड़ी से युक्त टोपी पहने, मोती की माला, अर्द्धचन्द्र सिरे पर, बाईं ओर लेख—'देवश्रीम'—दाहिने—'चन्द्रगुप्त'।

१. ज० ए० सो० बं० १८८४ पृ० १८२ ; ज० रा० ए० सो० १८९३, पृ० १०५-६।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, लेख अधूरा, देवी का बायाँ हाथ जाँघ पर स्थित है। (फ० ४, १५)

(१२) सोना, .८", १२६.७ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कै० ७, १४

पुरोभाग—राजा धोती पहने, अस्पष्ट लेख, अर्द्धचन्द्र राजा के सिर तथा गरुड़ के मध्य में।

पृष्ठभाग—पूर्ववत् (फ० ५, १)।

तीसरा उपप्रकार

(चक्रयुक्त)

(१३) सोना, .७५", १३१.७ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कै० ७, १५

पुरोभाग—राजा धोती पहने, केश समूह में गिरते दिखलाई पड़ते हैं। गरुड़ध्वज का दण्ड यंत्र से तैयार किया गया है। राजा तथा ध्वज के मध्य चक्र।

पृष्ठभाग—पूर्ववत् (फ० ५, २)।

चौथा उपप्रकार

(राजा दाहिनी ओर देख रहा है)

(१४) सोना, .७५", १२१.४ ग्रेन, बयाना निधि १२.१५

पुरोभाग—राजा बायें भाग में खड़ा है, दाहिने भाग में देख रहा है, अनावृत शरीर स्नायुयुक्त और सुन्दर, लेख बाईं ओर–'देवश्रीमहाराजाधिराज श्री'।

पृष्ठभाग—देवी का हाथ फैला हुआ तथा घुटने पर स्थित, कमलासन सौंदर्ययुक्त है। लेख 'श्रीविक्रमः' (फ० ५,३)।

पाचवाँ उपप्रकार

(राजा हंटर के साथ)

(१५) सोना, .८", १२६.२ ग्रेन, बयाना-निधि फ० १२,२

पुरोभाग—पूर्ववत्, केवल हंटर बाईं ओर लटका हुआ है, उसके निचले भाग का चमड़ा उसके दंड से स्पष्ट भिन्न दीखता है।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, बायाँ हाथ कमर पर अवलम्बित, कमल बिन्दुसमूह की तरह सभी अस्पष्ट। (फ० ५, ४)।

छठा उपप्रकार

(राजा तलवार सहित)

(१६) सोना, .७५", १२७.३ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० १२, ३

पुरोभाग—राजा धोती पहने, कमरबंद के नीचे तलवार लटकती है। मूँठ म्यान से बाहर दिखलाई पड़ती है। भुजबंध दर्शनीय है, उसकी आकृति सुन्दर तथा सौष्ठवयुक्त।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, देवी का बायाँ हाथ जाँघ पर स्थित है। (फ० ५, ५)

सातवाँ उपप्रकार

(देवी पृष्ठभाग पर एक पैर लटकाये बैठी है)

सोना, .८", १२६.६ ग्रेन, बयाना-निधि फ० १२, ८

पुरोभाग—राजा कोट तथा पायजामा पहने, दाहिनी ओर लेख—'देवश्री महाराजाध'।

पृष्ठभाग—देवी के बायें हाथ में कमल, कमर पर अवलम्बित, दाहिनेमें पाश, बायाँ पैर कमलासन पर, दाहिना नीचे लटका हुआ (फ० ५, ६)।

आठवाँ उपप्रकार

(पृष्ठभाग पर लेख 'चन्द्रगुप्त')

सोना, .८", १२६.६ ग्रेन, बयाना-निधि फ० १२, १०

पुरोभाग—राजा धोती पहने, दाहिने भाग में खड़ा, किंतु बाईं ओर देख रहा, शरीर की मांसपेशियाँ सुन्दर, गरुड़ध्वज का दण्ड यंत्र से तैयार, वर्तुलाकार मुद्रा-लेख का केवल 'श्री' अक्षर दृग्गोचर, एक बजे।

पृष्ठभाग—देवी का दाहिना हाथ खाली, एक विचित्र नुकीली वस्तु ऊपर की ओर, दाहिनी ओर लेख अस्पष्ट; किंतु 'चन्द्रगुप्त' मूल मुद्रा पर पढ़ा जा सकता है। (फ० ५, ७)।

नवाँ उपप्रकार

(दाहिने हाथ के नीचे 'चन्द्र' अंकित)

सोना, .८", तौल अज्ञात ; न्यू० क्रा० १९३७.३५,१

पुरोभाग—राजा बाईं ओर खड़ा, दाहिने हाथ में धनुष, बायें में बाण, शरीर अनावृत, और मांसपेशियाँ सुदृढ़, दाहिने हाथ के नीचे चन्द्र लिखा, दाहिनी ओर गरुड़ध्वज, बाईं ओर का लेख अधूरा तथा अस्पष्ट, दाहिने 'न्द्रगु' (नव बजे) तथा 'प्त' (११ बजे) धनुष से 'न्द्र' कट गया है।

पृष्ठभाग—देवी का बायाँ पैर ऊपर की ओर उठा हुआ, बायाँ हाथ उसी पर अवलम्बित। लेख 'श्रीविक्रमः' (फ० ५, ८, ११)[१]।

सोना, .७५", १२०.७ ग्रेन, बयाना-निधि फ० १२, २।

पुरोभाग—पूर्ववत, गरुड़ध्वज अस्पष्ट, बाईं ओर लेख—'देव', दाहिने नव बजे 'चन्द्रगु' तथा ११ बजे 'प्त' (फ० ५, १६)।

पृष्ठभाग—बायाँ हाथ नीचे और घुटने पर स्थित लेख —'श्रीविक्रमः'।

फलक पर अप्रकाशित

१. फ० ५, ८ व ११ एक ही फोटो है।

दसवाँ उपप्रकार [१]

(चन्द्र बाँयें हाथ के नीचे ; राजा बाण रहित)

सोना, ·७″, ११८·४ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कै० ७, १६

पुरोभाग--पूर्ववत्, दाहिने हाथ के धनुष पर झुका हुआ राजा दाहनी ओर देख रहा है। बायाँ हाथ कमर पर अवलम्बित, बाण का अभाव, दाहिने भाग में गरुड़ध्वज, लेख प्रायः सिक्के की सीमा से बाहर, केवल 'गु' ६ बजे दृश्यमान।

पृष्ठभाग--देवी का बायाँ हाथ जाँघ पर स्थित (फ० ५,६)।

ग्यारहवाँ उपप्रकार

(चन्द्र धनुष तथा प्रत्यंचा के मध्य)

सोना, .८५″, १२१.६ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कै० ६,१०

पुरोभाग--पहले ढंग के सदृश किंतु 'चन्द्र' धनुष तथा प्रत्यंचा के मध्य में लिखा, राजा पायजामा तथा छोटी बाँहवाला कोट पहने, सामने तरकस है जिससे दाहिने हाथ से बाण निकाल रहा है।

पृष्ठभाग—देवी के दोनों हाथ ऊपर उठे हैं। जाँघ को स्पर्श नहीं करते, लेख 'श्रीविक्रमः' (फ० ५, १०)।

बारहवाँ उपप्रकार [२]

(चन्द्र प्रत्यंचा के बाहर, धनुष को बीच से राजा पकड़े है)

सोना, .७५″, १२१,७ ग्रेन बयाना निधि फ० १३,४

पुरोभाग--राजा बाईं ओर झुका है ; किन्तु दाहिने देख रहा है, बीच से धनुष पकड़े है। प्रत्यंचा बाहर की ओर 'चन्द्र' खुदा है, वर्तुलाकार मुद्रालेख बाईं ओर, 'देवश्रीमहाराजाधिराजश्रीचन्द्र' कुछ अधूरा ; 'न्द्र' राजा के बायें पैर के पास (फ० ५,१४)।

पृष्ठभाग--देवी के हाथ ज़ाँघ पर स्थित हैं। लेख 'श्रीविक्रमः', । (फलक पर अप्रकाशित)

---

१. **ज० ए० सो० बं०** १८८४ **फ० ३, ३ वही** १८८९—५, १।

२. **एक मुद्रा-विक्रेता के पास फरवरी १९५३ ई० में मैंने इस उपप्रकार का एक सिक्का देखा था जहाँ राजा बाईं ओर देखता खड़ा था, न कि दाहिनी ओर, धनुष मध्य में पकड़ा था, प्रत्यंचा बाहर थी। उस मुद्रा का पुरोभाग ४.१२ के समान था; किंतु देवी पद्मासना थी न कि सिंहासना। अत्यधिक दाम के कारण सिक्का खरीदा नहीं जा सका।**

तेरहवाँ उपप्रकार

(बायें हाथ के नीचे 'चन्द्र' लेख का अभाव)

सोना, ८'', ११७७, ग्रेन, बयाना निधि, फ० १२,६

पुरोभाग--राजा बाईं ओर देखता है, बायाँ पैर कुछ ऊपर उठा है, बीच से धनुष पकड़े, जो राजा की कमर से चिपका, प्रत्यंचा अदृश्य, लेख अधूरा तथा अस्पष्ट, 'देवश्रम' तथा 'न्द्र' दिखलाई पड़ता है (फ० ५,१५)।

पृष्ठभाग--देवी के दोनों हाथ फैले, कुछ ऊपर की ओर उठे, कमल में छोटा नाल, लेख अस्पष्ट।

(फलक पर अप्रकाशित)

चौदहवाँ उपप्रकार

(बाईं ओर 'गुप्त' बाण से बाहर खुदा)

सोना, आकार और तौल अज्ञात, ज० रा० ए० सो० १८६३ पृ० १०५

पुरोभाग—राजा के बायें हाथ में धनुष और दाहिने में बाण, 'गुप्त' बाण के बाहर नीचे।

(इस सिक्के का चित्र अप्रकाशित)

पँदरहवाँ उपप्रकार

(तौल में १४० ग्रेन से अधिक)

सोना, ८'', १४१.६, ग्रेन, इं० म्यू० कॅ० भाग १, १५,१२

पुरोभाग--राजा धोती तथा नुकीला कोट पहने हुए, बायें हाथ के नीचे 'चन्द्र', वर्तुलाकार मुद्रालेख सीमा से बाहर, गरुड़ तथा राजा के सिर के नीचे विशेष चिह्न (फ० ५,१७)।

पृष्ठभाग--विशेष प्रकार का चिह्न, स्मिथ के कथनानुसार मुद्रालेख 'श्रीविक्रमः'।

(फलक पर अप्रकाशित)

सोना, ८'', १४५.८ ग्रेन इं० म्यू० कै० भाग १,१८,४

पुरोभाग—राजा धोती पहने, कमरबंध का एक किनारा लटका, स्मिथ के कथनानुसार बायें हाथ के नीचे 'चन्द्र' और अस्पष्ट लेख 'देव श्री', किंतु प्रकाशित चित्र में ये मुद्रालेख पढ़े नहीं जाते।

पृष्ठभाग—लेख अधूरा तथा अस्पष्ट, स्मिथ ने 'श्रीविक्रम' पढ़ा, किन्तु चित्र में पढ़ा नहीं जा सकता। (फ० ५, १२)

सोलहवाँ उपप्रकार[१]

(अर्द्ध दीनार संज्ञावाला)

सोना, .८'',५७.६ ग्रेन, बम्बई संग्रहालय

पुरोभाग—पहले ढंग के सदृश, भद्दी बनावट, गरुड़ध्वज को पहचानना मुश्किल, मुद्रालेख, 'चन्द्र' बाँह के नीचे पर अस्पष्ट, वर्तुलाकार मुद्रालेख का अभाव।

---

१. ज० न्यू० सो० इं, १, फ० ५ ए०।

पृष्ठभाग—पहले ढंग की तरह देवी, दोनों हाथ ऊपर उठे, चिह्न का अभाव, पूरे लेख में से केवल 'क' वर्तमान (फ० ५,१३)।

सिंह-निहन्ता प्रकार

इस प्रकार के सिक्के दुष्प्राप्य नहीं हैं; किन्तु कलात्मक होने के कारण उनकी माँग अधिक है। बयाना निधि के चन्द्रगुप्त के ६७३ सिक्कों में से ४३ इस प्रकार के हैं--ब्रिटिश, कलकत्ता तथा लखनऊ संग्रहालयों में क्रम से १३, १० तथा १२ सिक्के सुरक्षित हैं। उनका आकार .७५" से .८५" तक रहता है। अधिक संख्या में सिक्के १२१ ग्रेन के बराबर तौल में पाये जाते हैं; पर कुछ १२४ या १२७ ग्रेन तक मिलते हैं। बयाना निधि का एक सिक्का १३०.५ ग्रेन तौल में पाया गया है। इस प्रकार के सिक्के जौनपुर, कोटवा, मिर्जापुर, कन्नौज तथा बयाना में पाये गये हैं।

सिंह-निन्हता प्रकार[1] में पुरोभाग पर राजा सिंह को मारते हुए दिखलाया गया है। राजा धनुष, बाण अथवा तलवार का उपयोग करता दिखलाया गया है। पहले वर्ग के सिक्कों में राजा और सिंह पृथक्-पृथक् किंतु डटकर सामना करते हुए दिखलाये गये हैं। दूसरे वर्ग में राजा पैर से सिंह के पेट को कुचलता दिखलाया गया है। पृष्ठभाग पर देवी सिंह पर बैठी दिखाई गई हैं। वाहन के कारण उसे दुर्गा का नाम दिया जा सकता है; किन्तु हाथ में कमल लिये भी दिखलाई पड़ती हैं। अतएव उसे लक्ष्मी की संज्ञा देने का विचार त्यागा नहीं जा सकता। दाहिना हाथ कभी खाली है, कभी उसमें पाश है। देवी का वाहन कभी दाहिने कभी बायें भाग में घूमता तथा कभी घुटने पर बैठा अंकित किया गया है।

सिंह-निहन्ता प्रकार का वर्गीकरण करना आसान कार्य नहीं है। स्मिथ ने सिक्कों को तीन वर्गों में विभाजित किया था। पहले वर्ग में सिंह और राजा डटकर सामना कर रहे हैं। किन्तु सर्वथा पृथक् हैं। दूसरे वर्ग में राजा सिंह को कुचल रहा है। तीसरे वर्ग में सिंह भागता हुआ दर्शाया गया है। यह वर्गीकरण संतोषजनक होने के कारण इस ग्रंथ में स्थान पा सका है। ब्रिटिश-संग्रहालय के सूची ग्रंथ में ये सिक्के लेख के अनुसार विभाजित किये गये हैं। अधिकतर सिक्कों में एक ही लेख–'नरेन्द्रचन्द्रः प्रथितरणो रणेजयत्यजेयो भुवि सिंहविक्रमः'—लिखा मिलता है, अतः एक या बहुत से सिक्के एकसा वर्ग में रखे जा सकते हैं और कतिपय ही अन्य वर्गों में। इसमें संदेह नहीं है कि राजा समझ-बूझ कर सिंह को कुचलता हुआ दिखलाया गया जिससे उसके पराक्रम तथा साहस का परिचय मिल जाय। इस कारण इस ढंग के सिक्कों को अलग वर्ग में रखना चाहिए।

---

१ इसका नाम 'सिंह का शिकारी' अच्छा होता। परन्तु सिंह 'निहन्ता' पुराना नाम होने के कारण यहाँ स्वीकृत किया गया है। इसमें मुख्य विचार है राजा के हाथों सिंह पर आक्रमण करने तथा मारने का। अतः सिंह-निहन्ता भी सर्वथा अनुचित नाम नहीं है।

भागते हुए सिंह के दृश्य को ध्यान में रखकर पृथक् वर्ग में रखना सर्वथा न्याय-संगत है। बचे हुए सिक्के, जहाँ सिंह और राजा डटकर लड़ते हैं, स्वाभाविक ही अलग वर्ग में जायेंगे।

प्रथम वर्ग

(सिंह से डटकर युद्ध करता हुआ)

इस वर्ग के पुरोभाग पर राजा तथा सिंह की अवस्था और पृष्ठभाग में देवी की विभिन्न दशाओं तथा उसके वाहन की स्थिति के अनुसार सिक्के के अनेक उपप्रकार निश्चित किये जा सकते हैं। सुविधा के लिए राजा के दाहिने अथवा बायें होने की बात ध्यान में रखकर पहले विभाजन किया गया है और तत्पश्चात् उसके उपप्रकार निश्चित किये गये हैं। पहले उपप्रकार (फ० ६, १–३; ७,१०) में राजा बायें देख रहा है। पृष्ठ की ओर देवी घुटने पर स्थित सिंह की पीठ पर बैठी है, जिसके दाहिने हाथ में पाश तथा बायें में कमल स्थित है। दूसरे उपप्रकार (फ० ६, ४) का केवल एक ही सिक्का मिला है। इसका पुरोभाग पहले ढंग के समान है, किन्तु राजा का नाम बाईं ओर सिक्के पर लम्बवत् खुदा है। पृष्ठभाग पर कमल लम्बे नालयुक्त है जो मध्य में मुड़ गया है। देवी इसे पकड़े हुए है जिसका हाथ कमर पर अवलम्बित है और कुहनी ऊपर की ओर मुड़ी है। तीसरे तथा चौथे उपप्रकारों में राजा दाहिने देख रहा है और बायें हाथ से प्रत्यंचा खींच रहा है, जो सब योद्धा नहीं कर सकते। शायद राजा की सव्यसाची दिखलाने की कलाकार की इच्छा थी; शायद वह केवल विभिन्नता दर्शाने के लिए यह करना चाहता था। तीसरे उपप्रकार में देवी (फ० ६,५) दाहिने हाथ में पाश और बायें में कमल लिये हुए है। चौथे उपप्रकार (फ० ६, ६) में देवी का दाहिना हाथ खाली है। पाँचवें में राजा दाहिने देख रहा है परन्तु प्रत्यंचा खींचे हुए नहीं है। इस ढंग का एक सिक्का बयाना-निधि में पाया गया है, जिसमें राजा प्रत्यंचा को स्पर्श तक नहीं करता। धनुष बायें हाथ से पकड़े है तथा बाण भी उसी ओर दिखलाई पड़ता है। पिछले उपप्रकार की तरह देवी का दाहिना हाथ खाली है। भारत के अत्यंत कलात्मक उदाहरणों में दूसरे, तीसरे तथा चौथे उपप्रकार के सिक्के नमूने के रूप में उपस्थित किये जा सकते हैं। उनमें राजा का स्नायु-युक्त शरीर सुन्दर रीति से दर्शाया गया है।

द्वितीय वर्ग

(राजा सिंह को कुचलते हुए)

इस वर्ग के प्रथम चार उपप्रकारों में राजा बाईं ओर देख रहा है। अगले छ उपप्रकारों में वह दाहिने देखता है। इन सिक्कों के पृष्ठभाग पर अनेक प्रकार की विभिन्नता प्रकट होती है। इसलिए देवी के विभिन्न विशेषताओं तथा वाहन के स्थानों के कारण ही उपप्रकार निश्चित किये गये हैं। पहले उपप्रकार (फ० ६, ७) में देवी घुटने टेके सिंह पर

बैठी है और बाईं ओर देख रही है। दाहिने हाथ में पाश तथा बायें में कमल वर्त्तमान है। दूसरे (फ० ६, ८) में देवी दोनों तरफ पैर फैलाये सिंह पर बैठी है। दाहिने हाथ में कमल है तथा बायाँ खाली लटक रहा है। तीसरे और चौथे में सिंह दाहिने चल रहा है। इसके विभिन्न लेख हैं। तीसरे (फ० ६,६) का लेख अधूरा है जो 'महाराजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्त' पढ़ा जा सकता है। चौथे (फ० ६, १०) में इसी लेख के आरम्भ में 'देव' शब्द जुड़ा है।

पाँचवें उपप्रकार से दसवें तक राजा दाहिने प्रकट होता है। पाँचवें (फ० ६,११) में सिंह बाईं ओर घुटने पर बैठा और देवी दोनों पैरों को लटकाये बैठी है। उसके दाहिने हाथ में पाश तथा बायें में कार्नुकोपिया है। छठे उपप्रकार (फ० ६, १२) में देवी का पैर सिंह की पीठ पर मुड़ा है। दाहिना हाथ खुला तथा खाली है। बायें हाथ में कमल वर्तमान है। सातवें में (फ० ६, १३) देवी पैरों को फैलाये सिंह पर बैठी है। दाहिने हाथ में कमल है तथा बायाँ हाथ खाली बाईं ओर लटका है। आठवें तथा नवें उपप्रकारों में सिंह (वाहन) क्रमशः बायें और दायें चल रहा है। उन दोनों प्रकारों में और भी देखने योग्य विशेषताएँ हैं। आठवें उपप्रकार में (फ० ६, १४-१५;७, १) देवी कभी बाईं ओर देखती हुई चित्रित की गई है जो उनके वाहन की भी दिशा है। अन्य सिक्कों पर देवी सम्मुख दिखलाई पड़ती है; पर वास्तव में बाईं ओर दृष्टि दौड़ा रही है (फ० ६, १४)। उसके पैर मुड़े हैं; किन्तु एक सिक्के में वह वाहन के सिर पर पैर फेंक रही है (फ० ७, १)। सभी सिक्कों में देवी के दाहिने हाथ में पाश तथा बायें में कमल वर्तमान हैं। नवें उपप्रकार (फ० ७, २-३) के सिक्के बड़े आकार के हैं और मुद्राकला के सब से सुन्दर नमूने हैं। सिंह से भीषण युद्ध के समय राजा का दृढ़ आत्मविश्वास, प्रचंड धैर्य और कौशलयुक्त आक्रमण बड़ी सफलतापूर्वक कलाकार-द्वारा प्रदर्शित किया गया है। पृष्ठभाग में सिंह दाहिने चल रहा है; किन्तु देवी सम्मुख पैरों को मोड़े बैठी है। वह कभी दाहिने (फ० ७, ३) और कभी सामने देखरही है (फ० ७, २)।

दसवें उपप्रकार (फ० ७, ४) का सिक्का पूर्व उपप्रकार की मुद्राओं से विभिन्न है। इसके पुरोभाग में एक दूसरा लेख खुदा है, यह पूरा पढ़ा नहीं गया है। किन्तु प्रतीत होता कि वह शायद 'नरेन्द्रसिंहचन्द्रगुप्तः पृथिवीम् जित्वा दिवं जयति' होगा। पृष्ठभाग में देवी का दाहिना हाथ खाली है तथा बायें में कमल लिये हैं। उसका वाहन (सिंह) दाहिने घुटने पर बैठा है।

तृतीय वर्ग

(सिंह लौटता हुआ)

इस वर्ग में बहुत थोड़े सिक्के मिले हैं, जिनमें सिंह भागता या लौटता हुआ दिखलाया गया है। प्रथम दोनों उपप्रकारों (फ० ७, ५-६) में राजा बायें खड़ा है। वह दाहिने हाथ से धनुष पकड़े है और बायें में बाण लिये हैं। पहले उपप्रकार के पृष्ठभाग पर सिंह घुटने पर बैठा है, दूसरे में दाहिने चलता है। तीसरे तथा चौथे उपप्रकारों में राजा दाहिने खड़ा है।

तीसरे उपप्रकार (फ० ७, ७) में राजा सिंह को मारने के लिए प्रत्यंचा चढ़ा रहा है। चौथे (फ० ७, ६) में वह तलवार से मार रहा है। पाँचवाँ उपप्रकार (फ० ७, ८) तीसरे की तरह है। किंतु इसमें राजा लौटते सिंह को पैर से कुचल रहा है।

इस विवरण के बाद तीनों वर्गों का वर्णन उपस्थित किया जायगा।

प्रथम वर्ग

(सिंह से डटे हुए लड़ता है)

पुरोभाग --राजा दायें या बायें खड़ा है, सिंह पर अत्यंत समीप से बाण चला रहा है, धनुष बायें या दाहिने हाथ में, तथा दूसरे हाथ से प्रत्यंचा चढ़ा रहा है। राजा सिंह को मानो छू रहा है ; किंतु कुचल नहीं रहा है। राजा छोटी धोती या जाँघिया तथा पट्टबंध धारण किये है। किसी सिक्के में उसका सिर अनावृत है तथा किसी दूसरे में उसपर सुशोभित चिपकी टोपी है। किसी में उसका उर्ध्वभाग अनावृत है तो किसी में वह कोट पहने है। मुद्रा-लेख 'नरेन्द्रचन्द्रः प्रथितरणो रणे जयत्यजेयो भुवि सिंहविक्रमः।' अर्थ है -- (चंद्रगुप्त)नृपचंद्र राजाओं में चन्द्रमा, जो युद्ध में कौशल के लिए प्रसिद्ध है, जो अजेय है, सिंह की तरह शक्तिशाली है तथा युद्ध क्षेत्र में विजयी है।

छंद—वंशस्थविल।

पृष्ठभाग—देवी दाहिनी ओर देखते हुए सिंह पर बैठी है। फैलाये हुए दाहिने हाथ में पाश तथा बायें हाथ में कमल है। बाईं ओर चिह्न, मुद्रालेख 'सिंहविक्रमः' [1]।

टिप्पणी —बहुत दिनों तक किसी लेख में 'रणे रणे' पढ़ा नहीं जा सका। न्यूमिस्मॅटिक क्रोनिकल १६३५, २३४ पृष्ठ पर श्री ॲलन ने एक सिक्का का विवरण दिया था, जिसके अक्षरों से श्री ॲलन ने यह शब्द पढ़ा था। बयाना-निधि के दो सिक्कों पर 'रणो रणे' स्पष्ट रूप से पढ़ा जा सका है।

द्वितीय वर्ग

(राजा सिंह को कुचलता हुआ)

पुरोभाग--राजा दाहिने या बायें खड़ा है, धोती, पट्टबंध तथा किसीमें कोट भी पहने है, पगड़ी तथा आभूषण धारण किये, पैर से सिंह के पेट के पास कुचल रहा है, धनुष-बाण से सिंह पर आक्रमण कर रहा है, धनुष दायें या बायें हाथ में, प्रायः

---

१. डार्नले ने पृष्ठभाग पर खुदे लेख को एक मुद्रा पर 'सिंघघ्नाभिज्ञ' पढ़ा था। (ज० ए० सो० बं० ५९ भा० १ फ० ६, ५); पर उस मुद्रा के प्रकाशित चित्र पर वह स्पष्ट नहीं है। किसी भी सिक्के पर यह लेख अंकित है, इसमें भी संदेह है।

दाहिने कभी-कभी बायें हाथ से प्रत्यंचा खींच रहा है, वर्तुलाकार मुद्रा-लेख, एक बजे से आरम्भ, 'नरेन्द्रचन्द्रः प्रथितरणो रणे जयत्यजेयो भुवि सिंहविक्रमः'। कुछ सिक्कों में भिन्न मुद्रा-लेख।

पृष्ठभाग—सिंह घुटने पर बैठा अथवा दायें या बायें चल रहा है, आभामंडलयुक्त देवी सिंह पर बैठी हैं, पाश, कमल या कार्नुकोपिया हाथ में लिये है, बायाँ हाथ कभी खाली या नीचे लटका है, कभी दाहिना फैला या खाली, बायें चिह्न, किंतु कुछ सिक्कों में अनुत्कीर्ण ; मुद्रा-लेख 'सिंहविक्रमः'।

तृतीय वर्ग

(सिंह लौटता हुआ)

पुरोभाग—राजा दाहिने या बायें खड़ा है, जाँघिया तथा आभूषण पहने, दाहिने हाथ में धनुष तथा बायें में बाण लिये ; कभी सिंह पर बाण छोड़ रहा, कभी तलवार से आक्रमण करता है, तो कभी उसे केवल देख रहा है। मुद्रालेख—'महाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तः' कभी 'देवश्रीमहाराजाधिराजचंद्रगुप्तः' तथा किसी पर 'नरेन्द्र-चन्द्रः प्रथितरणो रणे' इत्यादि।

पृष्ठभाग—देवी सामने देखते हुए सिंह पर बैठी है, घुटने पर बैठा या चलता हुआ, देवी के दाहिने हाथ में पाश बायें में कमल है, मुद्रालेख 'श्री सिंहविक्रमः' या 'सिंहविक्रमः'।

फलकस्थित सिक्कों का विवरण

पहला वर्ग

सिंह से डटकर लड़ता हुआ

पहला उपप्रकार

(राजा बाईं ओर)

(१) सोना, .८", ११८.७ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० १६, १६

पुरोभाग—राजा का दाहिना पैर सिंह के पास किंतु पृथक, बायाँ उठाते हुए, ताकि समय आने पर पीछे कूद जाय। राजा कोट तथा पायजामा पहने, एक बजे से वर्तुलाकार मुद्रालेख आरम्भ'—'नरेन्द्रचन्द्र प्रथतरणो रणे',—अंतिम चार अक्षर स्पष्ट, जिससे पूरा लेख तैयार हो सका।

पृष्ठभाग—सिंह बाईं ओर बैठा, देवी का एक पैर कुछ नीचे लटका, दाहिने हाथ में पाश तथा बायें में कमल लिये हुए, जो जाँघ पर स्थित है। मुद्रालेख 'नृसिंहविक्रमः' (फ० ६, १)।

(२) सोना, .८", ११६.२ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० १६, १३

पुरोभाग—पूर्ववत् कोट के बटन अस्पष्ट, वर्तुलाकार मुद्रालेख 'न्द्रचन्द्रप्रथतरणो रणे'

पृष्ठभाग—पूर्ववत् (फ० ६, २)।

(३) सोना, .८५", १२१.२ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कै० फ० ६, ३

पुरोभाग—पूरा सिंह सिक्के पर अंकित, राजा का बायाँ हाथ उसके मुँह में, राजा आधी बाँह वाला कोट पहने है तथा कूदने की मुद्रा में नहीं है। मुद्रालेख दस बजे से 'सिंहविक्रमः' अधूरा।

पृष्ठभाग—देवी पूर्ववत्, बायाँ हाथ फैला हुआ, पाश लिये हैं (फ० ६, ३)।

(४) सोना, .६", तौल अज्ञात, बोदलियन संग्रह, न्यू० क्रॉ० १६६१

पुरोभाग—राजा का दाहिना पैर सिंह को स्पर्श कर रहा है किन्तु कुचलता नहीं है। छोटी बाँहवाला कोट तथा पगड़ी पहने है। मुद्रालेख एक बजे से 'नर', छह बजे से 'जयत्यजेयो भुवि सिंहविक्रमः'। लेख का उत्तर भाग सुस्पष्ट।

पृष्ठभाग—देवी सिंह पर बैठी जो दाहिने हैं। दाहिने हाथ में पाश तथा बायें में कमल है। चिह्न अधूरा, मुद्रालेख 'सिंहविक्रमः' (फ० ७,१०)।

दूसरा उपप्रकार

(लंबवत् चन्द्र नाम सहित)

(५) सोना, .८", ११६ ग्रेन, ज० ए० सो० बं० १६२५ न्यू० स० फ० ३,७

पुरोभाग—राजा पूर्ववत् वस्त्र पहने, पूरा सिंह सिक्के पर, दाहिनी ओर 'चन्द्र' लम्बवत् खुदा, वर्तुलाकार लेख अदृश्य, सिक्के से बाहर।

पृष्ठभाग—देवी पूर्ववत्, बायें हाथ में कमलनाल, मध्य में मुड़ा, लेख 'ङ्हविक्रम' (फ० ६,४)।

तीसरा उपप्रकार

(राजा दाहिने, देवी पाश तथा कमल सहित)

(६) सोना, .८", ११६.२ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० १६, १४

पुरोभाग—राजा दाहिने देख रहा है, अनावृत, ललाट पर कलंगी बाँधे, मुद्रालेख एक बजे से 'त-य भुवि सिंहविक्रमः' अधूरा।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, कमलनाल मध्य में मुड़ा नहीं, मोती का आभूषण सिर पर चारो ओर (फ० ६, ५)।

चौथा उपप्रकार
(पूर्ववत्, देवी का दाहिना हाथ खाली)

(७) सोना, .८", ११६.८ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० १७, ६

पुरोभाग—पूर्ववत्, राजा का अनावृत शरीर, स्नायुपेशियाँ सुन्दर हैं, वर्तुलाकार मुद्रालेख एक बजे से 'रेन्द्र-द्र' नव बजे,–'त्य', अधूरा लेख।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, देवी का दाहिना हाथ खुला तथा खाली, चिह्न छूता हुआ, लेख 'सिंहविक्र,' अधूरा (फ० ६,६)।

पाँचवाँ उपप्रकार
(पूर्ववत्, राजा प्रत्यंचा चढ़ा नहीं रहा है)

(८) सोना, .८", १२३ ग्रेन, बयाना निधि, फ० १७, १०

पुरोभाग—राजा पूर्ववत्, बायें हाथ में धनुष, दाहिने में बाण पकड़े, कमर पर अवलम्बित, मुद्रालेख एक बजे से–'नरेन्द्रचन्द्र,' 'त्य भु व' अक्षरों के अस्पष्ट अवशेष।

पृष्ठभाग—सिंह की पीठ पर देवी का दाहिना पैर लटका हुआ, दाहिना हाथ खुला और खाली, बायें हाथ में कमल लेख–'ङ् विक्रम' (फ० १६,१)।

दूसरा वर्ग
(राजा सिंह को कुचलता हुआ[१])

पहला उपप्रकार
(राजा बाईं ओर, देवी पैर ऊपर मोड़े बैठी है)

(९) सोना, .७५", ११७ ग्रेन, बयाना निधि, फ० १७, १३

पुरोभाग—राजा बाईं ओर, कोट तथा पगड़ी, मोती की लड़ी से युक्त, सिंह का शरीर अधूरा दिखलाई पड़ता है, राजा दाहिने पैर से सिंह को कुचल रहा है, दो बजे से लेख 'नरेन्द्रचन्द्र प्र' दस बजे से–'सङ्हविक्रम' अधूरा तथा अस्पष्ट।

पृष्ठभाग—घुटने पर सिंह दाहिनी ओर बैठा है, देवी सामने बैठी हैं, दो पैर ऊपर मुड़े हैं, दाहिने हाथ में पाश तथा बायें में कार्नुकोपिया, विचित्राकार चिह्न, उसके नीचे की लंबी लकीर केवल बिंदुओं-सी बनी है। मुद्रालेख 'सिंहविक्रम' (फ० ६,७)।

दूसरा उपप्रकार
(पूर्ववत्, देवी सिंह के दोनों बगल पैर लटकाये बैठी है)

(१०) सोना, .७५", १२०.७ ग्रेन, बनाया-निधि, फ० १७, ११

पुरोभाग—राजा की स्थिति पूर्ववत्, दाहिना पैर सिंह की देह को स्पर्श कर रहा है, बायाँ पैर पूँछ को दबा रहा है, तीन, नव तथा बारह बजे अक्षरों के अस्पष्ट अवशेष।

---

१. ब्रि० म्यू० कै० फ० ८.१२ ; न्यू० क्रॉ० १९१०, फ० २४,१२।

पृष्ठभाग—देवी सिंह की पीठ पर घोड़े के समान बायें बैठी है। सिंह सिर उठाये हुए है। दाहिने हाथ में कमल तथा बायाँ हाथ खाली, नीचे बगल में लटका है जो वाहन (सिंह) के कुल्हे पर अवम्बित है। चिह्न का अभाव, मुद्रालेख पूर्ण–'सिंहविक्रम' (फ० ६,८)।

तीसरा उपप्रकार

(सिंह दाहिने चल रहा है, भिन्न लेख)

(१२) सोना, ८", .१२१ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० १७, १२

पुरोभाग – राजा की लम्बी आकृति, टोपी पहने, उसका दाहिना पैर सिंह के पेट पर रखा हुआ, बायाँ उसकी पूँछ पर है, सिंह सिक्के की सीमा में पूर्ण प्रदर्शित, लेख एक बजे से, 'महा', चार बजे 'धर', दस तथा ग्यारह बजे 'चन्द्रगुप्त' ; अधूरा तथा अस्पष्ट सम्भवतः पूरा मुद्रालेख–'महाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तः'।

पृष्ठभाग—सिंह दाहिने चल रहा है, देवी पैर ऊपर मोड़े सामने बैठी है, दाहिने हाथ में पाश तथा बायें, हाथ में कमल, 'मुद्रालेख सिंहविक्रमः' (फ० ६, ९)।

चौथा उपप्रकार

(पूर्ववत्, किन्तु वर्तुलाकार मुद्रालेख अधिक विस्तृत)

(१३) सोना, .८५", १२२.५ ग्रेन, बयाना निधि, फ० १७,१४

पुरोभाग—राजा का लम्बा शरीर, सिर पर कलँगी, दाहिना पैर सिंह के पेट को कुचलता बाईं पूँछ पर स्थित, लेख एक बजे से, 'देवश्रीमहाराज', नव बजे से बारह बजे–'श्रीचन्द्रगुप्त,' कुछ अस्पष्ट।

पृष्ठभाग—पूर्ववत् मुद्रालेख 'सिंहविक्रमः' (फ० ६,१०)।

पाँचवाँ उपप्रकार[1]

(राजा दाहिने, देवी पाश तथा कॉर्नुकोपिया युक्त)

(१४) सोना, .७६", ११८.६ ग्रेन, बयाना निधि, फ० १८,१

पुरोभाग—राजा दाहिनी ओर, कोट, जाँघिया पहने, लेख दो बजे से, राजा का दाहिना पैर सिंह के पिछले तथा अगले पैरों के बीच, सिंह प्राणोत्क्रमण होने से गिर रहा है। लेख 'नरेन्द्रचन्द्र प्रथत'— अक्षर अस्पष्ट।

पृष्ठभाग—देवी सामने सिंह पर बैठी है, दोनों पैर लटक रहे हैं, दाहिने हाथ में पाश तथा बायें में कॉर्नुकोपिया, लेख–'ह्हविक्रम' (फ० ६,११)।

---

१ बि० म्यू कै० फ० ८, ११ १२; ज० ए० सो० बं० १८८४ भा० १ फ० ३,६.१८८९ फ० ३,५।

छठा उपप्रकार[1]

(पूर्ववत्, बायें हाथ में कमल, दाहिना खाली)

(१५　सोना, ·७५", १२२·१ ग्रेन, बयाना निधि, फ० १८,१४

पुरोभाग—पूर्ववत्, लेख एक बजे से 'नरेन्द्रचन्द्रप्रथत', अस्पष्ट, धनुष से 'न्द्र' अक्षर कट जाता है, सिंह प्राणोत्क्रमण होने से गिर रहा है।

पृष्ठभाग –पूर्ववत्, देवी पैरों को सिंह के पीठ पर उठाये है, दाहिना हाथ खाली, लेख-'सिंह विक्रमः' (फ० ६,१२)।

सातवाँ उपप्रकार

(पूर्ववत्, देवी पैर फैलाये बैठी हैं)

(१६) सोना .८",११८.५ ग्रेन, बि० म्यू० कै० गु. डा. फ० ६,१.

पुरोभाग—सिंह के मुँह (जबड़े) में बाण घुसता दिखलाई पड़ता है, सिंह पंजों से धनुष को खींच लेने का प्रयत्न कर रहा है, मुद्रा लेख नव बजे 'नरेन्द्रचन्द्र'।

पृष्ठभाग—देवी सिंह पर पैर लटकाये बैठी है, दाहिने हाथ में कमल तथा बायाँ बगल में खाली लटका है, चिह्न वर्तमान, मुद्रालेख-'सिंहविक्रमः' (फ० ६,१३)।

आठवाँ उपप्रकार

(पूर्ववत्, किन्तु सिंह बायें चल रहा है)

(१७) सोना, .८", ११८.६ ग्रेन, बयाना निधि, फ० १८,८

पुरोभाग— राजा की शिखा सिरे पर गाँठ में बँधी है; बायें पैर से सिंह को कुचल रहा है; वह जानवर प्राणोत्क्रमण होने से गिर रहा है। एक बजे लेख नव और ग्यारह बजे के बीच कुछ अस्पष्ट अक्षरों के अवशेष।

पृष्ठभाग—सिंह बायें चल रहा है, देवी उसपर सामने बैठी हैं, किन्तु बायें देख रही है, दोनों पैर ऊपर मुड़े हैं, दाहिने हाथ में पाश तथा कटि-स्थित बायें हाथ में कमल, चिह्न लुप्त, मुद्रालेख-'सिंहविक्रमः' (फ० ६,१४)।

(१८) सोना, .८", ११९०·६ ग्रेन, बयाना निधि, फ० १८,७

पुरोभाग—राजा की स्थिति पूर्ववत्, लेख बारह बजे 'नरेन्द्रच,' ९-१० के मध्य कुछ अस्पष्ट अक्षरों के अवशेष।

---

१ बि० म्यू० कै० फ० ८,१४-१५; ज० रा० ए० सो० १८८९ फ० २,४; ज० ए० सो० बं० १८८४, फ० ३,५।

१ ब्रि० म्यू० कै० गु० डा० फ० ९०,१-२।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, देवी बाईं ओर बैठी है, दोनों पैर ऊपर मुड़े हैं, पाश दाहिने हाथ में, लम्बे नालयुक्त कमल बायें हाथ में जो कमर पर अवलम्बित, चिह्न अस्पष्ट, मुद्रालेख 'सिंहविक्रमः' (फ० ६,१६)।

१६. सोना, .८", ११६.६ ग्रेन, बयाना निधि, फ० १८,६

पुरोभाग—पूर्ववत् किन्तु सिंह पृथ्वी पर गिर रहा है, बारह बजे से लेख, 'नरेन्द्रचन्द्र प्रथतर', दस बजे अस्पष्ट अक्षरों के कुछ अवशेष।

पृष्ठभाग—सिंह पर देवी बैठी है जो बाईं ओर चल रहा है, देवी का दाहिना पैर कुछ ऊपर उठा है तथा बायाँ पैर सिंह के सिर पर झूल रहा है, वह टोपी पहने है जिसके सिरे पर मोतियों की कलँगी बनी है, चिह्न अनुत्कीर्ण, लेख—'सिंहविक्रमः' (फ० ७,१)।

नवाँ उपप्रकार[1]

(सिंह दाहिनी ओर चल रहा है)

२०. सोना, .६५", १२०.४ ग्रेन, इ० म्यू० कै० भा० १, फ० १२, १७

पुरोभाग—पूर्ववत्, राजा का आवेश, दृढ़विश्वास व आक्रमण को कलाकारों ने कौशल तथा वास्तविकता से इस और अगले दो सिक्कों पर दर्शाया है; मुद्रा-लेख बारह बजे से टूटे अक्षरों में, 'नरेन्द्रचन्द्र प्र', आठ बजे से 'य भुव स'।

पृष्ठभाग—देवी सामने बैठी है, दोनों पैर सिंह के ऊपर मुड़े हैं, सिंह दाहिने चल रहा है। देवी के दाहिने हाथ में पाश है तथा कटिस्थित बायें में लम्बा नालयुक्त कमल है, लेख—'सिंहविक्रमः' (फ० ७, २)।

२१. सोना, .८५", तौल अज्ञात,[2] ब्रि० म्यू० कै० जी० डी० ८, १७

पुरोभाग—पूर्ववत्, लेख बारह बजे से—'नरेन्द्रचन्द्र प्रथित र-रने जयत्य ज' अंतिम चार अक्षर ६-७ बजे के बीच।

पृष्ठभाग—देवी पूर्ववत् बैठी है, दाहिने देख रही है, दाहिने हाथ में पाश तथा बायें में कमल वर्तमान है, लेख—'सिंहविक्रमः' (फ० ७, ३)।

दसवाँ उपप्रकार

(विभिन्न लेख)

२२. सोना, .८५", १२७.२ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कै० फ० ६, १०

पुरोभाग—राजा का ऊर्ध्वभाग अनावृत, दाहिने खड़ा, सिंह को कुचल तथा मार रहा है, वह प्राणोत्क्रमण से गिर रहा है, मुद्रालेख अपूर्ण, श्री ऍलन ने उसे अनुमान से

---

१. ब्रि० म्यू० कै० जी० डी० फ० ८,१६।

२. इस सुन्दर सिक्के का केवल ठप्पा ही उपलब्ध है।

पूरा किया--'नरेन्द्रसिंहः चन्द्रगुप्तः पृथिवीं जित्वा दिवं जयति।' 'राजाओं में सिंह चन्द्रगुप्त, पृथ्वी को जीतकर स्वर्ग की प्राप्ति करेगा'; इस लेख में से एक बजे से 'न्द्रसह चन्द्रगुप्त' पढ़ा जा सकता है। नव बजे अस्पष्ट रूप से 'त्व' व 'द'।

पृष्ठभाग—घुटने पर बैठे सिंह पर देवी बैठी हैं, सिर पीछे घुमाये हुए, उस देवी के उठे हुए बायें हाथ में कमल है, दाहिना हाथ फैला हुआ, पर खाली है। उसके ऊपर चिह्न, कलश [1] के सदृश, मुद्रा-लेख—'सिंहचन्द्रः' (फ० ७, ४)।

तीसरा वर्ग

(सिंह लौटता हुआ)

पहला उपप्रकार

(राजा बाईं ओर तथा घुटने पर बैठा सिंह)

२३. सोना, .९५", १२३ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कै० गु० डा०, फ० ६, ११

पुरोभाग—राजा बाईं ओर खड़ा है, लम्बा तथा भव्य शरीर, ऊर्ध्वभाग अनावृत, जंघिया पहने, भुजबंध तथा कटकबंध लगाये, दाहिने हाथ में धनुष और बायें हाथ में बाण, लौटते हुए सिंह को सामने देख रहा है। मुद्रालेख बारह बजे से, 'महाराधिराज श्री', अंतिम शब्द 'चन्द्रगुप्त' मुद्रा-सीमा से बाहर।

पृष्ठभाग—दाहिने देखती हुई देवी घुटने पर बैठे सिंह पर हैं, दाहिना पैर सिंह पर, बायाँ नीचे लटक रहा है, फैले हुए दाहिने हाथ में पाश तथा कटि-स्थित हाथ में कमल है। देवी तथा लेख के बीच एक लकीर; दाहिने 'श्रीसिंहविक्रमः' (फ० ७, ५)।

दूसरा उपप्रकार [2]

(पूर्ववत् किन्तु वाहन का सिंह दाहिने चल रहा है)

२४. सोना, .८", १२२ ग्रेन, लखनऊ-संग्रहालय में, ब्रि० म्यू० कै०, फ० ६, १२

पुरोभाग—पूर्ववत्, सभी बातें समान हैं, मुद्रालेख एक बजे 'देवश्रीमहारजधर' दस बजे 'चन्द्रगुप्तः', यह पूरा मुद्रालेख 'देवश्रीमहाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तः' के लिए प्रयुक्त हुआ है।

पृष्ठभाग—दाहिनी ओर सिंह चल रहा है। सामने देखती देवी सिंह पर बैठी है। दाहिने हाथ में पाश तथा कटिस्थित बायें में कमल है। बायें चिह्न, मुद्रालेख 'सिंहविक्रमः' (फ० ७, ६)।

---

१. यह कहना संभव नहीं कि देवी के दाहिने हाथ में कलश है। चिह्न कलश की तरह ज्ञात हो रहा है, किंतु दाहिने हाथ को स्पर्श करता है। हाथ की स्थिति से यह प्रकट होता है कि वह कलश नहीं है।

२. न्यू० क्रॉ० १९१० फ० १४, १३।

तीसरा उपप्रकार

(दाहिनी ओर राजा बाण से मार रहा है)

२५. सोना, .७५", ११६.६ ग्रेन, बयाना-निधि फ० १८, १०

पुरोभाग—राजा बायें, लौटते सिंह को धनुष बाण से मार रहा है, वह भी बदला लेने की इच्छा से सिर घुमाये हुए है, राजा का बायाँ पैर जमीन पर है,दाहिना उठा हुआ है, राजा विचित्र जूता पहने है, जिसके नीचे लोहा लगा है, वर्तुलाकार मुद्रा-लेख, दाहिने अदृश्य, बायें 'जयत्यजेय' के अस्पष्ट अवशेष।

पृष्ठभाग—दाहिने घुटने पर बैठे सिंह पर देवी बैठी हैं, दोनों पैर ऊपर मुड़े हैं, दाहिने हाथ में पाश तथा कमर पर अवलम्बित बायें में कमल, बायें चिह्न, लेख—'सिंहविक्रमः' (फ० ७, ७)।

चौथा उपप्रकार[१]

(राजा तलवार से आक्रमण कर रहा है)

२६. सोना, .८", १२१.२ ग्रेन, लखनऊ-संग्रहालय, ब्रि० म्यू० कै० फ० ६, १२

पुरोभाग—राजा दाहिनी ओर खड़ा है, सम्मुख सिंह को दाहिने हाथ में स्थित तलवार से मार रहा है। सिंह लौटते हुए भी राजा को काटने का प्रयत्न कर रहा है। उस दशा में राजा का बायाँ पैर सिंह की पीठ पर रखा है। मुद्रालेख बारह बजे 'नरेन्द्रचन्द्र प्रथतर'।

पृष्ठभाग—घुटने पर बैठे और सामने देखते सिंह की पीठ पर देवी दोनों पैर पर बगल में लटकाये बैठी हैं। दोनों हाथ फैलाये, दाहिने में पाश तथा बायें में कमल। बाईं ओर चिह्न, मुद्रालेख 'संहत्वक्रमः' (फ० ७, ८)।

पाँचवाँ उपप्रकार

(राजा लौटते सिंह को पैर से कुचल रहा है)

२७ सोना, .७५", १२५.५ ग्रेन, न्यू० क्रॉ० १८६१ फ० २, ८.

पुरोभाग—शरीरोर्ध्व भाग अनावृत,लौटते सिंह पर राजा बाण छोड़ रहा है। सिंह का सिर पीछे घुमा हुआ है। राजा का बायाँ पैर सिंह की पीठ पर; वर्तुलाकार मुद्रालेख ७ से १० बजे के बीच, अधूरा तथा अस्पष्ट।

पृष्ठभाग—देवी प्रभामण्डलयुक्त, दाहिनी ओर घुटने पर स्थित सिंह पर बैठी हैं। दाहिने हाथ में कमल, बायाँ खुला खाली, देवी का बायाँ पैर नीचे लटक रहा है। बाईं ओर चिह्न, लेख दाहिनी ओर—'सिंहविक्रमः' (फ० ७, ६)।

---

१. न्यू० क्रॉ० १९१० फ० १४, १४; ज० रा० ए० सो० १८८९ पृ० ८७; प्रिन्सेप प्लेज, फ० ३०, २।

(इ) अश्वारोही प्रकार[1]

यह नये प्रकार का सिक्का है, जिसे द्वितीय चन्द्रगुप्तने प्रथम प्रचार में लाया। सम्भवतः वह चतुर अश्वारोही था। इसलिए सिक्कों पर राजा के इस गुण को दिखाने के लिए नयी शैली का समावेश किया। यही उनके पुत्र प्रथम कुमारगुप्त के समय में अत्यंत लोकप्रिय हो गया। प्रकाशादित्य ने भी इस शैली का उपयोग उत्तर काल में किया था।

इस प्रकार के सिक्कों का आकार .७५" से .८" तक रहता है। वे अधिक संख्या में १२१ ग्रेन के तौल बराबर तैयार किये गये हैं, किन्तु कुछ तौल में १२४ व १२७ ग्रेन तक पाये जाते हैं। मिर्जापुर, जौनपुर, अयोध्या तथा बयाना में इस प्रकार के सिक्के मिले हैं। ब्रिटिश संग्रहालय में १२, कलकत्ता संग्रहालय में ५ तथा लखनऊ में ११ सुरक्षित हैं। बयाना निधि से इस प्रकार के ८२ सिक्के हुए हैं।

इस प्रकार में राजा सुसज्जित घोड़े पर सवार है; कभी दाहिने तथा कभी बायें। कभी वह तलवार या धनुष लिये दिखलाई पड़ता है। पृष्ठभाग पर सदा लक्ष्मी मोढ़े पर बैठी दिखलाई गई है। उसके दाहिने हाथ में पाश तथा बायें में कमल है।

इसमें राजा तथा लक्ष्मी कभी-कभी प्रभामंडलयुक्त दिखलाये गये हैं (फ० ७, १२, १४) तथा कभी उससे रहित है (फ० ७, १३; ८.१)। कुछ सिक्कों में सिर पर अर्द्धचन्द्र दिखलाई पड़ता है। किन्तु अधिकतर सिक्कों के पुरोभाग पर यह दिखलाई नहीं पड़ता (फ० ८, ४); एक दुष्प्राप्य सिक्के पर के दोनों तरफ अर्द्धचन्द्र दिखलाई पड़ता है[2]। पृष्ठभाग पर देवी की स्थिति समुद्रगुप्त के वीणा प्रकार के सिक्के से बहुत अंश तक मिलती-जुलती है। उसके बायें हाथ में लम्बेनाल का कमल है। कभी कलाकारों ने उसमें कली या पत्तियों को जोड़कर सुन्दर बना दिया है। साधारणतः बायें हाथ में पाश रहता है; किन्तु कभी-कभी वह मुद्राएँ बिखेर रही है (फ० ८, १)।

अश्वारोही प्रकार के सिक्कों को स्मिथ ने घोड़े की दिशा के अनुसार वर्गीकरण किया है। कभी अश्वारोही दाहिने तथा कभी बायें दिखलाई पड़ता है। श्री ॲलन ने भी उसे दो उपविभागों में बाँटा है। उसके प्रथम वर्ग के सिक्कों पर चिह्न नहीं हैं, किन्तु दूसरे वर्ग में चिह्न वर्तमान है। चिह्नों की इतनी महत्ता नहीं है; यह अत्यन्त साधारण वस्तु है। अतएव यह अच्छा होगा कि पुरोभाग पर विशिष्ट लक्षण को ध्यान में रख कर सिक्कों का वर्गीकरण किया जाय। प्रधानतः अश्वारोही सैनिक है और राजा ने जो हथियार धारण किये हैं, उन्हें भी वर्गीकरण में भुला न देना चाहिए। अतएव स्मिथ का वर्गीकरण संतोषप्रद है। अतः प्रथम वर्ग में

---

१. स्मिथ ने एक बार अनुमान किया था कि राजा भाला धारण किये हुए है; किन्तु बाद में इस मत को छोड़ दिया। कपड़े का किनारा भ्रमवश भाला मान लिया जाता है। जे० आर० ए० एस १८८९ पृ० ८५।

२. ज० न्यू० सो० इ० भा ४ फ० ३,२।

हम बाईं ओर देखते अश्वारोही सिक्कों को रखेंगे और दूसरे में दाहिनी ओर देखते हुए को। हाथमें लिये हुए हथियार का खयाल कर उपप्रकार निश्चित किये गये हैं।

पहला वर्ग

(अश्वारोही बाईं ओर)

इस वर्ग के पहले उपप्रकार में राजा बाईं ओर सवार है, किन्तु उसके हाथमें कोई हथियार नहीं है (फ० ७, ११-१२); दूसरे उपप्रकार (फ० ७, १३-१४) में राजा दाहिने हाथ में धनुष लिये हैं जो कभी ऊपरी भाग में तो कभी नीचे दिखलाई पड़ता है। तीसरे उपप्रकार (फ० ८, १५) में बाईं तरफ तलवार लटकती है।

दूसरे वर्ग में भी ऐसे ही उपप्रकार हैं। यहाँ राजा दाहिनी ओर सवारी करता है, इसलिए बाईं तरफ लटकती तलवार किसी भी सिक्के पर दिखलाई नहीं पड़ती। इसलिए पहले वर्ग का तीसरा उपप्रकार यहाँ अज्ञात है। पहले उपप्रकार (फ० ८, १-५) में राजा अस्त्र-रहित है और दूसरे उपप्रकार (फ० ८, ४-५) में राजा दाहिने हाथ में धनुष लिये है। इस प्रकार का विवरण निम्नलिखित है।

अश्वारोही प्रकार

पुरोभाग—राजा प्रभामण्डलयुक्त, दाहिनी ओर या बाईं ओर सुसज्जित घोड़े पर सवार है, धोती, और कमरबंध, कर्णफूल, भुजबंध, हार पहने है, किसी में हथियार के साथ या उससे रहित। कुछ में अर्द्धचन्द्र वर्तमान है। वर्तुलाकार मुद्रा-लेख, एक बजे से आरम्भ–'परमभागवत महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्तः' (परम वैष्णव महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त)।

पृष्ठभाग—देवी कभी प्रभामण्डलयुक्त, मोढ़े पर बाईं तरफ बैठी है, दाहिने हाथ में पाश तथा बायें हाथ में कमल। नाल में कभी पत्तियाँ प्रकट होती हैं। लेख-'अजित-विक्रमः'[२]। कभी चिह्न वर्तमान, कभी अनुत्कीर्ण।

---

१. क्रिटो ने लेख को परमभागवत के स्थान पर, परमभट्टारक पढ़ा है। भरसार-निधि में इस प्रकार के स्पष्ट सिक्कों पर यह लेख उसने पढ़ा था। संभवतः पढ़ने में यह गलती थी। यह उपाधि इस राजा के किसी अन्य सिक्के पर नहीं मिलती है। ज० रा० ए० सो० १८८९ पृ० १०६।

२. बोदलियन-संग्रह में एक सिक्के पर (न्यू० क्रॉ० १८९७ फ० २, ६) स्मिथ द्वारा 'क्रमाजित' पढ़ा गया है जिसको वह द्वितीय चंद्रगुप्त का मानता है। (ज० रा० ए० सो० १८८९ पृ० ८६)। पुरोभाग पर वर्तुलाकार मुद्रा लेख 'परमभागवत' से आरंभ होता हैं। अतः यह सिद्ध होता हैं कि द्वितीय चंद्रगुप्त ने इसे निकाला था। किंतु लेख अस्पष्ट है तथा राजा का नाम पढ़ा नहीं जाता। 'क्रमादित्य' उपाधि का चन्द्रगुप्त ने प्रयोग नहीं किया था। इसकी १४०.६ ग्रेन तौल यह बताती है कि इसे स्कन्द ने निकाला होगा, जिसका विरुद 'क्रमादित्य' था।

फलक पर के सिक्के

पहला वर्ग

राजा बाईं ओर

पहला उपप्रकार

(राजा अस्त्र-रहित)[1]

१. सोना, .८", १२०.६ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कै० गु० डा०, फ० ६, १७

पुरोभाग—राजा प्रभामण्डल रहित, बायें सवार है, कोट तथा पायजामा पहने, कमरबंद पीछे उड़ रहा है, लेख एक बजे से—'परम', पाँच बजे से 'महाराजाधिराजश्री चन्द्रगुप्तः'; अंतिम अक्षर राजा और घोड़े के सिरों के बीच।

पृष्ठभाग—देवी प्रभामण्डलयुक्त बाईं ओर मोढ़े पर बैठी हुई, दाहिने हाथ में पाश तथा बायें में कमल जिसके डंठल में कली तथा पत्तियाँ दिखलाई पड़ती हैं, बायें चिह्न, मुद्रा-लेख—'अजितविक्रमः' (फ० ७, ११)।

२. सोना, .८", १२७ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० १३, ११

पुरोभाग—पूर्ववत्, राजा प्रभामण्डलयुक्त, शरीर अनावृत, मांसपेशियाँ अत्यन्त सुन्दर, सिर के बाल गुच्छे में पीछे गिर रहे हैं। घोड़े के पुट्ठे पर तारात्रों जैसा आभूषण, तथा उसके बाल पट्टित रूप में विभाजित।

पृष्ठभाग—मोढ़ा ऊँचा है, देवी प्रभामण्डलयुक्त, पैर ऊपर उठाये, कमल-नाल में पत्तियाँ, बाईं ओर चिह्न, मुद्रालेख—'अजितविक्रमः' कुछ अधूरा (फ० ७, १२)।

दूसरा उपप्रकार

(राजा धनुष लिये)

१. सोना, .८", ११८.८ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० १३, ८

पुरोभाग—धनुष का ऊपरी भाग घोड़े तथा राजा के सिर के मध्य दिखलाई पड़ता हैं। राजा प्रभामण्डल-रहित।

पृष्ठभाग—देवी प्रभामण्डलयुक्त, सामने झुकी हुई, बाईं ओर चिह्न, लेख अस्पष्ट तथा अधूरा (फ० ७,१३)।

---

१. ब्रि० म्यू० कै० फ० १०, ६-७।

२. सोना, ·७५″, १२१.८ ग्रेन, बयाना-निधि[1], फ० १४, ५

पुरोभाग—राजा प्रभामण्डलयुक्त, टोपी पहने तथा दाहिने हाथ में धनुष, जो घोड़े के पुट्ठे के ऊपर दिखलाई पड़ता है। लेख एक बजे—'परम', ७ बजे से—'धराजश्रीचन्द्रगुप्त'।

पृष्ठभाग—पृष्ठभाग कुछ घिसा हुआ। देवी प्रभामण्डलयुक्त और सामने बैठी है। देवी तथा लेख के मध्य एक लकीर। लेख-'अजितविक्रमः', चिह्न साफ नहीं (फ० ७,१४)।

तीसरा उपप्रकार
(राजा धनुष तथा तलवार के सहित[2])

सोना, .८″, १२१.६ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० १३, १४

पुरोभाग—राजा प्रभामण्डलरहित, उसकी बाईं ओर तलवार साफ चमक रही है, धनुष का ऊपरी अंश राजा तथा घोड़े के सिरों के मध्य दिखलाई पड़ता है। लेख एक बजे से 'परम भागवत'; ५ बजे से—'महाराजाधिरजश्रीचन्द्रगुप्त'।

पृष्ठभाग—देवी प्रभामण्डलयुक्त, कमलनाल में कलियाँ और पत्तियाँ, बाईं ओर चिह्न, मुद्रा-लेख—'अजितविक्रमः' (फ० ७, १५)।

दूसरा वर्ग
दाहिने अश्वारोही

पहला उपप्रकार[3]
(राजा अस्त्र-रहित)

(१) सोना, .८″, १२१.८ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० १४, १०

पुरोभाग—राजा प्रभामण्डल से रहित, दाहिने घोड़े पर सवार, लेख तीन बजे से कुछ अस्पष्ट 'परमभागवत महाराधिराज श्री चन्द्रगुप्तः' ('प्तः' एक बजे)।

पृष्ठभाग—देवी प्रभामण्डल रहित, खिला कमल अत्यन्त सुन्दर, कमलनाल में पत्तियाँ, बाईं ओर चिह्न, लेख 'अजितविक्रमः' (फ० ८, १)।

(२) सोना, .८″, १२१.४ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० १४, १३

पुरोभाग—राजा प्रभामण्डल-रहित, घोड़ा पूरी सरपट चाल से चल रहा है, राजा कुछ सामने झुका है। लेख एक बजे से अधूरा—'परमभागवत महाराजाधिराज', बाईं ओर 'चन्द्रगुप्तः'।

पृष्ठभाग—देवी प्रभामण्डल रहित, टोपी पहने, चिह्न बायें, लेख 'अजितविक्रमः' (फ० ८,२)।

---

१. ब्रि० म्यू० कै० जी० डी० फ० १०, ६-७।
२. वही फ० ९, १५ तथा १०, ६; न्यू० क्रा० १८८९ फ० २, ५; १९१० फ० १४, ४-५।
३. ब्रि० म्यू० कै० फ० ९;१४; १०, ४-५, ११-१२।

३. सोना, ७५″, ११६.६ ग्रेन, बयाना निधि, फ० १४,८

पुरोभाग—घोड़े के बाल पटियों के रूप में विभाजित, उसकी कलँगी दिखलाई पड़ती है, राजा की टोपी के पीछे मोतियों की लड़ी, लेख बारह बजे से 'परम भागवत' अन्य अक्षर धुँधले।

पृष्ठभाग—देवी प्रभामण्डलसहित, दाहिने हाथ से मुद्राएँ बिखेर रही है, चिह्न अस्पष्ट, लेख 'अजितविक्रमः' (फ० ८,३)।

४. सोना, ८५″, तौल अज्ञात, ब्रि० म्यू० कै०, फ० १०, ४

पुरोभाग—राजा प्रभामंडलरहित, बाल सिर पर ग्रंथी के रूप में, सिर के पीछे अर्द्धचन्द्र, लेख बारह बजे से, 'परमभागवत महाराजा', ६ बजे से, 'श्री चन्द्रगुप्तः' कुछ अक्षर ऊपर से कटे हुए ; 'प्त' बड़े आकार का।

पृष्ठभाग—देवी प्रभामण्डल सहित, पाश अस्पष्ट, कमलनाल छोटा, बाईं ओर चिह्न, लेख 'अजितविक्रमः' (फ० ८,४)।

दूसरा उपप्रकार

(राजा धनुष के साथ)

सोना, ८″, १२३.६ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कै०, फ० १०,६

पुरोभाग—राजा प्रभामंडलरहित, भुजबंध पहने, घोड़े की पूँछ पर मोतियों या मणियों का आभूषण, धनुष का ऊपरी अंश दिखलाई पड़ता है घोड़े तथा राजा के मध्य, लेख सीमा से बाहर, दाहिने सात बजे से 'राजाश्रीचन्द्रगुप्तः' अधूरा लेख।

पृष्ठभाग—देवी प्रभामंडलसहित, मोढ़े के पैर दिखलाई पड़ते हैं, चिह्न नहीं, लेख तथा देवी के बीच एक लकीर, 'अजितविक्रमः' (फ० ८,५)।

(ई) छत्र प्रकार

द्वितीय चन्द्रगुप्त ने छत्र प्रकार के नये सिक्के का समावेश किया था[२]। इस प्रकार के सिक्के विभिन्न आकार में पाये जाते हैं, जिनका व्यास ७५″ से ८५″ तक पाया जाता है। उनमें अधिकतर सिक्के तौल में १२१ ग्रेन हैं तथा कुछ १२४ ग्रेन के कुछ १२७

---

१. ज० ए० सो० ब० न्यू० सप्लि० पृ० ८७ पृ० ७।

२. श्री टामस ने एक छत्र प्रकार की मुद्रा को ज० ए० सो० १८९३ पृ० ९२ को प्रथम चन्द्रगुप्त का माना है; किन्तु उनका मत हमें मान्य नहीं है। यह सही है कि पुरोभाग पर राजा वेदी पर आहुति छोड़ रहा है, जो पिछले कुषाणों के सिक्के पर की आकृति की याद दिलाता है और जहाँ से प्रथम चंद्रगुप्त ने उसका अनुकरण किया था। किंतु वेदी-हवन का दृश्य प्रथम कुमारगुप्त के खड्गधारी सिक्के तक मिलता है। विक्रमादित्य का विरुद स्पष्ट बतलाता है कि द्वितीय चंद्रगुप्त ने छत्र मुद्रा को निकाला था। उसके पितामह प्रथम चंद्रगुप्त ने ऐसी उपाधि धारण नहीं की थी।

ग्रेन तक तौल में कोई भी नहीं पाया जाता। ब्रिटिश तथा कलकत्ता संग्रहालयों में ६ तथा लखनऊ संग्रहालय में केवल एक ही सिक्का सुरक्षित है। बयाना निधि में इस प्रकार के ५७ सिक्के मिले हैं। उनमें से ५ प्रथम वर्ग तथा ५२ द्वितीय वर्ग के हैं।

पुरोभाग में राजा बाईं ओर देख रहा है तथा यज्ञवेदी पर आहुति डाल रहा है, जैसा समुद्रगुप्त के दण्डधारी सिक्के में है। राजा के बायें हाथ में ध्वजा या भाला नहीं है; वह तलवार के मूँठ पर स्थित है जो बाईं ओर लटक रही है। राजा कभी धोती पहने है (फ० ८,६,६ तथा १२) कभी पायजामा (फ० ६,७-८), कभी जाँघिया (फ० ८,१०)। उसका सिर कभी नंगा है (फ० ८,१२,१४), कभी टोपी पहने है (फ० ८,६) तथा कभी कलँगी के साथ मुकुट धारण किये है (फ० ८,७)।

राजा के पीछे वामन नौकर खड़ा है जो राजा के सिर पर छत्र धरे हुए है। यह संस्कृत साहित्य में बौने नौकर की याद दिलाता है, जो राजदरबार में विभिन्न कार्य करता था। सिक्के पर का पुरुष वामन है। वह कोट पहने है (फ० ८,१०) कभी जूता भी (फ० ८,६)। कभी-कभी वामन की आकृति स्त्री के समान दिखाई देती है, क्योंकि स्तन उन्नत दीखते हैं (फ० ८, १२-१४)। संस्कृत साहित्य में जहाँ राजसेवकों का वर्णन आता है उसमें स्त्री सेविका का उल्लेख भी मिलता है, जो छत्र या चँवर लिये रहती थी। अमरावती की तक्षणकला में भी राजा के सन्निध अनेक सेविकाएँ दीखती हैं। अतएव यह असम्भव नहीं है कि मुद्रा-निर्माताओं ने छत्र धारण करनेवाले सेवक के स्थान पर कभी-कभी स्त्री को भी रखडाला हो। किन्तु यह मूर्ति इतनी छोटी है कि कोई निश्चित मत स्थिर नहीं किया जा सकता। कोई भी छत्रधारी सेवक की आकृति वैसी निस्संशय स्त्रीवत् नहीं है जैसी प्रथम कुमारगुप्त के खड्गनिहन्ता प्रकार के सिक्के पर दिखलाई पड़ती है।

कई स्थानों में वेदी पर आहुति छोड़ने के कार्य को कलात्मक ढंग से प्रदर्शित किया गया है। उसमें समानान्तर पंक्तियों में कुण्ड में गिरते पुरोडाश दिखलाये गये हैं (फ० ८,७,१०)। एक स्थान पर वेदी से लपट दिखलाई पड़ रही हैं। कभी-कभी यज्ञवेदी शिवलिङ्ग की तरह प्रकट होती है (फ० ८,८)। किन्तु यह समानता आकस्मिक है।

पृष्ठभाग पर लक्ष्मी खड़ी हैं। दाहिने हाथ में पाश है, जो कभी पुष्पमाला या जपमाला की तरह मालूम पड़ता है (८,१३)। बायें हाथ में लम्बे नालवाला कमल है; पर एक सिक्के पर हाथ खाली नीचे लटक रहा है (फ० ८,१२)। देवी विभिन्न अवस्था में दिखलाई गई है, जिसका वर्णन भिन्न उपप्रकारवाले सिक्कों के साथ किया जायगा। श्री ॲलन के सदृश हम छत्रप्रकार के सिक्कों को दो वर्ग में बाँट सकते हैं। पहले वर्ग (फ० ८,६) में पुरोभाग पर लेख गद्य में मिलते हैं—'महाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तः'। इस वर्ग के केवल सात सिक्के अभी तक मिले हैं। दूसरे वर्ग (फ० ८,७-१५) में पुरोभाग का लेख छंदोबद्ध है—'क्षितिमवजित्य सुचरितैर्दिवम् जयति विक्रमादित्यः'। इस वर्ग के सिक्के अधिक संख्या में मिलते हैं। देवी की स्थिति के अनुसार दूसरे वर्ग को कई उपप्रकारों में बाँटा जा

सकता है। पहले उपप्रकार (फ० ८,८) में देवी रुद्गगत कमल पर खड़ी है। स्मिथ के मतानुसार वह कोई विचित्र राक्षस है ; किन्तु कुछ सिक्कों पर वह पदार्थ कमल-सा प्रतीत होता है (फ० ८,६)। दूसरे उपप्रकार (फ० ८,६-१०) में देवी छोटी स्टूल पर खड़ी है। एक सिक्के पर वह दाहिना पैर उठाती हुई दिखलाई पड़ती है। सम्भवतः वह नीचे की ओर उतरना चाहती है (फ० ८,१०)। इस तरह का सिक्का दुष्प्राप्य है। तीसरे उपप्रकार (फ० ८,११-१२) में देवी तीन-चौथाई भाग बाईं ओर चटाई पर खड़ी है। चौथे उपप्रकार में वह बाईं तरफ चल रही है। पैर की स्थिति दोनों में एक-सी है। किंतु उनके नीचे चटाई होने के कारण एक उपप्रकार में उसे खड़ी मानते हैं, और वह न होने के कारण दूसरे उपप्रकार में चलनेवाली। जिन सिक्कों पर पूरे पैर दृष्टिगोचर नहीं हैं वहाँ यह कहना कठिन है कि देवी खड़ी है या चल रही है (फ० ८, १४)। पाँचवें उपप्रकार (फ० ४,१५) के दो सिक्के मिले हैं, जिनसे प्रकट होता है कि देवी बाईं ओर दौड़ रही है। पैर तथा हाथ के भाव चलने की अपेक्षा दौड़ना व्यक्त करते हैं।

इन सिक्कों का वर्णन निम्नलिखित हैं।

पहला वर्ग[१]

(लेख गद्य में)

पुरोभाग—राजा प्रभामण्डलयुक्त, बाईं ओर खड़ा, वेदी पर दाहिने हाथ से पुरोडाश डालते हुए; बायाँ हाथ तलवार पर, पीछे एक बौना शाही छत्र धारण किये, वर्तुलाकार मुद्रा-लेख एक बजे आरम्भ—'महाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तः' (राजराजा चन्द्रगुप्त)।

पृष्ठभाग—बिंदुविभूषित वर्तुल में लक्ष्मी प्रभामंडल सहित, तीन-चौथाई बाईं ओर खड़ी, दाहिने हाथ में पाश तथा बायें में कमल, बायें चिह्न, लेख–'विक्रमादित्य'।

दूसरा वर्ग

पुरोभाग—पूर्ववत्, वर्तुलाकार मुद्रालेख, 'क्षितिमवजित्य सुचरितैर्दिवं जयति विक्रमादित्यः' राजा विक्रमादित्य संसार को जीतकर पुण्य कर्मों द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति करता है। उपगीति छंद।

पृष्ठभाग—लक्ष्मी प्रभामंडल सहित, कभी खड़ी, कभी चलती, कभी दौड़ती, दाहिने हाथ में पाश तथा साधारणतया बायें में कमल, अधिकतर बाईं ओर चिह्न, लेख—विक्रमादित्य[२]।

---

१. ब्रि० म्यू० कै० फ० ८,१; इ० म्यू० कै० फ० १६,१।
२. कुछ स्थान में दूसरा अक्षर क्र के बदले क।

फलकस्थित सिक्कों का वर्णन

पहला वर्ग

(१) सोना, ८५", ११८·७ ग्रेन, बयाना निधि, फ० १५,६

पुरोभाग—राजा बाईं ओर खड़ा है, वेदी पर कुछ डाल रहा है, जिससे दो लपटें निकल रही हैं। सिर पर कलँगी, लेख एक बजे से, 'महाराजा', दाहिनी ओर, 'श्री-चन्द्रगुप्त', अस्पष्ट।

पृष्ठभाग—तीन-चौथाई बाईं ओर देवी खड़ी है। कमल का आसन साफ प्रकट होता है, बायें हाथ का कमलनाल टेढ़ा मालूम पड़ता है (फ० ८,६)।

दूसरा वर्ग

[छंदोबद्ध लेख]

पहला उपप्रकार

(देवी सम्मुख खड़ी है)

(२) सोना, .८५", १२०·४ ग्रेन, बयाना निधि, फ० १५,७

पुरोभाग—राजा कलँगीदार मुकुट पहने, हाथ से बारह पुरोडाश वेदी पर गिर रहे हैं, पीछे बामन जूता पहने है, एक बजे से लेख—'क्षितिमवजित्य सुचरितैः'। अक्षर-मात्राएँ प्रायः सब स्पष्ट।

पृष्ठभाग—देवी सामने खड़ी है, उसका कमलासन बेढब, दोनों हाथ फैलाये, लेख 'विक्रमादित्य' (फ० ८,७)।

दूसरा उपप्रकार

(देवी एक छोटी स्टूल पर खड़ी)

(३) सोना, .८", तौल अज्ञात, ब्रि० म्यू० कै०, फ० ८, ४

पुरोभाग—राजा की लम्बी आकृति, वेदी अर्घासहित शिवलिङ्ग की तरह, लेख—'क्षितिमवजित्य सुचरित'।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, लेख 'विक्रमादित्य' (फ० ८,८)।

(४) सोना, .८", १२२ ग्रेन, बयाना निधि, फ० १५, १३

पुरोभाग—पूर्ववत्, राजा चिपकी टोपी पहने, मोतियों की लड़ी पीछे लटकी, लेख-'क्षितिमव'।

पृष्ठभाग—देवी छोटी स्टूल पर तीन-चौथाई बाईं ओर, लेख 'विक्रमादित्य' (फ० ८,६)।

(५) सोना, .८", १२० ग्रेन, ज० न्यू० सो० इं० १९४९, फ० ३,८

पुरोभाग—राजा का सिर अनावृत; छोटी बाँह का कोट और जाँघिया पहने हैं। पुरोडाश दो समानान्तर पंक्तियों में वेदी पर गिर रहे हैं। वामन भी कोट और जँघिया पहने है। छत्र मुद्रा सीमा के बाहर अतएव अदृश्य।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, वह दाहिना पैर उठा रही है, स्यात् देवी नीचे उतरना चाहती है। चिह्न अनुत्कीर्ण, लेख अस्पष्ट (फ० ८,१०)।

तीसरा उपप्रकार

(देवी चटाई पर खड़ी है)

(६) सोना, .८", ११६.७ ग्रेन, बयाना निधि, फ० १५, १५

पुरोभाग—राजा का सिर अनावृत और शरीरोर्ध्व भाग भी, हाथ से वेदी पर गिरती वस्तु अस्पष्ट, वामन अलंकृत कमरबंध पहने, छत्र सीमा से बाहर, लेख सात बजे से, 'विजित्य विक्रमादित्य'।

पृष्ठभाग— देवी चटाई पर खड़ी ; किंतु तुरंत चलनेवाली है। तीन-चौथाई बाईं ओर, उसका शरीर सुन्दर है तथा हाथ का कमल पूरा खिला हुआ है। लेख—'विक्क्रमादित्य' (नोट–क्र के स्थान पर संयुक्त क्क्र (फ० ८,११)।

(७) सोना, .७५", १२० ग्रेन, ब्रि० म्यू० कै०, फ० ८,१०

पुरोभाग—लेख-'क्षितवि'।

पृष्ठभाग—पूर्ववत् , देवी का बायाँ हाथ खाली लटक रहा है, चिह्न नहीं या अस्पष्ट, लेख, 'विक्रमादित्य' (फ० ८,१२)।

चौथा उपप्रकार

(देवी बायें चल रही है)

(८) सोना, .७५", १२० ग्रेन, बयाना निधि, फ० १५,१४

पुरोभाग—पूर्ववत्, राजा का शरीरोर्ध्व भाग तथा सिर अनावृत्त, लेख एक बजे से 'क्षितिमवजित्य', आठ बजे से—'मादित्य'।

पृष्ठभाग— देवी की अत्यन्त सुन्दर आकृति, उसका वैसा ही सुन्दर मुरेठा, दाहिने हाथ में पाश है या उससे वह मुद्रा बिखेर रही है, यह कहना कठिन; लेख 'विक्रमादित्य' (८,१३)।

(९) सोना, .७५", १२२,१ ग्रेन, बयाना निधि, फ० १६,५

पुरोभाग—पूर्ववत्, राजा का सिर अनावृत, भुजबंध पहने, बामन उसके बायें हाथ को सम्भाल रहा है, छत्र सीमा के बाहर, लेख अधूरा तथा अस्पष्ट, वामन के सिर पर 'त्य' अक्षर का अधोभाग।

पृष्ठभाग— देवी के बाल सिर पर गाँठ में बँधे हैं, चलते हुए बायाँ पैर उठा रही है, लेख-अस्पष्ट 'मादित्य' (फ० ८,१४)।

पाँचवाँ उपप्रकार
(देवी बाईं ओर दौड़ रही है)

(१०) सोना, .७८", ११८·८ ग्रेन, बयाना निधि, फ० ९,७

पुरोभाग—राजा के हाथ से पुरोडाश गिरता दिखलाई पड़ रहा है, वामन हार पहने है, उसके पैर की विशिष्ट स्थिति, लेख एक बजे से, 'जतमवजित्य' अधूरा।

पृष्ठभाग—बाईं ओर देवी दौड़ रही है जो उसके हाथों की स्थिति से स्पष्ट प्रकट होता है, लेख 'विक्रमद' (फ० ८,१५)।

पर्यङ्क प्रकार

पर्यङ्क प्रकार के सिक्के ·८" से ·८५" तक आकार में भिन्न मिलते हैं। उनकी तौल १२१ ग्रेन है; किन्तु ब्रिटिश-संग्रहालय का एक सिक्का ११४·७ ग्रेन तौल के बराबर है। सम्भवतः यह घिसा सिक्का है। इस प्रकार के सिक्के अत्यन्त दुष्प्राप्य हैं। ब्रिटिश, बम्बई, कलकत्ता तथा लखनऊ के संग्रहालयों में एक-एक सिक्का है; परन्तु बयाना निधि में ऐसे तीन सिक्के मिले हैं।

इस प्रकार के सिक्के में राजा पर्यङ्क पर बैठा है। उसका शरीरोर्ध्व भाग अनावृत है और दाहिने हाथ में पुष्प, बायाँ हाथ आसन पर रखा हुआ है। पृष्ठभाग में देवी सिंहासन पर बैठी दिखलाई गई है; पर कभी मोढ़े पर भी बैठी है।

इस प्रकार में समुद्रगुप्त के वीणा प्रकार के सिक्के का अनुकरण किया गया है। दोनों सिक्कों पर राजा अनावृत अर्ध शरीर लिये पर्यङ्क पर बैठा है। समुद्रगुप्त तो वीणा बजा रहा है; किन्तु चन्द्रगुप्त शायद पिता जैसे संगीतज्ञ नहीं थे, इस कारण वीणा बजाते हुए नहीं दिखलाये गये हैं। एक उपप्रकार में (फ० ६,५) देवी छोटी चौकी पर बैठी है जैसे समुद्रगुप्त के सिक्कों पर। अन्य सिक्कों (फ० ६,१-४) पर वह सिंहासन पर ठीक उसी ढंग से बैठी है, जिस ढंग से इस राजा के धनुर्धारी प्रकार के पहले वर्ग के सिक्कों पर। चूँकि पहले प्राप्त की गई मुद्रा पर 'ह' अक्षर पूर्वी शैली का था, इसलिए यह सुझाव रखा गया कि यह प्रकार पाटलिपुत्र में प्रचलित किया गया और वह भी शासन काल के शुरू में, क्योंकि पृष्ठभाग की देवी धनुर्धारी प्रकार के पहले वर्ग से मिलती-जुलती है। किन्तु पीछे पश्चिमी शैली के 'म' और 'ह' अक्षरवाले सिक्के भी इस प्रकार में मिले हैं। अतः अभी यह मानना संभव नहीं है कि इस प्रकार के सिक्के पाटलिपुत्र से ही राज्यारोहण के समय निकाले गये थे।

पुरोभाग पर लेख गद्य में है। वह 'देवश्रीमहाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तस्य' या 'विक्रमादित्यस्य' अथवा 'परमभागवतमहाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्त' है। एक सिक्के पर चारपाई के नीचे एक अधिक लेख 'रूपाकृती' लिखा मिलता है। इस शब्द का अर्थ स्पष्ट रूप से ज्ञात नहीं है। अंतिम अक्षर 'ती' है, इसलिए यह 'रूपाकृतिः' नहीं पढ़ा जा सकता जिसका अर्थ है सिक्के पर राजा की 'आकृति' (रूपे आकृतिः) अथवा राजा का सुन्दर चित्र

(रूपयुक्ता आकृतिः)। संस्कृत साहित्य में रूप शब्द से नाटक का भी बोध होता है। यदि मुद्रालेख 'रूपकृती' होता तो उससे स्पष्ट अर्थ निकलता कि वह व्यक्ति जो नाटक लिखने में कुशल है। चन्द्रगुप्त संस्कृत साहित्य का संरक्षक था। सम्भवतः वह स्वयं नाटककार भी था। किन्तु मुद्रालेख 'रूपकृती' की अपेक्षा 'रूपाकृती' होने से यह अनुमान ठोस नहीं प्रतीत होता। यह भी हो सकता है कि 'पा' की 'आ' मात्रा उससे अलग है, किन्तु जैसी होनी चाहिए, वैसी नहीं है। इसलिए यह भी प्रस्ताव रखा जा सकता है कि 'पा' की 'आ' मात्रा का केवल आभास इस दोष से उत्पन्न होता है, वास्तव में अक्षर 'प' ही है। मूल मुद्रालेख 'रूपकृती' ही होगा। यदि वैसा ही हो तो 'रूपकृती' का अर्थ 'नाटक रचना में कुशल'; यह चन्द्रगुप्त का वर्णन होगा।

मुद्रालेख की समस्या का सुझाव उसी समय होगा जब अधिक स्पष्ट अक्षरों के नये सिक्के खोज में निकलेंगे।

इस प्रकार के पहले उपप्रकार (फ० ६,१) में वर्तुलाकार लेख आठ बजे आरम्भ होता है—'देवश्रीमहाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तस्य विक्रमादित्यस्य'। इसी सिक्के पर रूपाकृतीवाला लेख पर्यङ्क के नीचे पाया जाता है। पृष्ठभाग पर देवी सिंहासन पर बैठी है। बायें हाथ में कमल है तथा दाहिना खाली है। मुद्रालेख 'श्रीविक्रमः' बाईं ओर लिखा है, जहाँ चिह्न भी पाया जाता है।

दूसरे उपप्रकार में (फ० ६,२) 'रूपाकृती' वाला अंश नही मिलता तथा वर्तुलाकार लेख भी संक्षिप्त हो गया है 'देवश्रीमहाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तः'। पृष्ठभाग पूर्ववत् पाया जाता है; पर लेख दाहिनी ओर है।

तीसरे उपप्रकार (फ० ६,३) में पहले की तरह मुद्रा-लेख नहीं पाया जाता तथा दूसरे की तरह उसके पृष्ठभाग का मुद्रालेख दाहिनी ओर नहीं, बाईं ओर है।

चौथा उपप्रकार (फ० ६,४) तीसरे के समान है। पुरोभाग पूर्ववत् है; किन्तु पृष्ठभाग पर देवी का दाहिना हाथ खाली नहीं है। वह पाश लिये हैं तथा लेख दाहिने है।

पाँचवा उपप्रकार (फ० ६,५) में राजा तीन-चौथाई भाग बाईं ओर बैठा है। उसका बायाँ हाथ चारपाई पर रखा है और दाहिने हाथ से किसी देवता को पुष्प भेंट कर रहा है, जो अधूरी तरह दिखाया गया है; पर वह स्पष्ट है। चारपाई के नीचे पिकदानी रखी हुई है। एक बजे से वर्तुलाकार मुद्रालेख अधूरा, 'परमभागवतमहा' पढ़ा जा सकता है, वह स्वाभाविक ही 'राजाधिराजचन्द्रगुप्तः' से पूरा करना पड़ेगा। पृष्टभाग पर देवी पीठ रहित चारपाई पर बैठी है जो तिपाई के सदृश है। बायाँ हाथ खाली, दाहिने में लम्बे कमल नालयुक्त कली है। चिह्न अज्ञात, लेख 'विक्रमादित्यः'।

प्रत्येक उपप्रकार में केवल एक-एक सिक्का उपलब्ध है।

फलकस्थित सिक्कों का विवरण

पहला उपप्रकार

('रूपाकृती' लेख के साथ)

(१) सोना, ८", ११८ ग्रेन, इं० म्यू० कै० १ फ० १५,१०

पुरोभाग—राजा छोटी धोती तथा आभूषण पहने पीठवाली चारपाई पर सम्मुख बैठा है। दाहिने हाथ में कमल, बायाँ हाथ चारपाई पर रखा हुआ है। सात बजे से लेख आरम्भ 'देवश्रीमहाराजाधिराज श्री च' दाहिने अधूरा अक्षर 'न्द्रगुप्त स्य (विक्रमादित्यस्य)' (राजा का वह सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य) चारपाई के नीचे रूपाकृती (सफल नाटककार या सुन्दर आकृति)।

पृष्ठभाग—देवी सिंहासन पर बैठी, कमलासन पर पैर, दाहिना हाथ खाली, बायें हाथ में कमल, लेख-'श्रीविक्रमः' चिह्न इसके ऊपर (फ० ६,१)।

दूसरा उपप्रकार

(पूर्ववत्, किंतु 'रूपाकृती' लेख रहित)

(२) सोना, .८", ११४.७ ग्रेन, ब्रि. म्यू० कै०, फ० ६,८

पुरोभाग—पहले के सदृश, वर्तुलाकार लेख में अंतिम शब्द 'विक्रमादित्यस्य' का अभाव; ८ बजे से आरम्भ, अक्षर बड़े तथा स्पष्ट, कुछ स्थानों पर कटे हुए, चार बजे 'चन्द्रगुप्तस्य', चारपाई के नीचे 'प्तस्य', फूल भद्दे तरीके से खुदा, स्मिथ ने गलती से इसे तरकस माना है।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, लेख 'श्रीविक्रम' दाहिनी ओर (फ० ६,२)।

तीसरा उपप्रकार

(दूसरे की तरह, किन्तु पृष्ठभाग का लेख बायें)

(३) सोना, .८", १२.६ ग्रेन, बयाना निधि, फ० १८,१२

पुरोभाग—पूर्ववत्, शरीर सुन्दर माँसपेशियाँयुक्त, फूल स्पष्ट, लेख आठ बजे से अधूरा, बाईं ओर के अक्षर कटे हुए, प्रथम शब्द 'देव श्री' की जगह शायद 'महाराज' था। ६ बजे 'राजाधिराज', दाहिने 'श्री चन्द्रगुप्तस्य' स्पष्ट लिखा हुआ।

पृष्ठभाग—दूसरे उपप्रकार के समान, लेख 'श्रीविक्रम' दाहिने, बायें नहीं (फ० ६,३)।

चौथा उपप्रकार

[देवी के दाहिने हाथ में पाश]

(४) सोना, .८", ११६.५ ग्रेन, बयाना निधि, फ० १७,१३

पुरोभाग—पूर्ववत्, लेख सात बजे 'देवश्रीमहा', दो बजे 'धिराज', अधूरा।

पृष्ठभाग—देवी पूर्ववत्, दाहिने हाथ में पाश तथा बायें में कमल, दोनों हाथ झुके हैं, बायें चिह्न, दाहिने लेख 'श्रीविक्रम' (फ० ६,४)।

पाँचवाँ उपप्रकार

[लेख 'परमभागवत' के साथ]

(५) सोना, .८", ११८.५ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० १८,११

पुरोभाग—राजा तीन-चौथाई चारपाई पर बायें बैठा, चारपाई की पीठ में मोती या मणि जड़े, चारो पैर स्पष्ट, बायें हाथ पर्यङ्क की पीठ पर, दाहिने में लम्बे नाल तथा कलीयुक्त कमल, जो वह किसी देवता को भेंट कर रहा है; देवता की आकृति अधूरी। चारपाई के नीचे पिकदानी, लेख एक बजे ' परमभागवतमह'।

पृष्ठभाग—देवी कमल से ढँके सिंहासन पर बैठी है, तिपाई के सदृश पर्यङ्क के नीचे चार कोनेवाली वस्तु जिसे नहीं पहचाना जा सकता है, दाहिने हाथ में लम्बे नालयुक्त कमल, बायाँ नीचे लटकता हुआ, चिह्न अज्ञात, लेख 'विक्रमादित्य'; 'क' तथा 'त्य' अक्षर ऐसे लकीर में हो गये हैं कि वे देवी को लेख से पृथक् करते हैं। फ० ६,५

(ञ) पर्यङ्क स्थित राजा-रानी प्रकार

अयोध्या से २५ मील दूर बदौली नामक स्थान पर बॉइस महोदय ने एक अपूर्व सिक्का खरीदा, जिससे यह प्रकार पहले-पहल विदित हुआ। यह सिक्का एक साधारण व्यक्ति से खरीदा गया था, जिसका दाम धातु के मूल्य के बराबर था। अतः इसमें जालसाजी की बात सम्भव नहीं है। इसकी बनावट भद्दी है; किन्तु द्वितीय चन्द्रगुप्त के निस्संशय बनाये हुए सिक्कों में भी कभी-कभी कला-हीनता दिखलाई पड़ती है। शायद यही सिक्का श्री हॅमिलटन के संग्रह में वर्तमान है। इस सिक्के का चित्र एशियाटिक सोसाइटी बंगाल की रिपोर्ट में छपा है

१ हॅमिलटन ने १४-८-१९५० को मुझे कराची से लिखा था कि वह सिक्का हिन्दुस्तान के बैंक में मुहरबन्द होने के कारण मुझे परीक्षा के लिए नहीं भेजा जा सकता। इंगलण्ड में उन्होंने इस सिक्के को श्री ॲलन को दिखाया था। उन्होंने श्री हॅमिलटन को इसके बारे में लिखा—'इस सिक्के को देखकर मैं आश्चर्यचकित हो गया हूँ। 'श्री विक्रम' लेख से सिक्का द्वितीय चन्द्रगुप्त का प्रकट होता है तथापि यह निश्चित नहीं है। बायें हाथ के नीचे 'चन्द्र' है अथवा कुछ दूसरा लेख, यह निश्चित नहीं है, जिसके कारण सिक्का चन्द्रगुप्त का ही था, यह नहीं कहा जा सकता। पृष्ठभाग की लिखावट साफ है किंतु वह कमजोर है। पुरोभाग के लेख का कोई तात्पर्य नहीं मालूम पड़ता। स्मिथ का कथन है कि 'थ' अक्षर, जो शून्य के आकार का इस समय हुआ था, वह वास्तव में संक्षेप का चिह्न है; किंतु इस तरह का दूसरा उदाहरण नहीं उपलब्ध हुआ है। दूसरे मुद्रालेखों की तरह यहाँ का लेख दिखलाई नहीं देता। द्वितीय चन्द्रगुप्त का सिर प्रायः अनावृत घुँघराले केश से आवृत है। परन्तु यहाँ वह पगड़ी रखता है जैसा कि 'चन्द्रगुप्त कुमारदेवी' सिक्के पर दिखलाई देती है। किंतु केवल इसी कारण से इस सिक्के को समुद्रगुप्त का या चन्द्रगुप्त का मानना कठिन है।

वह स्पष्ट नहीं है और यहाँ (फ० ६,६) उसका फोटो दिया जा रहा है। मालूम पड़ता है कि टप्पा लगाते समय सिक्का हिलने के कारण वह उसपर दोबारा लगाया गया, जिसके कारण मुद्रालेख के बहुत से अक्षर एक दूसरे के ऊपर आ गये हैं, अतएव वे अस्पष्ट हैं। हर्नले ने बाईं ओर का लेख 'परभग' पढ़ा है जो आठ बजे आरम्भ होता है। 'पर' अक्षर स्पष्ट है, उसके बाद एक शून्याकार वर्तुल दिखलाई पड़ता है। उसके बाद 'म' और उसके पश्चात् एक बड़ा वर्तुल है। इसके बाद 'भग' अक्षर आते हैं और फिर एक वर्तुल। हर्नले का कथन है कि 'भग' शब्द के बाद का शून्य (वर्तुल) यह प्रकट करता है कि वह 'भागवत' का संक्षेप है। हमारे मत में मुद्रालेख के आरंभ का शून्य निरर्थक-सा मालूम पड़ता है। बाईं ओर के अक्षरों में 'प' प्रायः सीमा के बाहर है; 'र' का स्वरूप 'रू' या 'ञ' के समान भी ज्ञात होता है। 'म' अक्षर स्पष्ट है। 'भ' सम्भवतः वर्तमान है; किन्तु 'ग' की स्थिति संदेहात्मक है। दाहिनी ओर का लेख 'प्रवीरगुप्तः' ऐसा हर्नले ने पढ़ा है; किंतु फलक के देखने से यह मुद्रालेख संदेहात्मक हो जाता है। 'व' 'च' के समान ज्ञात होता है, तथा 'र' 'न्द्र' के समान। पहला अक्षर शायद 'श्री' होगा। इस प्रकार दाहिनी ओर का लेख 'प्रवीरगुप्तः,' की अपेक्षा 'श्रीचन्द्रगुप्तः' था, ऐसा प्रतीत होता है। यह 'प्रवीरगुप्तः' मुद्रालेख प्रयोजन-शून्य तथा असम्भव प्रतीत होता है।

बाँह के नीचे का लेख 'चन्द्र' स्पष्ट पढ़ा जाता है। केवल टप्पे की गलती से दो 'च' दिखलाई पड़ते हैं। पृष्ठभाग पर 'श्रीविक्रमः' निश्चित रूप से लिखा है। इस कारण सिक्के का द्वितीय चन्द्रगुप्त से संबंध स्थिर किया जाता है, जिसने सर्वप्रथम इस उपाधि को धारण किया था। अभी तक कोई प्रमाण नहीं मिला है, जिससे यह ज्ञात हो कि उसके पितामह प्रथम चन्द्रगुप्त ने यह विरुद धारण किया था। इस कारण हर्नले का मत मान्य होना मुश्किल है कि इस सिक्के को गुप्त सम्राज्य के प्रतिष्ठापक चन्द्रगुप्त ने चलाया था। उस सिक्के की हलकी तौल ११२.५ ग्रेन तो हर्नले के मत को कुछ अंश में पुष्ट करती है; परन्तु यह ध्यान में रखना चाहिए कि बयानानिधि से द्वितीय चन्द्रगुप्त के अनेक सिक्के ११२ ग्रेन से भी कम तौल के मिले हैं। अतएव ११२.५ ग्रेन की तौल के कारण द्वितीय चन्द्रगुप्त से इस सिक्के का सम्बन्ध स्थिर करना असम्भव नहीं।

पर्य्यङ्क सिक्के की तरह यह मुद्रा भी दुष्प्राप्य है। केवल एक ही मुद्रा मिली है[१]। सम्भवतः यह पर्यङ्क प्रकार के साथ-साथ अथवा कुछ पीछे निकाला गया होगा। हर्नले का मत है कि यह राजा के सुरापान का दृश्य प्रकट करता है। राजा के हाथ की वस्तु जिसे वह रानी को दे रहा है, किसी प्रकार के पात्र या प्याला से समता नहीं रखती। राजा के व्यक्तिगत जीवन की घटना को इस रूप में सिक्के पर प्रदर्शित करना हिन्दू रिवाज के प्रतिकूल

१. मैंने सुना था कि लखनऊ के एक सेठी के पास इस प्रकार का दूसरा सिक्का है, किन्तु वहाँ उसे देखने में मैं असफल रहा।

है। इस वस्तु में लंबाकार पतली सी मुठी है जिसका सिरा गोल है। सम्भवतः वह सिन्दूर-दानी या अन्य कोई आभूषण है।

राजारानी प्रकार (पर्यङ्क पर)

१. सोना, '८५", ११२'५ ग्रेन, प्रो० ए० सो० बं० १८८८, फ० ६

पुरोभाग—प्रभामण्डलयुक्त राजा, लम्बा कोट तथा पायजामा पहने, बायें खड़ा, वेदी पर आहुति डालता, दाहिने हाथ में दण्ड, जैसा समुद्र के ध्वजधारी सिक्के पर, गरुड़ध्वज पीछे, बायें हाथ के नीचे चन्द्र, वर्तुलाकार लेख आठ बजे आरम्भ–'परम···भग··· श्री चन्द्रगुप्त'।

पृष्ठभाग—प्रभामंडलयुक्त राजारानी पर्यङ्क पर बैठे, आमने-सामने देख रहे हैं, राजा का दाहिना पैर ऊपर उठा है तथा बायाँ नीचे लटक रहा है। रानी चारपाई की बाईं ओर बैठी है जिसका दाहिना पैर लटक रहा है, दाहिना हाथ पर्यङ्क पर रखा है जिसपर सारा शरीर अवलम्बित है। बायाँ हाथ कमर पर रखा है तथा केहुनी ऊपर की ओर है। राजा घुटने तक धोती, रानी चोली तथा साड़ी पहने, दोनों दस्तबंद, कर्णफूल (कुण्डल), सिर का आभूषण, हार पहने हैं; रानी पायल अधिक पहने है, राजा रानी को कोई गोल वस्तु दे रहा है जैसे कोई आभूषण हो, अर्द्धचन्द्र दोनों के मध्य में, लेख रानी के पीछे किनारे पर, 'श्री वि', राजा के पीछे 'क्रमः'।

(अ) ध्वजधारी प्रकार

द्वितीय चन्द्रगुप्त का ध्वजधारी प्रकार केवल एक सिक्का से ज्ञात हुआ है, जो काशी विश्वविद्यालय के कला-भवन में संग्रहीत रखा हुआ है। उसका वर्णन निम्नलिखित है।

सोना, '८", अज्ञात तौल, ज० न्यू० सो० इं० १९४७, फ० ७.३

पुरोभाग—प्रभामंडलयुक्त राजा बाईं ओर खड़ा, कोट, पायजामा, कुण्डल, हार धारण किये, बायें हाथ में राजदण्ड या फीतदार ध्वज, सामने वेदी पर दाहिने हाथ से आहुति डाल रहा है, वेदी के पीछे गरुडध्वज, राजा के बायें हाथ के नीचे 'चन्द्रगुप्त' लम्बवत् लिखा है। वर्तुलाकार लेख एक बजे आरम्भ, 'वसुधा विजित्य जयत त्रदव पृथ-वस्वरः' जो 'वसुधा विजित्य जयति त्रिदिनं पृथिवीश्वरः (पुण्यैः)' के बदले में अंकित है। 'संसार को जीतकर, पृथ्वी का स्वामी पुण्य कर्मों से स्वर्ग की प्राप्ति करता है'। उपगीति छंद।

पृष्ठभाग—प्रभामंडलसहित देवी, सिंहासन पर बैठी सम्मुख देखती, दाहिने हाथ में पाश तथा बायें में कॉर्नुकोपिया, जो जंघे पर स्थित है, दाहिनी ओर लेख—'परमभागवत'; चिह्न को हथौड़े से चिपटा कर दिया गया है, ऊपरी भाग में हथौड़े का चिह्न, सिक्के को कैंची से भी काटा गया है जो दो बजे से लेकर बीच तक लम्बा फैला है।

श्री परमेश्वरीलाल गुप्त ने इस सिक्के को प्रकाशित करते हुए द्वितीय चन्द्रगुप्त का सिक्का माना है। पीछे डॉ० छाबा ने यह सुझाव रखा है कि इसे प्रथम चन्द्रगुप्त का सिक्का मानना चाहिए। उनके मुख्य प्रमाण निम्नलिखित हैं—

(१) पुरोभाग अथवा पृष्ठभाग पर 'विक्रम' विरुद अंकित नहीं है।

(२) द्वितीय चन्द्रगुप्त ने ध्वजधारी प्रकार का सिक्का तैयार नहीं किया था। वह प्रकार समुद्रगुप्त के बाद समाप्त हो गया। अतएव यह मानना उचित होगा कि प्रथम चन्द्रगुप्त ने इस प्रकार की मुद्रा निकाली थी।

(३) सम्भवतः प्रथम चन्द्रगुप्त ने कुमारदेवी की मृत्यु के पश्चात् इस प्रकार का सिक्का तैयार कराया हो। रानी की मृत्यु के पश्चात् उसे सिक्के पर अंकित करना जब निष्प्रयोजन हुआ तब नया प्रकार शुरू करना आवश्यक-सा हुआ।

(४) सभी गुप्त राजा वैष्णव थे, अतएव यह असम्भव नहीं कि प्रथम चन्द्रगुप्त ने भी परम-भागवत की उपाधि धारण की हो। समुद्रगुप्त के गया तथा नालंदा-लेख में उसको भी परमभागवत उपाधि दी गई है, इसलिए यह अधिक सम्भव है कि उसके पिता ने भी वैसा विरुद धारण किया हो [२]।

किंतु उपरिलिखित प्रमाण युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होते। पहले के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि द्वितीय चन्द्रगुप्त के सब प्रकार के सब सिक्कों पर पुरोभाग अथवा पृष्ठभाग पर विक्रम की उपाधि नहीं अंकित की गई है। धनुर्धारी प्रकार के एक उपप्रकार पर वह अविद्यमान है, देखिए पृ० ६६ फ० ५, ७; सिंह-निहन्ता में भी एक उपप्रकार है जिसके पृष्ठलेख में 'सिंह चन्द्र' है न कि सिंहविक्रम; देखिए पृ० ८२ फ० ६, ४-७।

दूसरे प्रमाण के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि द्वितीय चन्द्रगुप्त के पर्यङ्क पर राजा-रानी प्रकार में राजा के हाथ में दण्ड या ध्वज दिखाया गया है। अतएव यह नहीं कह सकते कि राजा ने सर्वथा ध्वजधारी प्रकार का त्याग कर दिया था।

तीसरे तथा चौथे प्रमाण यह सूचित कर सकते हैं कि इस सिक्के को प्रथम चन्द्रगुप्त ने निकाला होगा। सम्भव है कि प्रथम चन्द्रगुप्त भी वैष्णव हुए होंगे और इसलिए उन्होंने भी परमभागवत का विरुद धारण किया हो। ध्वजधारी प्रकार पिछले कुषाण समय से ही मुद्रा-शास्त्र की परम्परा में इतना प्रिय था कि समुद्रगुप्त के काल में इसे प्रधानता मिल गई। यदि मान लिया जाय कि कुमारदेवी चन्द्रगुप्त से पहले मर गई, तो यह सम्भव हो सकता है कि प्रथम चन्द्रगुप्त ने ध्वजधारी प्रकार के कुछ सिक्के तैयार कराये जो उस समय लोकप्रिय थे।

---

१. ज० न्यू० सो० इं०, १९४७ पृ० १४६ फ० ७, ३।

२. ज० न्यू० सो० इं०, भा० ११ पृ० १५।

अधिक ऐतिहासिक तथा मुद्रा शास्त्रीय प्रमाणों के मिलने पर ही यह समस्या सुलभ सकती है। वर्तमान परिस्थिति में इस मुद्रा को प्रथम चन्द्रगुप्त के बदले द्वितीय चन्द्रगुप्त का मानना उचित प्रतीत होता है। अभी तक कोई सबल प्रमाण नहीं मिलता है कि द्वितीय चन्द्रगुप्त से पहले किसी पूर्वपुरुष ने परमभागवत का विरुद धारण किया हो। गया तथा नालंदा के ताम्रपट्ट जालसाजी के हैं और यह भी अज्ञात नहीं है कि कपटी लोग कभी-कभी कैसे विरुद को एक राजा से दूसरे के सिर मढ़ देते हैं। प्रयाग की प्रशस्ति में समुद्रगुप्त परम भागवत नहीं कहा गया है। अभी तक यह भी प्रमाण नहीं मिला है कि कुमारदेवी की मृत्यु चन्द्रगुप्त से पहले हुई और तत्पश्चात् प्रथम चन्द्रगुप्त ने राजा-रानी प्रकार के सिक्के को त्याग दिया। द्वितीय चन्द्रगुप्त ने पर्यङ्क पर राजा-रानी प्रकार के सिक्के के पुरोभाग पर अपने को ध्वजधारी दिखाया है; अतः यह सम्भव है कि उसने कुछ समय के लिए ध्वजधारी सिक्का का संचलन किया हो, जो उसके पिता के समय में लोकप्रिय था। और, बाद में उसने उस प्रकार को त्याग दिया होगा।

ध्वजधारी प्रकार

(शक सामंत द्वारा प्रचलित[१])

१८६० में रॉजर्स ने स्मिथ को एक पीले सोने का सिक्का भेजा था, जिसका वर्णन निम्नलिखित रूप में दिया गया है—

पीलासोना, ११८.७५ ग्रेन, (आकार ज्ञात नहीं), अच्छी हालत में, १६ रुपया में खरीदा गया।

पुरोभाग—राजा बायें खड़ा, वेदी पर आहुति छोड़ रहा है, वेदी के ऊपर फीत युक्त त्रिशूल, राजा का हाथ ऊपर उठा, भाले के चारों तरफ मुड़ा, लेख लम्बवत्, हाथ के नीचे 'चन्द्र' भाले से बाहर 'गुप्त' लम्बवत्, इसमें 'प' स्पष्ट ; रॉजर्स उसे 'शक' पढ़ते हैं।

पृष्ठभाग--सिंहासन पर बैठी देवी, कॉर्नुकोपिया लिये, दुबला निर्बल शरीर, विना मुद्रालेख। दुर्भाग्यवश यह सिक्का प्रकाशित नहीं हो पाया है। समुद्रगुप्त के उस सिक्के की तरह यह मुद्रा है जिसका विवरण पृ० (फ० २,११) पर दिया जा चुका है। पंजाब के हरिपुर स्थान से रॉजर्स ने उसे खरीदा था। यह सिक्का पिछले कुषाणों के षाक या शीलद लेखवाले सिक्कों से भलीभाँति मिलता-जुलता है, इस प्रकार के सिक्के कनिंघम ने अपनी पुस्तक 'लेटर इंडोसिथियन' (पिछले इंडोसिथियन) फलक २ पर प्रकाशित किये हैं। यदि स्मिथ द्वारा सिक्के का वर्णन सही है तो कहा जा सकता है कि किसी पिछले कुषाण-सामंत ने अपने सम्राट् के नाम से इस सिक्के को तैयार

---

१. ज० रा० ए० सो० १८९३ पृ० १४५।
ज० न्यू० सो० इ० या ६ पृ० १४९-५०।

किया था, जो पंजाब में हरिपुर के समीप शासन करता था। यदि इस प्रकार का सिक्का सचमुच अस्तित्व में हो तो यह प्रकट होगा कि द्वितीय चन्द्रगुप्त ने पंजाब के सिथियन राजाओं पर प्रभावशाली शासन स्थापित किया था। उनमें से कुछ सम्राट् के नाम सिक्का भी तैयार किया करते थे, जैसा समुद्रगुप्त के शासनकाल में पाया जाता है।

किंतु इस सिक्के की तसवीर प्रकाशित नहीं हो पाई और उस पर के मुद्रालेख के बारे में रॉजर्स तथा स्मिथ में एकमत नहीं है। स्मिथ भाले के बाहर के अक्षरों को 'गुप्त' पढ़ते हैं यद्यपि वह 'प' के लिए संदेहात्मक ही हैं। रॉजर्स उन्हीं अक्षरों को 'शक' पढ़ते हैं। किंतु हाथ के नीचे दोनों ने 'चन्द्र' ही पढ़ा है। यह सम्भावना मानते हुए भी, कि इस प्रकार के सिक्के द्वितीय चन्द्रगुप्त के किसी कुषाण-सामंत ने निकाले होंगे, हमें यह भी भूलना नहीं है कि स्मिथ और रॉजर्स ने गलती से 'भद्र' को 'चन्द्र' पढ़ा होगा। वाचक फलक १.५ पर एक सिक्के का चित्र देखेंगे जिस पर राजा की बाँह के नीचे 'भद्र' लिखा है। इसमें 'द्र' के सर की लकीर उसके ऊपर खुदे हुए 'भ' अक्षर की निचले दो रेखाओं को मिलाती है जिससे वह 'च' सा दिखाई देता है। अतएव इस सिक्के पर 'भद्र' के बदले 'चन्द्र' पढ़ा जा सकता है। उसी सिक्के पर भाले के बाहर पढ़ने में एक अत्यन्त कठिन ब्राह्मी लेख है, जिसे कनिंघम ने 'शीलद' पढ़ा था; किन्तु 'ल' व 'द' ऐसे जुटे हैं कि निचला भाग 'प्त' के समान मालूम पड़ता है, जैसा स्मिथ ने सोचा था। ऊपरी अक्षर 'ष' तथा 'क' का संयुक्त से प्रकट होते हैं। यदि रॉजर्स के सिक्के में नीचे का अक्षर पूर्णतया सुरक्षित न होता, जो स्मिथ के इस कथन से स्पष्ट है कि वहाँ 'प' अक्षर का कुछ अवशेष दृग्गोचर होता है, तो यह समझना कठिन नहीं है कि रॉजर्स ने इसे 'षक' कैसे पढ़ा। हमारे विचार से रॉजर्स का अप्रकाशित सिक्का भद्र की मुद्रा है जिसका एक नमूना फलक १.५ पर दिखलाया गया है।

सिक्के का विवरण निम्नलिखित है—

सोना, ८" तौल अज्ञात, कॉ० ले० इं० सि० फ०, ३, १२

पुरोभाग— राजा कोट, पायजामा, ऊँचीटोपी पहने बायें खड़ा है, वेदी पर आहुति डाल रहा है। सामने त्रिशूल, बाँह के नीचे 'भद्र' किन्तु 'द्र', शिरोमात्रा 'भ' के निचले दोनों अंशों को स्पर्श करती है जिससे वह अक्षर 'च' के समान दिखाई देता है और लेख 'चंद्र' पढ़ा जा सकता है। भाले के बाहर शीलद, किन्तु अंतिम अक्षर 'प्त' के समान भी मालूम पड़ता है, जैसा स्मिथ ने पढ़ा था; ऊपरी अक्षर 'षक' के समान भी दीखते हैं जैसा रॉजर्स ने पढ़ा था।

पृष्ठभाग— सिंहासनारूढ़ देवी, लेख पढ़ा नहीं जा सकता है।

(ऋ) चक्रविक्रम प्रकार

बयाना-निधि में ऐसा एक ही सिक्का मिला है जिसका वर्णन निम्नलिखित है।

सोना ७५", ११६. ७ ग्रेन (घिसा), बयाना निधि, फ० १८,१४

पुरोभाग – भगवान विष्णु[१] दाहिने खड़े, चारों ओर घुटने तक दो प्रभामण्डल, दोनों आभा-किरणों से जुटे हैं; बाहरी प्रभामण्डल बिंदुभूषित मोतियों से घिरा हुआ है। देवता का शरीरोर्ध्वभाग तथा सिर अनावृत है। धोती, हार तथा कटक पहने, बगल में लटकनेवाले बायें हाथ में गदा है, दाहिने हाथ ऊपर उठाये हुए राजा को तीन गोल पदार्थ हथेली में लिये दे रहा है,राजा सामने खड़ा है जो प्रभामण्डलयुक्त है, सिर अनावृत है, कुण्डल, हार, पायजामा पहने है, जिसका घुमाव पैरों में दिखलाई पड़ता है। राजा दाहिना हाथ आगे कर रहा है ताकि उससे भगवान के प्रसाद को ग्रहण कर सके, उसका बायाँ हाथ तलवार की मूँठ पर रखा है। बायें लटकती तलवार एक कमरबंद में सटी है और नीचे लटक रही है।

पुरोभाग—मुद्रालेख अनुत्कीर्ण।

पृष्ठभाग— बिन्दु विभूषित सीमा में लक्ष्मी प्रभामण्डल-रहित, कमल पर तीन-चौथाई बायें खड़ी है, साड़ी, चादर तथा कुण्डल धारण किये, दाहिना हाथ मुड़ा हुआ, उँगली किसी वस्तु को संकेत करती, बायाँ हाथ नीचे लटका, कलीयुक्त लम्बे नाल के साथ कमल लिये,शंख दाहिनी ओर,नीचे ऊपर चिह्न दाहिने, लेख 'चक्रविक्रम' फ०९.८-९।

इस अद्वितीय सिक्के में राजा का नाम नहीं दिया गया है। किन्तु इसे विक्रम विरुद के आधार पर चन्द्रगुप्त से संबंधित करना सर्वथा उचित होगा। पृष्ठभाग के मुद्रालेख चक्रविक्रम में वह पाया जाता है। वह मुद्रालेख 'अजितविक्रम' अथवा 'सिंहविक्रम' के सदृश है जो इस राजा के अश्वारोही या सिंहनिहन्ता प्रकार में अंकित है। अतः यह अद्वितीय सिक्का भी चंद्रगुप्त का ही होगा।

द्वितीय चंद्रगुप्त विष्णुभक्त था जो उसके मुद्रालेखों में मिलनेवाले 'परमभागवत की उपाधि से स्पष्ट होता है। उसने दक्षिण-पूर्व पंजाब में व्यास नदी के किनारे विष्णुपद नामक तीर्थ में गरुड़ध्वज की स्थापना की थी[२]। इस सिक्के से प्रकट होता है कि वह विष्णु भगवान से भेंट ग्रहण कर रहा हो। पृष्ठभाग पर के विरुद में प्रायः राजा का वर्णन रहता है। 'चक्रविक्रम' का निश्चित अर्थ करना कठिन है, किंतु उसका यह आशय अभिप्रेत होगा कि राजा (सुदर्शन) चक्र के प्रसाद से या चक्रधारी विष्णु के प्रसाद से विक्रमी या विजयी हुआ। विष्णु का प्रसाद तीन गोल वस्तुओं-द्वारा अभिव्यक्त किया गया है। इससे त्रिजगती का स्वामित्व ध्वनित करना अभिप्रेत होगा या तीन शक्तियों का अस्तित्व—प्रभुशक्ति, मंत्रशक्ति और उत्साहशक्ति-बोधक है।

---

१ पुरोभाग का देवता चक्रपुरुष है विष्णु नहीं—यह मत ज० न्यू० सो० इं० भा० १३, पृ० १८ पर श्री शिवराम मूर्ति ने उपस्थापित किया है। उनके प्रमाण ठोस नहीं प्रतीत होते हैं।

२ मेहरौली स्तम्भ लेख—कॉ० इ० इ० भा० ३ पृ० १४१, प्रायः अभी सब विद्वान् मानते हैं कि इस लेखमें उल्लिखित चन्द्रगुप्त सम्राट् द्वितीय चन्द्रगुप्त है।

द्वितीय चन्द्रगुप्त के सिक्कों के प्रकारों के तिथि-क्रम का निश्चय करना कठिन है। धनुर्धारी प्रकार (प्रथम वर्ग), ध्वजधारी प्रकार तथा पर्यङ्क प्रकार सम्भवतः राज्य के पूर्व काल में तैयार किये गये थे, जैसा कि उनके पृष्ठभाग की शैली से सूचित हो जाता है। वहाँ देवी सिंहासन पर बैठी हैं, कमल पर नहीं। उसके बाद छत्रप्रकार—जिस पर समुद्रगुप्त के वीणा-प्रकार की पृष्ठशैली नकल की गई है। धनुर्धारी प्रकार (द्वितीय वर्ग) सिंहनिहन्ता तथा अश्वारोही प्रकार शासन के आरंभ से अंत तक निकलते रहे। पर्यङ्क पर आसीन राजारानी प्रकार एक ही सिक्के से ज्ञात हुआ है। उसकी हलकी तौल तथा पर्यङ्क प्रकार से समता बतलाती है कि शासन के आरम्भिक काल में ये तैयार किये गये होंगे। चक्रविक्रम प्रकार का भी एक ही सिक्का मिला है। संभवतः वह शासन के अंतिम काल में निकाला होगा।

द्वितीय चंद्रगुप्त के प्राय सभी सिक्के अच्छी बनावट के हैं और उनमें उच्च प्रकार का कलाकौशल प्रकट होता है। सिंह से लड़ते समय राजा का शौर्य और आत्मविश्वास बड़ी सफलता से दिखाया गया है। उसके शरीर की मांसपेशियों का सौंदर्य अच्छी तरह दर्शाया गया है। लक्ष्मी की आकृति प्रायः सुन्दर दीखती है। कलाकारों की विविधता और विचित्रता का प्रेम अमर्यादित था। धनुर्धारी, सिंहनिहंता और अश्वारोही प्रकार तथा उनके उप-प्रकारों का जो वर्णन ऊपर किया गया है उससे इस विधान की यथार्थता प्रतीत होगी। द्वितीय चंद्रगुप्त के जो सर्वोत्तम सिक्के हैं वे प्राचीन भारतीय सिक्कों में भी सर्वोत्तम हैं।

सातवाँ अध्याय

द्वितीय चन्द्रगुप्त की रजत मुद्राएँ

प्राचीन भारत में प्रत्येक प्रांत या भूभाग के विशिष्ट प्रकार और धातु के सिक्के रहते थे। जिस प्रांत में सोने, चाँदी तथा ताम्बे के सिक्के चलते रहे उस प्रांत के नये विजेता को उसी धातु का सिक्का तैयार करना पड़ता था। जब द्वितीय चन्द्रगुप्त ने मालवा, गुजरात तथा काठियाबाड़ को जीत लिया तब उसने देखा कि उसकी प्रजा चाँदी के अर्द्ध द्रम सिक्के का प्रयोग करती थी। अतएव पश्चिमी भारत में उसे उसी तरह के चाँदी के लोकप्रिय सिक्कों को प्रचलित करना पड़ा, जैसा वहाँ क्षत्रप शासक प्रयोग करते रहे। द्वितीय चन्द्रगुप्त द्वारा मालवा गुजरात तथा काठियाबाड़ की विजय-तिथि ठीक-ठीक ज्ञात नहीं, किंतु वह सम्भवतः उसके शासन के अंतिम समय में हुई होगी। अतः उनके चाँदी के सिक्के भी शासन की अंतिम अवधि में तैयार किये गये होंगे। उनके चाँदी के सिक्के कम संख्या में मिलते हैं तथा उन पर लिखित तिथि गु० स० ९० यानी ई० स० ४०६ है। चन्द्रगुप्त के चाँदी के सिक्के पश्चिमी भारत में ही मिलते हैं, अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि अन्य प्रांतों में ऐसे सिक्कों के प्रचलन करने का विचर न था। बिहारराज्य के सुल्तानगंज में उसका एक चाँदी का सिक्का मिला है जो रुद्रसिंह[1] के चाँदी के सिक्कों के साथ पाया गया है। सम्भव है कि उस प्रदेश को जीतने के पश्चात् कोई बिहारी सैनिक या सेनापति उनको अपने साथ मालवा, गुजरात से लौटते समय, अपनी विजय-यात्रा की स्मृति में लाया हो। अयोध्या में कनिंघम को जो चन्द्रगुप्त का चाँदी का सिक्का मिला था, वह भी उसी तरह उत्तरप्रदेश में लाया गया होगा।

चन्द्रगुप्त के चाँदी के सिक्के (फ० १६ ३-६) स्वभावतः पश्चिमी भारत में प्रचलित क्षत्रप सिक्कों के पूर्ण अनुकरण करते हैं। तुलना के लिए दो क्षत्रप सिक्के फ० १६, १-२ पर दिये गये हैं। चन्द्रगुप्त के सिक्कों का आकार .५"से.५५" तक है तथा उनकी तौल २६.५से ३१ ग्रेन तक है। क्षत्रप सिक्कों में भी ये ही प्रमाण पाये जाते हैं। पुरोभाग पर राजा की आकृति क्षत्रप शैली पर बनाई गई है जिसके गले में कॉलर या कपड़े की पट्टी, उन्नत नासिका तथा लम्बे बाल और मूँछें दिखलाई पड़ती हैं। गुप्त मुद्राओं पर भी कहीं-कहीं यूनानी अक्षरों के अवशेष दृष्टि-

---

१, कनिं० आर० सर्वे रिपोर्ट भा० १० पृ०१२७; ज० रा० ए० सो० १८८९ पृ० १२२।
२. कनिं० मि० इंडिया पृ० २०।

गोचर होते हैं (फ० १६,६)। जहाँ तक सिक्कों की तिथि का प्रश्न है वह सिर के पीछे अंकित की गई है[१], किंतु वर्ष-गणना शक-सम्वत् की अपेक्षा गुप्त-सम्वत् में की गई है।

पृष्ठभाग में ऊपर अर्द्धचन्द्र तथा बिन्दु-समूह तथा नीचे पानी की लहर के सदृश लकीर ज्यों-की-त्यों बनी है। किन्तु तीन मेहराववाले चैत्य के स्थान पर गरुड़ रखा गया है, जो गुप्त साम्राज्य का राजचिह्न था। टामस तथा स्मिथ कुछ विद्वान इस पक्षी को मोर समझते हैं। किन्तु वह धारणा गलत है। पक्षी का आकार सुवर्ण तथा ताम्र-मुद्राओं पर अंकित गरुड़ से मिलता-जुलता है (फ० १६,६-१०); पश्चिमी भारत में चंद्रगुप्त से लेकर स्कन्दगुप्त तक एक वर्ग के चाँदी के सिक्कों पर गरुड़ की ही आकृति[२] सदा रही है।

गरुड़ संपूर्ण पक्षिरूप में है। इसमें मनुष्य के चेहरे के साथ गरुड़ का शरीर नहीं है, जो द्वितीय चन्द्रगुप्त के ताम्बे के सिक्कों पर मिलता है। पक्षी के पंख फैलाने के कारण पूँछ छिप गई है। पृष्ठभाग पर एक वर्तुलाकार लेख है जैसा क्षत्रप सिक्कों पर मिलता है। इसमें पराजित राजा का मुद्रालेख हटा कर विजेता ने अपने मुद्रालेख में अपना नाम और उपाधि एवं अपने कुल का नाम तथा धार्मिक संप्रदाय को उद्घोषित किया है।

प्रिन्सेप ने एक चाँदी की मुद्रा के रेखाचित्र का उल्लेख किया है, जिसे जौनपुर के त्रिगर महोदय ने भेजा था। उसमें एक ओर राजा का सिर बना था तथा दूसरी ओर पंख फैलाये पक्षी का चित्र था और नीचे स्पष्ट लेख खुदा था, जिसमें चन्द्रगुप्त पढ़ा गया है[३] स्मिथ का अनुमान ठीक है कि प्रिन्सेप जिसे भ्रमवश चाँदी का सिक्का कहते हैं वह सम्भवतः ताम्बा का था[४]। प्रिन्सेप का इस सिक्के का वर्णन ब्रि० म्यू० कै० फ० ११, ११-१४ पर प्रकाशित ताम्बे के सिक्कों से मिलता है जो इस पुस्तक (फ०१६,१५-१७) में पुनः प्रकाशित किया गया है। यह सम्भव नहीं है कि चन्द्रगुप्त ने इस तीसरे उपप्रकार का कोई ताम्बे का सिक्का चलाया हो।

द्वितीय चन्द्रगुप्त के सिक्के दो वर्गों में विभक्त किये गये हैं। पहले वर्ग में मुद्रालेख विक्रमादित्य से समाप्त होता है और धार्मिक संप्रदाय का उल्लेख करता है। उसमें राजा के कुल का नाम नहीं है। मुद्रालेख है 'परमभागवतमहाराजधिराजश्रीचन्द्रगुप्तविक्रमादित्यः' (चन्द्रगुप्त, विक्रमादित्य राजाओं का राजा तथा विष्णु का परमभक्त)—यह लेख अश्वारोही प्रकार के सिक्कों पर के लेख के समान है। उसमें केवल इसके अंतिम विरुद का अभाव है। दूसरे वर्ग में लेख विक्रमांक से अंत होता है। उसमें राजकुल का नाम है; पर राजा के संप्रदाय का उल्लेख नहीं है—'श्री गुप्तकुलस्य महाराजधिराजश्रीचन्द्रगुप्तविक्रमांकस्य' 'गुप्तवंश के

१. स्मिथ तथा फ्लीट को संदेह है कि इस तरह के सिक्कों पर तिथि नहीं है।—ज० रॉ० ए० सो० १८८९ पृ० १२२-३; इं० ए० १८८५ पृ० ६६। किंतु फ० १६, ३ पर तिथि ९० स्पष्ट है।

२. ज० रॉ० ए० सो० १८८९, पृ० १२० फ० १६,३ पर पढ़ा जाता है।

३. प्रिंसेप एसेज, भा० १ पृ० २८१।

४. ज० रॉ० ए० सो०१८९३ पृ० १३२।

सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमांक की मुद्रा' । यह कहना कठिन है कि दोनों में कौन सिक्के पहले के हैं । दोनों एक साथ ही तैयार किये गये हों । संभव है, उनमें एक गुजरात तथा दूसरा कठियावाड़ के टकसाल में बनाया गया हो । दोनों वर्गों के सिक्के दुष्प्राप्य हैं ।

नीचे सिक्कों का वर्णन दिया जाता है । पहले रुद्रसेन (राज्यकाल ३४८-३७८) के दो सिक्कों का वर्णन दिया जायगा, ताकि जिस नमूने का अनुकरण गुप्तों ने किया था, उसका मूलस्वरूप वाचकों को परिचित हो ।

तृतीय रुद्रसेन के सिक्के

(१) चाँदी, ६",३१.६ ग्रेन, ब्रि.म्यू. कै. आ. त्त, फ० १७, ८४१

पुरोभाग– राजा का ऊर्ध्व चित्र दाहिनी ओर,गर्दन की कॉलर अस्पष्ट, समूह में बाल मानपर लटकरहे हैं, ऊपरी ओठ पर मूँछ, राजा के सम्मुख यूनानी अक्षरों के अस्पष्ट अवशेष, तिथि चेहरे से पीछे, २००, ८०, २ (=२८२)।

पृष्ठभाग—तीन मेहराव का पर्वत; लहराकार टेढ़ी लकीर नीचे, बाईं ओर अर्द्धचन्द्र, दाहिने बिन्दुसमूह, वर्तुलाकार मुद्रालेख चार बजे आरम्भ, 'राज्ञो महाक्षत्रपस्वामि रुद्रदामपुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपस स्वामिरुद्रसेनस' । (फ०·१६ १) ।

(२) चाँदी, .५५",३३.१ ग्रेन; वही, फ० १७. ८४५

पुरोभाग—पूर्ववत्, गले की कॉलर स्पष्ट, यूनानी अक्षरों के बहुत थोड़े अवशेष, तिथि २००, ८०, ३ (=२८३)

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, लेख ज्यादातर अस्पष्ट (फ· १६, २) ।

द्वितीय चन्द्रगुप्त के चाँदी सिक्के

पहला वर्ग[१]

[लेख 'परमभागवत' से प्रारंभ]

(१) चाँदी; ६", ३१ ग्रेन, ब्रि. म्यू० के० गु. डा, फ०६, १५

पुरोभाग–दाहिने राजा का अर्धचित्र, गर्दन पर लम्बे बाल लटक रहे हैं, सिर के पीछे तिथि, व[र्षे] ९० ।

पृष्ठभाग—मध्य में गरुड़ पंख फैलाये, दाहिने ऊपर सातबिन्दुओं का समूह, वर्तुलाकार मुद्रालेख तीन बजे आरम्भ, 'परम (भागवत महा) राजाधिराज श्रीचन्द्र[२] गुप्त विक्रमादित्य', कोष्ट के अक्षर अस्पष्ट हैं । 'गु' अक्षर में बायें का हिस्सा गायब । (फ० १६,३) ।

---

१. ब्रि० म्यू० कॅ० गु० डा० फ० १०, १५-२०, ज० रा० ए० सो० १८८९ फ० ४,१; क० आ० स० रि० ९, पृ० २५ तथा फ० ५,२-३; कॉ० मी० इं० फ० २,९

२. 'न्द्र' अक्षर ठीक ढंग से खुदा नहीं हैं, वह'क्र'मालूम पड़ता है, अतः यूटन से,जिसने इस सिक्के को पहले-पहल प्रकाशित किया था, राजा का नाम वक्रगुप्त पढ़ा गया था;ज० बॉ० ब्रॅ० रॉ० ए० सो० भा० ७ ।

(४) चाँदी, ५", २६ ग्रेन, ब्रि० म्यू० के० गु. डा, फ० १०, २०

पुरोभाग—पूर्ववत्, मूँछ पूरे तौर से प्रकट, कॉलर स्पष्ट, चेहरे के सामने यूनानी अक्षरों के अवशेष विद्यमान।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, लेख स्पष्ट, नव बजे से तीन बजे तक, 'धराज श्री चन्द्रगुप्त विक्र' (फ० १६,४)।

(५) चाँदी, '५५", ३० ग्रेन, ब्रि० म्यू० के० गु० डा०, फ० १०, ७

पुरोभाग—पूर्ववत्, ललाट तथा नाक सीमा से बाहर, सिर से पीछे 'व[१] अक्षर, वर्ष के लिए।

पृष्ठभाग—तीन बजे लेख-'परम'— पाँच बजे से 'हराजाधराजश्रीचन्द्रगुप्तविक्रमादित्य (फ० १६,५)।

(६) चाँदी, .६", तौल अज्ञात, कॉ० मी० इ०, फ० २,६

पुरोभाग—पूर्ववत्, राजा के चेहरे के सम्मुख यूनानी अक्षर, गले की कॉलर तथा मूँछ स्पष्ट।

पृष्ठभाग—नव बजे से तीन बजे तक लेख स्पष्ट, 'जधराज श्री चन्द्रगुप्त वक्र' (फ० १६,६)।

दूसरा वर्ग[१]

(लेख 'गुप्तकुलस्य' से आरम्भ)

(७) चाँदी, .५", ३०-८ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कै० गु० डा, फ० ६,२१

पुरोभाग—पूर्ववत्, पहले वर्ग के समान।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, लेख अधूरा व अस्पष्ट; 'श्री गुप्तकुलस्य महाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्त-विक्रमांकस्य'[२] (फ० १६,७)।

(आ) द्वितीय चन्द्रगुप्त की ताम्रमुद्राएँ

गुप्त सम्राटों में द्वितीय चन्द्रगुप्त के विषय में ही शायद यह कहा जा सकता है कि उसने ताम्बे के सिक्कों का नियमित प्रचलन किया। कुमारगुप्त के केवल आधे दर्जन ताम्बे के सिक्के मिलते हैं और अन्य राजाओं के सिक्के मिलते ही नहीं हैं[३]। हरिगुप्त का नाम एक सिक्के पर पढ़ा गया है; किन्तु वह संभवतः गुप्तवंश का शासक नहीं था।

---

१. ब्रि० म्यू० कै० फ० ९,२१, क० अ० स० रि० भा० ९ पृ० २३ फ० ५,१; इस वर्ग के अच्छे सिक्के अप्रकाशित नहीं हुए है। दोनों मुद्राओं के लेख चित्र में पढ़े नहीं जा सकते। डॉ० हॉय के संग्रह के सुन्दर सिक्के प्रकाशित नहीं किये गये हैं।

२. पहले के लेखकों ने इस अक्षर को 'कें' पढ़ा है किन्तु अधिक सम्भावना 'ङ्क' की है। ये दोनों संयुक्ताक्षर इसकाल में समान थे; जितने सिक्के छपे हैं उन सबका चित्र धुँधला है जिसमें मुद्रालेख को ठीक करना कठिन है।

३. समुद्रगुप्त के तथाकथित तांबे के सिक्के के बारे में पृ० २८ देखिए।

ताम्बे के सिक्कों की दुर्लभता स्पष्टतया बतलाती है कि दैनिक साधारण आर्थिक कार्य अदल-बदल (barter) से अथवा कौड़ियों-द्वारा किये जाते थे। चीनी यात्री फाहियान ने लिखा है कि पाटलिपुत्र के बाजार में उसे कौड़ियाँ दिखलाई पड़ीं, जब कभी वह वहाँ गया। गुप्तयुग में सन् १६३० के मुकाबले में चीजों की दर सातगुनी सस्ती थी, जब कि १६३० में संसार में चीजों का दाम एकाएक गिर गया था। साधारणतया गुप्तस्वर्ण-मुद्रा तौल में ²/₃ तोला होती थी, जिसका मूल्य दो सौ रुपये नोट के समान था, जब कि क्रयमूल्य पर हम विचार करते हैं। यही कारण था कि प्रतिदिन के व्यवहार में स्वर्णमुद्रा को स्थान नहीं था।

ईसवी सन् से दो सौ वर्ष पहले से दो सौ वर्ष बाद तक पंजाब की रियासतों में ताम्बे के सिक्कों की बहुलता थी। बिहार में ताम्बे के सिक्कों का कोई प्रचलन न रहा; जब गुप्तशासकों ने राज्य करना आरम्भ किया था। द्वितीय चन्द्रगुप्त ने ताम्बे के सिक्के निकालना शुरू किया; किन्तु इसमें संदेह नहीं कि विस्तीर्ण गुप्त साम्राज्य को जिस संख्या में वे आवश्यक थे, उस संख्या में उसने उन्हें नहीं निकाला। उसके ताम्बे के सिक्के सोने से भी दुष्प्राप्य हैं। मालूम पड़ता है कि वे लोगों की आवश्यकता पूरी करने के लिए नहीं, किन्तु मुद्राशास्त्रीय प्रयोग के लिए बनाये गये थे। तौल के हिसाब से हम उन्हें पण, अर्धपण, पादपण, काकिणी ऐसा भी वर्गीकरण नहीं कर सकते। उनका तौलमान किसी प्रमाण के अनुसार निश्चित नहीं किया गया है। अब द्वितीय चन्द्रगुप्त के ताम्बे के विभिन्न सिक्कों का वर्णन किया जायगा। पहले प्रत्येक प्रकार अथवा उपप्रकार का वर्णन कर पीछे तत्सम्बन्धी कुछ विचार रखे जायँगे।

ताम्बे के सिक्के

छत्रधारी प्रकार

पहला उप-प्रकार[१]

[गरुड़ मनुष्य के हाथ युक्त]

(१) ताम्बा, .८५″, ५७.५ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कै०, फ० ११,२

पुरोभाग—राजा बायें खड़ा[२], नंगे सिर, पीछे बावन राज्यछत्र लिये खड़ा है, छत्र के फीते का एक सिरा आसमान में उड़ रहा है, नौकर की आकृति अस्पष्ट किन्तु राजा का चित्र सुन्दर।

पृष्ठभाग—ऊपरी हिस्से में गरुड़ की आकृति जिसमें मनुष्य का चेहरा तथा हाथ है। शरीर पक्षी का तथा उसके पंख फैले हुए, सामने देख रहा है, दोनों हाथों में भुजबंध, नीचे

---

१. ब्रि० म्यू० कॅ० गु० डा० फ० ११,२-३; ज० रा० ए० सो० १८८९ पृ० १३९ फ० ४,९।

२. यह सुझाव रखा गया है कि राजा वेदी पर आहुति दे रहा है जैसा सोने के सिक्कों पर मिलता है। [ब्रि० म्यू० कॅ० ज० डा० प० ५२]; किन्तु उसका दाहिना हाथ ऊपर उठा है; अतएव उपरियुक्त विचार ठीक नहीं है।

के आधे भाग में मुद्रालेख, 'महाराजश्रीचन्द्रगुप्तः', कुछ अस्पष्ट (फ० १६,८)।

(२) ताम्बा, .८५'',५७.५ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कॅ० गु० डा०, फ० ११,३

पुरोभाग—नौकर, मुद्रा सीमा से बाहर, राजा की भद्दी आकृति, मुद्रालेख 'महाराज-श्रीचन्द्रगुप्त'।

पृष्ठभाग—लेख अस्पष्ट (फ० १६,६)।

दूसरा उपप्रकार[1]

(गरुड़ मनुष्य हाथ हीन)

(३) ताम्बा, .७५'', ६४-४ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कै० गु० डा०, फ० ११,४

पुरोभाग—पूर्ववत्, नौकर सिक्का पर दृश्यमान।

पृष्ठभाग -गरुड़ को चिड़िया के पैर और पंख हैं। लेख वही, 'हरज चन्द्र' दिखलाई पड़ता है। (फ० १६, १०)।

इस तरह के चार सिक्के मिले हैं। उनमें से एक पानीपत के बाजार में खरीदा गया था, दूसरा जौनपुर में मिला था। उन चारों की तौल क्रमशः १०१, ७५, ६४ तथा ४७ ग्रेन हैं। यह सम्भव है कि इस प्रकार में पूर्ण मुद्रा की तौल ५६ रत्तियाँ या १०० ग्रेन था।

खड़ा राजा प्रकार

(४) ताम्बा, .६५'', ५३.७ ग्रेन, ब्रि० म्यू कै० गु० डा०, फ० ११, ७

पुरोभाग—राजा पूर्ववत् खड़ा है, पीछे नौकर नहीं हैं।

पृष्ठभाग—गरुड़ पूर्ण पक्षिरूप में, मुद्रालेख 'श्रीचन्द्रगुप्तः' कुछ अस्पष्ट (फ० १६, ११)।

सिक्कों के छोटे होने के कारण राजा का पैर दिखलाई नहीं पड़ता। महाराजा का बिरुद हटा देने से लेख भी छोटा हो गया है। सिक्कों का आकार .५'' से .६५'' तक है। इस तरह के सतरह सिक्के प्राप्त हुए हैं, जिनमें कुछ तो अत्यन्त खराब हैं। सिक्कों की इतनी विभिन्न तौल है तथा उनमें कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं है, अतएव उनको पण, अर्धपण इत्यादि संज्ञा देना कठिन हो जाता है। सम्भवतः १८ से २५ ग्रेन तक के सिक्कों का एक नामकरण हुआ था, तथा ४४ से ५४ ग्रेन तौल की दूसरी संज्ञा दी गई थी।

धनुर्धारी प्रकार

(५) ताम्बा, .८'', ८४.३ ग्रेन, १६३३ ज० ए० सो-बं० १६३३ पृ० १२

पुरोभाग—राजा प्रभामण्डल के साथ, बायें खड़ा है, बायें हाथ में धनुष तथा दाहिने में बाण; बायें हाथ के नीचे 'चन्द्र'।

पृष्ठभाग—कमल पर बैठी लक्ष्मी, दाहिने हाथ में पाश, घुटने पर अवलम्बित बायें में कमल, लेख 'श्रीविक्रमः' दाहिनी ओर (फ० १६, १२)।

१, ब्रि० म्यू० कॅ० फ० ११,५-९।

इस तरह का एक सिक्का मिला है। यह द्वितीय चन्द्रगुप्त के धनुर्धारी प्रकार वर्ग दो से मिलता है (फ० ४, १३-१४)। स्वर्णमुद्रा के टप्पे पर ताम्बा रखकर शायद गलती से या कुतूहल से यह सिक्का तैयार किया गया होगा। वह राजगिर में मिला है।

अर्धचित्र प्रकार

पहला उपप्रकार

[बड़ा आकार]

(६) ताम्बा, .९", ८७ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कै०, फ० १०, २२

पुरोभाग—राजा का अर्द्धचित्र, हार, कुण्डल, भुजबंध पहने, दाहिने हाथ में फूल।

पृष्ठभाग—ऊपरी भाग में गरुड़, प्रभामंडलसहित, सामने पंख फैलाये, नीचे सम्भवतः—'महाराज चन्द्रगुप्तः', किन्तु अत्यन्त अस्पष्ट (फ० १६,१३)।

अहिच्छत्र में इस उपप्रकार का एक सिक्का मिला था, दूसरा झेलम जिले में; उसके पुरोभाग पर हुविष्क की स्वर्णमुद्रा का अनुकरण है जहाँ पर राजा का अर्द्धचित्र के साथ हाथ में नाज की बाली है। कनिंघम का अनुमान था कि पुरोभाग पर स्त्री की आकृति है; किन्तु यह माना नहीं जा सकता। ताम्बे के सिक्के अधिक स्थानान्तर नहीं होते। इसलिए इस और अगले उपप्रकारों के सिक्कों के प्राप्तिस्थान पर विचार करने से यह अनुमान संभवनीय मालूम पड़ता है कि दक्षिणपूर्व पंजाब चन्द्रगुप्त के साम्राज्य में सम्मिलित रहा होगा।

दूसरा उपप्रकार

[छोटा आकार]

(७) ताम्बा, .७५"४४ ग्रेन; ब्रि० म्यू० कै० गु० डा०, फ० ११, १०

पुरोभाग—पहले वर्ग की तरह, राजा का अर्धचित्र सिक्के के ऊपरी भाग में, लेख–श्रीविक्रमादित्य' नीचे लिखा है। इस सिक्के पर अंतिम अक्षर अदृश्य।

पृष्ठभाग—ऊपरीभाग में गरुड़, नीचे आधे भाग में 'श्रीचन्द्रगुप्तः'; केवल पहले दो अक्षर स्पष्ट हैं (फ० १६, १४)।

इस प्रकार के तीन सिक्के मिले हैं। उनमें से दो की तौल क्रमशः ४०.५ तथा ४४ ग्रेन ज्ञात है। तीनों में से दो सिक्के स्टेसी तथा स्विने के संग्रह में थे; अतः पंजाब से वे पाये गये होंगे।

स्टेसी-संग्रह के सिक्के की आकृति में वक्षस्थल उन्नत दिखलाई पड़ता है। इस कारण थॉमस ने इसे स्त्री की आकृति बतलाई है। किन्तु मुद्राओं के पुराभाग पर प्रायः राजा का चित्र अंकित होता है। इसलिए यह मानना ही उचित होगा कि इस पुरोभाग पर भी राजा का चित्र है।

---

१. ब्रि० म्यू० कॅ० फ० १०, २२; ज० ए० सो० बं० १८९४ पृ० १७३ फ० ६, ११; कॉ० मी० इं० पृ० १३ फ० २, ८।

तीसरा उपप्रकार

[पुरोभाग पर लेख अनुत्कीर्ण]

(८) ताम्बा, ६,"४६०.५ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कॅ०, फ० ११, ११

पुरोभाग—राजा का अर्द्धचित्र, लेख अनुत्कीर्ण।

पृष्ठभाग—गरुड़ पूर्ववत्, वेदी पर खड़ा तथा मुँह में सर्प लिये। बिंदुविभूषित वर्तुल। (फ०१६, १५)।

चौथा उपप्रकार[२]

[वेदी विरहित गरुड़]

(६) ताम्बा, .६५", २७ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कॅ०, फ० ११, १२

पुरोभाग—पूर्ववत्।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, गरुड़ के नीचे वेदी नहीं (फ० १६, १६)।

पाँचवाँ उपप्रकार

[राजा पुष्प-रहित]

(१०) ताम्बा, .५५",२८ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कॅ०, फ० ११, १४

पुरोभाग—पूर्ववत्, हाथ में फूल नहीं।

पृष्ठभाग—गरुड़ अस्पष्ट, नीचे 'चन्द्रगुप्त' (फ० १६, १७)।

द्वितीय चन्द्रगुप्त के ताम्बे सिक्कों में यह अधिक मिलता है। छोटे सिक्कों पर केवल सिर है, अर्द्धचित्र नहीं। तौल तथा आकार विभिन्न हैं; .३५" से .५५"तक तथा ४.२ से २८ ग्रेन तक। ये सिक्के अधिक घिसे हैं और उनकी तौल इतनी विभिन्न है कि उनकी संज्ञाएँ निश्चित करना कठिन है।

पाँचवा वर्ग

[चक्र प्रकार]

(११) ताम्बा, .४",८.४ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कॅ० गु-डा०, फ० ११, २०

पुरोभाग—ऊपरी आधे में चक्र या पहिया, निचले आधे में 'चन्द्र' अस्पस्ट।

पृष्ठभाग—ऊपर गरुड़ नीचे; 'गुप्त' (फ०१६, १८)।

इस तरह के सिक्के दुष्प्राप्य हैं। श्री ॲलन ने कहा है कि इस प्रकार के पुरोभाग पर दो पंक्तियों का लेख है (पृ० ३८); किन्तु जिसे वह 'श्री' समझते हैं वह चक्र है जो ब्रिटिश संग्रहालय के सिक्के पर भली-भाँति दिखलाई पड़ता है। फ० १६, १८ पर उसका ही फोटो प्रकाशित किया है।

---

१. ब्रि० म्यू० कॅ० गु० डा० फ० ११, ११; ज० रा० ए० सो० १८८९ पृ० १४०, फ० ४, १३।

२. वही फ० ११, १२ प्रि० ए० फ० २०, १५।

३. ब्रि० म्यू० कॅ० गु० डा० फ० ११, १३–१९; ज० रा० ए० सो० १८९ पृ० १४१ फ० ४, १४।

कलश प्रकार[1]

(१२) ताम्बा, .४", १२. १ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कॅ०, फ० ११, २२

पुरोभाग—बिंदुविभूषित वर्तुल में अर्द्धचन्द्र के नीचे 'चन्द्र'।

पृष्ठभाग—बिंदुविभूषित वर्तुल में कलश, जिसके किनारे से फूल लटक रहा है (फ० १६, १६)।

इस प्रकार के सिक्के अत्यन्त छोटे होते हैं। कभी-कभी उनकी तौल दस ग्रेन से नीचे होती है। एक तो ३.३ ग्रेन तौल में मिला है। यह प्रकार चन्द्रगुप्त के और सिक्कों से विभिन्न है। इसलिए स्मिथ ने सोचा कि इसे मेहरौली लेखवाले 'चन्द्र' ने तैयार कराया था[2]। किन्तु यह मत ग्राह्य नहीं होगा। ये सिक्के द्वितीय चन्द्रगुप्त के ही मालूम पड़ते हैं। उसने उनको मालवों के सिक्के के अनुकरण में बनाया होगा, जिसमें लेख तथा ऐसा ही कलश विद्यमान है[3]। सम्भवतः मालवा-विजय के पश्चात् ये सिक्के तैयार किये गये होंगे और वहीं ये प्रचलित भी होंगे। इनके प्राप्ति-स्थान अज्ञात होने के कारण इन पर कोई मत स्थिर नहीं किया जा सकता।

(इ) रामगुप्त की ताम्रमुद्राएँ

साहित्यिक आधार पर यह माना गया है कि द्वितीय चन्द्रगुप्त के ज्येष्ठ भ्राता का नाम रामगुप्त था, जो इससे पूर्व थोड़े समय तक राज्य करता रहा[4]। इस राजा का नाम गुप्त प्रशस्तियों में उल्लिखित नहीं मिलता और न इसकी स्वर्णमुद्राएँ मिली हैं। इसलिए कुछ विद्वान् उसकी ऐतिहासिक स्थिति पर ही संदेह करते हैं[5]। किंतु हाल ही में छ[6] छोटे ताम्बे के सिक्के मालवा में मिले हैं, जिनपर स्पष्ट तौर पर राम या रामगुप्त लिखा है। इनमें से दो सिक्के श्री प० ला० गुप्त ने मालवा में खरीदे थे और चार श्री अडवाणी के संग्रह में हैं जो मालवा में इकट्ठे किये गये हैं। यह सम्भव है कि द्वितीय चन्द्रगुप्त के बड़े भ्राता रामगुप्त के ये सिक्के हों। इनका वर्णन निम्न लिखित है।

(१) ताम्बा, .४५," ३१.३ ग्रेन, ज० न्यू० सो० इ०, भा .१२ पृ० १०३

पुरोभाग—जानवर (सिंह) अस्पष्ट।

पृष्ठभाग— अर्द्धचन्द्र ऊपर, लेख के नीचे दो तिहाई भाग पर विस्तृत 'रामगुप्त', पहले के दो अक्षर फलक में साफ हैं, शेष दो अक्षर मूल सिक्के में स्पष्ट नहीं, न फोटो में (फ० १६, २०)।

---

१. ब्रि० म्यू० कॅ० गु० डा० फ० ११, २१-२६, ज० रॉ० ए० सो० १८८९ पृ० १४३ फ० ४, ६।

२. ज० रॉ० ए० सो० १८८९ पृ० ११४४।

३. इ० म्यू० कॅ० फ० २० १५।

४. ज० बि० रि० सो० १४ पृ० २२३।

५. रायचौधरी पो० हि० ए० इं, चौथा संस्करण, पृ० ४३५।

६. ज० न्यू० सो० इं० १२ पृ० १०३-४; १३, पृ० १२७।

(२) ताम्बा, अण्डाकार, .३×८;१८.७ ग्रेन; वही
पुरोभाग—जानवर अस्पष्ट।
पृष्ठभाग—लेख निचले आधे भाग में ,'राम (गुप्त)' (फ० १६, २२)।

श्री गुप्त के दोनों सिक्कों की अनेक विद्वानों ने परीक्षा की है, जब १६५० में नागपुर में मुद्रा-शास्त्र संबंधी सभा हुई थी। सबने एक स्वर से कहा था कि लेख 'रामगुप्त' स्पष्ट है। श्री अडवानी के संग्रह के सिक्कों पर भी रामगुप्त पाठ स्पष्ट है। गुप्त निधियों में बयाना निधि में भी रामगुप्त का एक भी सोने का सिक्का नहीं मिला है, जहाँ प्रथम चन्द्रगुप्त से लेकर स्कन्दगुप्त की स्वर्णमुद्राएँ मिली हैं। इसलिए यह कहा जा सकता है कि रामगुप्त मालवे का सामंत रहा होगा। यह ज्ञात है कि द्वितीय चन्द्रगुप्त से पूर्व ताम्बे के सिक्कों का प्रचलन नहीं था। तो क्या यह सम्भव है कि रामगुप्त ने ताम्बे के सिक्के तैयार करने का कष्ट उठाया हो ?

यह तो प्रमाणित किया गया है कि भारत में स्थानीय सिक्के ही प्रचलित रहे। द्वितीय चन्द्रगुप्त ने बाध्य होकर मालवा के लिए चाँदी का सिक्का निकाला। उसी तरह से यह भी सम्भव है कि जब समुद्र ने मालवा को जीता हो, तब उसने ताम्बे के सिक्के निकाले हों, जो प्रचलित नाग सिक्के के सदृश थे। रामगुप्त ने इस कार्य को आगे बढ़ाया हो। अभी तक मालवा में गुप्त सिक्कों की खोज-ढूँढ़ नहीं हुई है। सम्भव है कि समुद्रगुप्त के ताम्बे के सिक्के उस प्रांत में मिलेंगे। हमलोग चन्द्रगुप्त के जेठे भाई के अतिरिक्त किसी दूसरे रामगुप्त को नहीं जानते। अक्षर-शैली को देखने से भी पता चलता है कि रामगुप्त के सिक्के गुप्तकालीन हैं। अतः इन ताम्बे के सिक्कों के रामगुप्त को चन्द्रगुप्त के बड़े भाई रामगुप्त ही समझना अनुचित न होगा।

किंतु नये सिक्के के प्रकाश में आने तक इस प्रकार कोई अंतिम निर्णय नहीं किया जा सकता।

आठवाँ अध्याय

प्रथम कुमारगुप्त की स्वर्णमुद्राएँ

प्रथम कुमारगुप्त के शासनकाल में मुद्रानिर्माण का कार्य समुद्रगुप्त अथवा द्वितीय चन्द्रगुप्त के समय से भी अधिक वेग से हुआ था। अनेक विभिन्न प्रकार के सिक्के तैयार किये गये थे। मुद्रा-निर्माता स्वर्ण तथा रौप्य मुद्राओं में अधिक-से-अधिक नये प्रकार तथा उपप्रकारों को समाविष्ट करने में अपनी चातुरी दिखलाते रहे। उन्होंने प्रथम चन्द्रगुप्त के राजा-रानी प्रकार, समुद्रगुप्त के व्याघ्र-निहन्ता, अश्वमेध तथा वीणा-प्रकार को पुनर्जीवित किया, जो पिछले समय में स्थगित कर दिये गये थे। द्वितीय चन्द्रगुप्त ने धनुर्धारी, अश्वारोही, छत्र तथा सिंह-निहन्ता प्रकारों को जारी रखा, जो पहले अत्यन्त लोकप्रिय थे। तोभी उन प्रकारों में नये उपप्रकार लाये गये हैं। सर्वथा नवीन प्रकार के सिक्के भी निकाले गये। राजा का नामकरण देवताओं के सेनापति कुमार की तरह कुमार किया गया। अतएव यह आवश्यक था कि एक नये प्रकार का समावेश किया जाय, जिसके पृष्ठभाग पर इस देवता की आकृति बनाई जाय। पुरोभाग पर राजा मोर को खिला रहा है, जो कुमार का वाहन माना जाता है। राजा के युद्ध तथा खेल संबंधी नये प्रकार के सिक्के बनाये गये हैं। खड्गधारी प्रकार में राजा चतुर तलवार चलानेवाला पुरुष व्यक्त किया गया है। गजारोही प्रकार में राजा आखेट के लिए जाते हुए दिखलाया गया है। गजारूढ और सिंह-निहन्ता प्रकार में उस सिंह के आखेट का दृश्य प्रदर्शित किया गया है जब सम्राट् एक समय सिंह के शिकार में बाल-बाल बचे थे। खड्ग-निहन्ता प्रकार में राजा घोड़े की पीठ पर से गेंडे को मारने का प्रयास कर रहा है। 'अप्रतिघ' प्रकार अभी रहस्यमय है। उसमें दिखलाई पड़ता है कि राजा बुद्ध की तरह खड़ा है, जिसके दाहिने भाग एक उत्तेजित स्त्री बात कर रही है तथा बायें सेनापति खड़ा है। इस तरह कुमारगुप्त की स्वर्ण-मुद्राओं में एक अत्यन्त आकर्षक विविधता और मौलिकता दिखाई देती है।

चाँदी के सिक्कों में भी नव-निर्माण की प्रवृत्ति पर्याप्त मात्रा में दीखती है। कुमारगुप्त ने गुजरात-मालवा के लिए अपने पिता के प्रकार के चाँदी के सिक्के को निकालना जारी रखा, जिसे साम्राज्य के पश्चिमी भाग के लिए तैयार किया गया था। किन्तु उसने गंगाघाटी के प्रांतों के लिए चाँदी के सिक्कों में नये प्रकार का भी समावेश किया, जिसमें कुछ हद तक क्षत्रपों के सिक्कों का अनुकरण रहते हुए भी कारीगरी में तथा चिह्न-समूहों में पर्याप्त नवीनता तथा मौलिकता विद्यमान है।

कुमारगुप्त के अभी तक केवल आधे दर्जन ताम्बे के सिक्के प्राप्त हुए हैं। इससे प्रकट होता है कि कुमार ने अपने पिता के ताम्बे के सिक्कों के निर्माण-कार्य को त्याग दिया; क्योंकि वह आर्थिक दृष्टि से उस परेशानी के योग्य नहीं समझा गया। व्यापारिक अदल-बदल में कौड़ियाँ भली-भाँति व्यवहृत थीं, जिस तरह व्यापार में आजकल ताम्बे के सिक्के व्यवहार में आते हैं।

जहाँ तक नवीनता तथा मौलिकता का प्रश्न है, प्रथम कुमारगुप्त के सिक्के द्वितीय चन्द्रगुप्त से समता कर सकते हैं। किंतु सब प्रकारों में ऊँची कारीगरी और कौशल नहीं दीखता है। अश्वारोही प्रकार कला का सर्वोत्कृष्ट नमूना माना जाता है। व्याघ्रनिहन्ता तथा कार्तिकेय प्रकारों में देवी मोर को खिला रही है, जो दृश्य अत्यन्त सुन्दर दिखलाई पड़ता है। 'अप्रतिघ' प्रकार में तीनों व्यक्तियों के मुखों पर भाव-चित्रण ठीक तरह से हुआ है। कार्तिकेय प्रकार के सिक्के सुन्दर माने जाते हैं। राजा-रानी, वीणा, खड्ग-निहन्ता, गजारोही तथा सिंह-निहन्ता प्रकार मुद्राकला में ऊँचा स्थान रखते हैं। इससे प्रकट होता है कि प्रथम श्रेणी के कलाकार अपूर्व ठप्पे बनाने के लिए नियुक्त किये गये थे। किन्तु धनुर्धारी तथा सिंह-निहन्ता प्रकार में स्पष्ट रूप से कला की अवनति दिखलाई पड़ती है। पहले में राजा का अर्ध शरीर अधिक पीछे झुक गया है। दूसरे में राजा के शरीर में उतनी स्फूर्ति तथा बल नहीं दीखता है, जितना द्वितीय चन्द्रगुप्त के सिंह-निहन्ता सिक्कों पर प्रदर्शित किया गया है। दोनों में राजा का वक्षस्थल अनुचित उन्नत दिखलाया गया है, जिससे वह पुरुष के बदले स्त्री मालूम पड़ता है। कुमारगुप्त के अश्वमेध सिक्के पर खुदे घोड़े की तुलना समुद्रगुप्त के अश्वमेध से नहीं की जा सकती। इस तरह प्रकट होता है कि प्रथम कुमारगुप्त के समय में मुद्राकला की अवनति होने लगी थी[१]। सम्भवतः उसके पिछले शासनकाल में शत्रुओं का आक्रमण इस अवनति का कारण हो सकता है।

प्रथम कुमारगुप्त की स्वर्णमुद्रा का वर्णन अभी उपस्थित किया जायगा।

धनुर्धारी प्रकार

धनुर्धारी प्रकार, जो द्वितीय चन्द्रगुप्त के समय में अत्यंत लोकप्रिय था, कुमारगुप्त के द्वारा भी पर्याप्त संख्या में तैयार किया गया था। किंतु जो आश्चर्यजनक तथा सुन्दर विविधता हमें द्वितीय चन्द्रगुप्त के इस प्रकार के सिक्कों में मिली, उसे हम कुमारगुप्त के धनुर्धारी प्रकार में नहीं पाते हैं। यह अनुमान किया जा सकता है कि कुमारगुप्त के मुद्रा-निर्माताओं ने इस विविधतापूर्ण प्रकार में अधिक विविधता लाने का प्रयत्न नहीं किया।

---

१. राखालदास बनर्जी का विचार इससे विपरीत था। उनका कथन था कि कुमारगुप्त के शासनकाल में गुप्तमुद्रा उन्नति के शिखर पर पहुँच चुकी थी। इस राजा के सिक्के कला के सुन्दर नमूने हैं। (दि एज आफ इम्पिरियल गुप्त, पृ० २३०); यह विचार थोड़े अंशों में सत्य है।

केवल कुछ ज्ञात उपप्रकारों को ही आगे जारी रखा। द्वितीय चद्रगुप्त के धनुर्धारी प्रकार के पहले वर्ग के पृष्ठभाग पर लक्ष्मी सिंहासन पर बैठी है, जैसा कुषाणों के मूल सिक्कों पर पाया जाता है। प्रथम कुमारगुप्त के धनुर्धारी प्रकार में इस वर्ग या उपप्रकार के सिक्के नहीं पाये जाते हैं। इसके सिक्कों के पृष्ठभाग पर देवी हमेशा कमलासनाधिष्ठित है, जैसी धनुर्धारी प्रकार के द्वितीय वर्ग की मुद्राओं पर दिखाई गई है। पुरोभाग पर राजा बायें खड़ा है, जिसके दाहिने हाथ में बाण तथा बायें में धनुष है। वह धनुष का कभी बीच या कभी सिरा पकड़े खड़ा है। बायें हाथ के नीचे 'कुमार' तथा कभी उसका संक्षिप्तरूप 'कु' मिलता है। किसी मुद्रा पर 'कुमार' या 'कु' दोनों ही अविद्यमान हैं। केवल पृष्ठभाग के विरुद से वे कुमारगुप्त के समझे जा सकते हैं। इस प्रकार की मुद्राओं का वर्गीकरण कुछ कठिन है। श्री ऍलन ने उनको मुद्रालेखों के आधार पर विभक्त किया है। किन्तु वे अपूर्ण और अस्पष्ट होने के कारण इस कार्य में कुछ अड़चन उत्पन्न करते हैं। हमने यहाँ पहले इस प्रकार की मुद्राओं को चार वर्गों में विभक्त किया है। पहले वर्ग में वे मुद्राएँ हैं, जिन पर 'कुमार' राजा की बाईं बाँह के नीचे और दूसरे में प्रत्यंचा के बाहर 'कुमार' शब्द अंकित किया गया है। तीसरे में वे सिक्के हैं, जिनपर केवल 'कु' है। चौथे में वे सिक्के हैं, जिन पर एक भी अक्षर अंकित नहीं किया गया है। वर्गों के उपप्रकार मुद्रालेखों के आधार पर निश्चित किये गये हैं।

पहले वर्ग (फ० ९, १०-१२) में राजा के बायें हाथ के नीचे 'कुमार' लिखा है। उसमें गद्य में लेख है—'महाराजाधिराजश्रीकुमारगुप्तः'। इस प्रकार के सिक्के १२४ ग्रेन तौल में हैं। दूसरे वर्ग (फ० ९, १३-१४) में 'कुमार' लम्बवत् प्रत्यंचा के बाहर उत्कीर्ण है। राजा बीच से उसे पकड़े हुए है। यहाँ पहले उपप्रकार में पहले वर्गवाला लेख ही उत्कीर्ण किया गया है; किन्तु दूसरे का लेख अपूर्ण और अस्पष्ट है। उसके प्रारम्भ में 'गुणेशो महीतलम्' और अन्त में शायद 'जयति कुमारः' लिखा है। (गुणों में प्रधान कुमार संसार का विजेता)। दोनों उपप्रकार के सिक्के तौल में १२१ ग्रेन हैं। तीसरे वर्ग में (फ० १०, १-६) राजा के हाथ के नीचे 'कु' लिखा है। इसमें पहले उपप्रकार में मुद्रालेख—'विजितावनिरवनि-पतिः कुमारगुप्तो दिवं जयति'—मिलता है। 'राजा कुमारगुप्त जिसने संसार जीता है, स्वर्ग की विजय करेगा।' दूसरे उपप्रकार में लेख—'जयति महीतलं श्रीकुमारगुप्तः' है। तीसरे उपप्रकार में इस लेख के अंत में सुधन्वी जोड़ दिया गया है; 'चतुर धनुर्धर कुमारगुप्त पृथ्वी का विजेता है'। इस तरह के एक सिक्के पर एक सुन्दर शंख की आकृति पृष्ठभाग की बाईं ओर बनी है (फ० १०,५)। ये तीनों उपप्रकार के सिक्के १२७ ग्रेन तौल में हैं, यद्यपि पहले उपप्रकार के सिक्के कभी तौल में १३० या १२४ ग्रेन पाये गये हैं।

चौथे वर्ग (फ० १०; ७-१०) में 'श्रीकुमार' या 'कु' दोनों भी लुप्त हो गये हैं। इसके पहले उपप्रकार में मुद्रा-लेख 'परमराजाधिराजश्रीकुमारगुप्तः' मिलता है तथा दूसरे उपप्रकार में 'जयति महीतलं श्रीकुमारगुप्तः' लिखा है। इन सिक्कों की तौल १२७ ग्रेन है।

प्रथम कुमारगुप्त के पौत्र द्वितीय कुमारगुप्त ने भी धनुर्धारी प्रकार के सिक्के निकाले थे, जिन्हें स्मिथ[1] ने प्रथम कुमारगुप्त के बतलाया था। उन्होंने पीछे अपने मत को बदल दिया और उसे द्वितीय कुमारगुप्त का बतलाया[2]। यह सही है कि प्रथम कुमारगुप्त की तरह द्वितीय कुमार के सिक्के पर 'कु' बायें हाथ के नीचे लिखा मिलता है, जिसमें प्रथम कुमारगुप्त के पहले वर्ग की तरह लेख—'महाराजाधिराजश्रीकुमारगुप्तः'—भी अंकित है; किन्तु उसकी तौल १४४ ग्रेन है, जो तौलमान प्रथम कुमारगुप्त के शासनकाल में प्रयुक्त नहीं किया गया था। पृष्ठभाग पर भी लेख 'महेन्द्र' के स्थान पर 'क्रमादित्य' लिखा है। अतः इसमें बिलकुल सन्देह नहीं है कि १४४ ग्रेन तौल के 'क्रमादित्य' विरुद धारण करनेवाले धनुर्धारी प्रकार के सिक्के द्वितीय कुमारगुप्त ने प्रचलित किये थे, न कि उसके पितामह ने।

प्रथम कुमारगुप्त के धनुर्धारी प्रकार के सिक्के का वर्णन इस प्रकार है—

पुरोभाग—राजा बायें खड़ा है। उसके बायें हाथ में धनुष तथा दाहिने में बाण है। उसका सिर कभी अनावृत है तो कभी पट्टबंध के सहित। एक में शरीर का अर्द्ध भाग नग्न है, तो दूसरे में कोट पहने हुए है। किसी में धनुष के सिरे को पकड़े हुए है और उसकी प्रत्यंचा भीतर है, तो दूसरे में उसको बीच से पकड़े हुए है और उसकी प्रत्यंचा बाहर की ओर है। राजा के दाहिने हाथ के पीछे गरुडध्वज है। किसी सिक्के पर 'कुमार' बाईं बाँह के नीचे, किसी पर प्रत्यंचा से बाहर मिलता है; किसी पर बाँह के नीचे केवल 'कु' है, तो किसी पर कुछ भी उत्कीर्ण नहीं है। वर्तुलाकार मुद्रा-लेख भी विभिन्न उपप्रकारों में भिन्न-भिन्न अंकित है।

पृष्ठभाग—लक्ष्मी कमल पर बैठी हैं। दाहिने हाथ में पाश तथा बायें में कमल है। कभी दाहिने हाथ से सुवर्ण मुद्रा बिखेर रही हैं अथवा कमल धारण किये हुए हैं। चिह्न कभी-कभी, मुद्रालेख 'श्रीमहेन्द्रः'।

फलक स्थित सिक्कों का विवरण

प्रथम वर्ग[3]

(बायें हाथ के नीचे 'कुमार')

(१) सोना, '८५", १२३'६, ग्रेन, बयाना निधि फ०, १६,३

पुरोभाग—राजा के बालों के ऊपर पट्टबंध बँधे हैं, शरीर अनावृत, नीचे धोती पहने, बायें हाथ के नीचे 'कुमार', वर्तुलाकार मुद्रालेख, एक बजे से 'महाराजाधिराज श्री कुमा (र)'।

---

१. ज० रॉ० ए० सो० १८८९ पृ० ९९।

२. वही, पृ० १६६।

३. ब्रि० म्यू० कै० गु० डा०, फ० १२,७।

पृष्ठभाग—लक्ष्मी कमल पर बैठी, दाहिने हाथ में पाश, बायें में कमल, चिह्न बायें, लेख—'श्री महेन्द्र' (फ० ६,१०)।

(२) सोना, '८", १२३'५ ग्रेन, बयाना निधि, फ० १६,१

पुरोभाग—पूर्ववत्, राजा का हाथ धनुष और प्रत्यंचा के बीच, लेख बायें, अधूरा, राजा के हाथ तथा गरुड़ के मध्य 'गुप्त'; अंतिम अक्षर अधूरा।

पृष्ठभाग – पूर्ववत्, लक्ष्मी का पैर ऊपर उठा हुआ तथा हाथ घुटने पर अवलम्बित। (फ०६, ११)।

(३) सोना, '८",१२३'५८ ग्रेन, बयाना निधि, फ० १६,४

पुरोभाग—पूर्ववत्, लेख बायें अधूरा, 'गुप्त' शब्द आठ बजे।

पृष्ठभाग—देवी के पैर ऊपर उठे हुए हैं (फ० ६, १२)।

द्वितीय वर्ग

पहला उपप्रकार[1]

('कुमार' प्रत्यंचा के बाहर तथा लेख 'महाराजाधिराज' इत्यादि)

सोना, '८", १२२·७ ग्रेन, बयाना निधि, फ० १६,६

पुरोभाग—धनुष बीच से पकड़े, प्रत्यंचा बाहर, राजा के सिर पर पट्टी नहीं है, लेख एक बजे 'महाराजाधिराज (श्रीकुमारगुप्तः)'।

पृष्ठभाग—लक्ष्मी कमल पर बैठी, पैर ऊपर उठे, हाथ घुटने पर अवलम्बित, बायें चिह्न, लेख दाहिने 'श्रीमहेन्द्रः'।

दूसरा उपप्रकार

(लेख—गुणेशोमहीतलम् जयतिकुमारगुप्तः ?)

सोना, '७५", ११६'७ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० २०,४

पुरोभाग—पूर्ववत्, 'कुमार' प्रत्यंचा से बाहर, लेख एक बजे आरम्भ 'गुणेश मह' अस्पष्ट।

पृष्ठभाग—कमल पर बैठी लक्ष्मी, हाथ ऊपर पाश लिये, पाश सीमा से बाहर, बायाँ हाथ घुटने पर अवलम्बित, कमल लिये; बायें चिह्न, दाहिने लेख—'श्रीमहेन्द्रः' अस्पष्ट (फ० ६,१४)।

---

१. बि० म्यू० कै० गु० डा०, फ० १२, १०-१२; ज० रॉ० ए० सो० १८८२, फ० ११, ११।

तृतीय वर्ग

[बायें हाथ के नीचे 'कु'[1]]

पहला उपप्रकार

(मुद्रा-लेख 'विजितावनिरवनिपतिः कुमारगुप्तो दिवं जयति')

सोना, .'८", १२६'२ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० २०, ५

पुरोभाग—राजा बायें खड़ा, सिर अनावृत किंतु बालों के गुच्छे नीचे गरदन पर लटक रहे हैं, कोट तथा धोती पहने, धनुष सिरे पर पकड़े, प्रत्यंचा भीतर, गरुड़ध्वज का दराड यंत्र से बना, बायें हाथ के नीचे 'कु', अर्द्धचन्द्र ऊपर, तीन बजे से लेख, कटे हुए अक्षरों में, 'जतवनिरवनपति', पैर तले 'कुमार' अक्षरों के अवशेष, बायें 'गुप्त दव जय'।

पृष्ठभाग—लक्ष्मी कमलासन पर बैठी, दाहिना हाथ ऊपर मुड़ा हुआ ऊपर की तरफ उठा, बायाँ हाथ बायें घुटने पर अवलम्बित, चिह्न अदृश्य, लेख 'श्रीमहेन्द्रः' अधूरा, अस्पष्ट। (फ० १०, १)।

सोना, '८",१२५'६ ग्रेन बयाना-निधि, फ० २०,७

पुरोभाग—पूर्ववत्, 'विजितवनिर,' 'त'; 'व' अक्षर धनुष के सिरे पर, 'ति' गरुड़ के ऊपर।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, चिह्न पूरा (फ० १०, २)।

दूसरा उपप्रकार[2]

(मुद्रालेख, 'जयति महीतलं श्रीकुमारगुप्तः')

सोना, '७५", १२७'७ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० २०, १३

पुरोभाग—राजा पहले उपप्रकार की तरह, पीछे झुका, 'कु' अर्द्धचन्द्र के साथ बायें हाथ के नीचे; दाहिने लेख, सीमा से बाहर, नौ बजे कटे अक्षरों में, 'श्रीकुमारगुप्तः'।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, लक्ष्मी दाहिने हाथ से सुवर्ण मुद्राएँ बिखेर रही हैं (फ० १०, ३)।

तीसरा उपप्रकार[3]

(मुद्रालेख 'जयति महीतल श्री कुमारगुप्तः सुधन्वी')

(१) सोना, .७५", १२६ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० २०,८

पुरोभाग—राजा पूर्ववत् धनुष सिरे पर पकड़े, वर्तुलाकार लेख एक बजे, 'जयत मह', दस बजे 'धन्व'।

---

१. ब्रि० म्यू० कॅ० गु० डा० फ० १२,१-३; ज० ए० सो० बं० १८८४ फ० ३,१०; ज० रॉ० ए० सो० १८८९ फ० २,१०।

२. ब्रि० म्यू० कॅ० फ० ९,४-५। ज० रॉ० ए० सो० ८८९ पृ० ६६।

३. ब्रि० म्यू० कॅ० ग० डा० ६३ ; न्यू० क्रॉ० १८९१ फ० २,११।

पृष्ठभाग—लक्ष्मी के दाहिने हाथ में कमल, बायाँ हाथ खाली जंघे पर, चिह्न अनुत्कीर्ण, लेख 'श्रीमहेन्द्रः' (फ० १०, ४)।

(२) सोना, .८", १२१·४ ग्रेन, पुरोभाग बयाना निधि, फ० २२,१७ पृष्ठभाग ज० न्यू० सो० इं० भा १२ पृ० १२४

पुरोभाग— पूर्ववत्, एक बजे लेख 'जयत महतल' गरुड़ के ऊपर 'न्त्र', ।

पृष्ठभाग—देवी का दाहिना हाथ ऊपर मुड़ा हुआ, उसके नीचे शंख, बायें हाथ में कमल, बाईं ओर लेख, 'श्रीमहेन्द्रः' (फ० १०,५)।

(३) सोना, ·७५", १२६·६ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० २२,१२

पुरोभाग—पूर्ववत्, एक बजे, 'जय' दस बजे 'सधन्व'।

पुरोभाग—पूर्ववत्, देवी दाहिने हाथ से मुद्राएँ बिखेरती हुई (फ० १०,६)।

चौथा वर्ग

['कुमार' अथवा 'कु' रहित[1]]

पहला उपप्रकार

(मुद्रालेख 'परमराजाधिराजश्रीकुमारगुप्तः')

(१) सोना,.८", १२६·४ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० २१,१

पुरोभाग—बायें राजा खड़ा है, सिर अनावृत, बटनदार कोट तथा धोती पहने, वर्तुलाकार मुद्रा-लेख एक बजे 'परम राजा', छ बजे,'श्री कुमारगुप्त'; 'गु' राजा के हाथ के ऊपर तथा गरुड़ के ऊपर 'प्त'।

पृष्ठभाग—लक्ष्मी के दाहिने हाथ में पाश, बायें हाथ में कमल, हाथ कमर पर, और केहुनी ऊपर चिह्न बायें, दाहिने लेख 'श्रीमहेन्द्रः' (फ० १०,७)।

(२) सोना,.८", १२५·८ ग्रेन, बयाना निधि, फ० २०,३

पुरोभाग—पूर्ववत्, बाईं ओर लेख 'परम राजाधरज' 'श्र' अस्पष्ट, दाहिने ७-६ के बीच 'कुमारगु', गरुड़ के ऊपर 'प्त'।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, देवी के पैर कुछ ऊपर उठे। लेख 'श्रीमहेन्द्रः' (फ० १०,८)।

(३) सोना, ६·८", १२६·४ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० २०,१४

पुरोभाग—पूर्ववत्, बटनदार कोट, बटन एक पट्टी पर, बायें लेख 'परमराज' अधूरा।

पृष्ठभाग—साफ तौर पर अंकित, पाश छोटा है। चिह्न बायें, लेख 'श्रीमहेन्द्र' (फ० १०,६)।

---

१. वही फ० १२,६; ज० रा० ए० सो० १८९३, फ० ३,४।

दूसरा उपप्रकार
(मुद्रालेख 'जयति महीतलं श्रीकुमारगुप्तः')

सोना, .८", १२७.३ ग्रेन, बयाना निधि, २१,५

पुरोभाग—राजा बायें खड़ा, पूर्ववत्, वर्तुलाकार मुद्रा-लेख आठ बजे आरम्भ 'जयत महतल श्री कुमारगुप्तः'; 'श्री' गरुड़ के ऊपर,तथा 'कुमार' तीन बजे,'गुप्त' का अवशेष धनुष के नीचे दिखलाई पड़ता है।

पृष्ठभाग—लक्ष्मी कमल पर बैठी, दाहिने हाथ में कमल और बायें हाथ में कॉर्नुकोपिया जो कंधे के ऊपर है, चिह्न बायें, बीच में लेख—'श्रीमहेन्द्रः' (फ० १०, १०)।

(आ) अश्वारोही प्रकार

प्रथम कुमारगुप्त के सिक्कों में अश्वारोही प्रकार सर्वप्रिय रहा। पुरोभाग में इस प्रकार के सिक्के चन्द्रगुप्त के अश्वारोही प्रकार के समान हैं। राजा दाहिने या बायें घोड़े पर सवार है। वह कभी हथियार बाँधे या कभी हथियार-रहित दिखलाया गया है। पृष्ठभाग पर के दृश्य में कुछ उपप्रकारों में देवी मोढ़े पर बैठी है; किन्तु दूसरों में देवी मोढ़े पर बैठकर मोर को खिला रही है। यह एक उल्लेखनीय बात है कि इस प्रकार के प्रत्येक उपप्रकार की एक विशेषता कभी घोड़े की दिशा में, कभी उसके जीन के प्रकार में, कभी राजा के आयुधों में, कभी पुरोभाग के वर्तुलाकार मुद्रालेखों तथा पृष्ठभाग के चिह्न-समूहों में दिखलाई देती है। इसमें कुछ संदेह नहीं है कि मुद्राकारों ने हरएक प्रकार में विशेषता लाने के लिए काफी सोच-विचार किया होगा।

पृष्ठभाग के चिह्न-समूह (motif) के आधार पर अश्वारोही प्रकार का वर्गों में विभाजन किया जा सकता है। पहले वर्ग में सिक्कों पर देवी अकेले बैठी है और दूसरे वर्ग में वह मोर को खिलाती हुई दिखलाई गई है।

प्रथम वर्ग के पहले उपप्रकार (फ० १०,११-१२) में पुरोभाग पर लेख—'पृथिवी तलांबरशशी कुमारगुप्तो जयत्यजितः'[१] (अजेय कुमारगुप्त, जो पृथ्वी रूपी आकाश में चन्द्रमा के समान हैं, विजयी हो)। उपगीति छंद।

इस उपप्रकार की सभी मुद्राओं पर घोड़े पर एक सुन्दर जीन है,जिसमें उसकी गर्दन और पुठे पर एक सुन्दर वर्तुलाकार तारा दिखाई देता है। राजा हथियार से रहित है। पृष्ठभाग पर देवी बाईं ओर मोढ़े पर बैठी है, जिसके दाहिने हाथ में कमल है, बायाँ हाथ खाली, कमर पर पड़ा है।

---

१. यह लेख पहले-पहल बयाना-निधि के सिक्के की सहायता से पढ़ा जा सका है। ब्रि० म्यू० कै० जी० डी० फ० १३१ में इस तरह का एक सिक्का था, किन्तु अस्पष्टता के कारण मुद्रालेख सफलतापूर्वक नहीं पढ़ा गया था।

दूसरे उपप्रकार (फ० १०,१३) का एकही सिक्का बयाना निधि में मिला है, जिसमें राजा घोड़े पर सवार है और दाहिने हाथ में धनुष लिये हुए है। घोड़े का जीन आभूषित नहीं है। वर्तुलाकार मुद्रा-लेख'...जयति नृपोरातिभिरजितः' है (राजा अजेय है जो शत्रु से कभी पराजित नहीं हुआ)। देवी पृष्ठभाग पर मोढ़े पर बैठी है। उसके दाहिने हाथ में पाश है तथा बायें में कमल। चिह्न उत्कीर्ण नहीं किया गया है।

तीसरे उपप्रकार (फ० १०,१४-१५; फ० ११, १) में घोड़ा दाहिने देख रहा है तथा उसके जीन का आभूषण भिन्न ढंग का है। राजा के पास कोई हथियार नहीं है। वर्तुलाकार मुद्रा-लेख 'क्षितिपतिरजितो विजयी कुमारगुप्तो दिवं जयति[1]' है। (अजेय राजा तथा विजयी कुमारगुप्त स्वर्ग की भी प्राप्ति करता है)। उपगीति छंद। पृष्ठभाग दूसरे उपप्रकार से सर्वथा मिलता है। किन्तु कभी (फ० १०, १५) पाश का मुड़ाव दूसरे वर्ग में दिखाई देनेवाले मोर की गर्दन की तरह प्रकट होता है, जब कि उसका केवल ऊपरी हिस्सा दृग्गोचर होता है। एक सिक्के (फ० ११,१) में पृष्ठभाग पर देवी के हाथ में पाश दिखलाई नहीं पड़ता। किन्तु इस सिक्के का मुद्रालेख अस्पष्ट है, इसलिए यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि वह इस उपप्रकार का ही था या नहीं। यह भी संभव है कि हथौड़े से पीटे जाने के कारण पृष्ठभाग पर का पाश अदृश्य हो गया होगा। इस मुद्रा पर एक चिह्न भी वर्तमान है। संभव है कि यह मुद्रा एक चौथे उपप्रकार की हो; जब अधिक नमूने प्राप्त होंगे तभी इस पर निश्चित मत बनाना शक्य होगा। ऊपर के तीनों उपप्रकार के सिक्के १२७ ग्रेन तौल में हैं।

दूसरे वर्ग में पृष्ठभाग पर देवी सदा मोर को खिलाती हुई दिखलाई गई है। वह अकेले कभी नहीं प्रदर्शित की गई है। इसके चार उपप्रकार मुद्रालेखों के आधार पर स्थिर किये गये हैं। पहले उपप्रकार (फ० ११,२-५) में मुद्रालेख—'गुप्तकुलव्योमशशी जयत्यजेयो जितमहेन्द्रः' है (अजेय तथा अपराजित महेन्द्र,) जो गुप्तवंश रूपी आकाश का चन्द्रमा है, विजयी हो। इस उपप्रकार में राजा सदा दाहिने रहता है,बायें हाथ में धनुष लिये हुए है। पृष्ठभागपर देवी मोर को अंगूर खिलाती हुई दिखलाई पड़ती है,जिसमें फलों का गुच्छा डंठलों की अपेक्षा प्रधान प्रकट होता है। पृष्ठ की ओर चिह्न नहीं है। सभी सिक्के तौल में १२७ ग्रेन के बराबर हैं। दूसरे उपप्रकार (फ० ११, ६–८) में राजा बाईं ओर देख रहा है और दाहिने हाथ में धनुष लिये हुए है। तलवार बायें लटक रही है। मुद्रालेख –'गुप्तकुलामलचद्रो महेन्द्रकुर्माजितो जयति, है (गुप्तवंश का अमल चन्द्रमा, अजेय वीर, जो महेन्द्र के सदृश शक्तिशाली है, विजयी हो)। उपगीति छंद। पृष्ठभाग का दृश्य पहले उपप्रकार के समान है। इसमें अँगूरों की अपेक्षा डंठल अधिक प्रधान है। संभव है कि कलाकार यह सूचित करना चाहता था कि

---

१. ब्रि० म्यू० कॅ० गु० डा० पृष्ठ ७० में इस लेख के कुमारगुप्त के स्थान में 'महेंद्रसिंहो' पढ़ा गया है। उस सूचीपत्र के फलक ३,१२ व ४ में जो फोटो दिये गये हैं उनमें साफ तौर पर गुप्त लिखा है, महेंद्रसिंह किसी पर पढ़ा नहीं जा सका है।

मोर का खिलाना समाप्त होता जा रहा है। इस प्रकार के पृष्ठभाग पर के चिह्न में एक मार्के की विशिष्टता दिखाई देती है। अधिकतर सिक्के तौल में १२७ ग्रेन के बराबर हैं; किंतु २० प्रतिशत १२४ तौल ग्रेन के हैं। तीसरा उपप्रकार (फ० ११, ९-१०) पहले वर्ग के तीसरे उपप्रकार से बहुत अधिक मिलता है। दोनों उपप्रकारों में घोड़ा दाहिने देखता है और राजा के पास कोई हथियार नहीं है। लेख एक ही तरह आरम्भ होता है; किन्तु अंत में कुछ विभेद हो जाता है। इस पर लेख—'क्षितिपतिरजितो विजयी कुमारगुप्तो जयत्यजितः' है, न कि 'कुमारगुप्तो दिवंजयति[1]' (अजेय तथा विजयी कुमारगुप्त पराजित न होने के कारण सदा सफलीभूत है।) उपगीति छंद। पृष्ठभाग पर देवी मोर को खिलाती हुई प्रदर्शित की गई है। अँगूर के गुच्छे में प्रायः डंठल ही दिखाई देते हैं शायद ही फल, मानों मोर ने सब अँगूर खतम कर दिये हैं। इस उपप्रकार में चिह्न अनुत्कीर्ण है।

चौथे उपप्रकार (फ० ११,११-१५) में राजा दाहिने सवार है, बायें हाथ में धनुष लिये हुए। सात बजे मुद्रालेख आरम्भ—'पृथिवीतलेश्वरेन्द्रः कुमारगुप्तो जयत्यजितः' (अजेय कुमार गुप्त, पृथ्वी पर इन्द्र सदृश, शुत्र को पराजित करता है)। उपगीति छंद। पृष्ठभाग पर चिह्न विद्यमान है। देवी के हाथ में तीन-चार अंगूर हैं, न कि डंठलयुक्त गुच्छ। इस कारण बायें कोने में चिह्न को रखना सम्भव हो पाया। तीसरे-चौथे उपप्रकारों में सिक्कों की तौल १२७ ग्रेन है।

अश्वारोही प्रकार का साधारण विवरण इस प्रकार है—

पुरोभाग—राजा प्रभामंडलयुक्त, कोट, पायजामा पहने, जीन के साथ घोड़े पर सवार है, जो कभी बायें या दाहिने चलता है। दाहिने अथवा बायें हाथ में धनुष लिये, तलवार कभी बाईं ओर। राजा कभी-कभी हथियार-रहित। घोड़े का जीन अनेक रीति से विभूषित, लेख प्रत्येक उपप्रकार में विभिन्न।

पृष्ठभाग—पहले वर्ग में देवी मोढ़े पर बैठी है। दाहिने हाथ में पाश तथा बायें में कमल है, चिह्न अनुत्कीर्ण। लेख दाहिने—'अजितमहेन्द्रः'। दूसरे वर्ग में पूर्ववत् देवी, किन्तु दाहिने हाथ से मोर को अंगूर खिला रही है। बायें में लम्बे नालवाला कमल है। चिह्न अनुत्कीर्ण, दाहिने लेख—'अजितमहेन्द्रः।'

---

१. ब्रि० म्यू० गु० डा० पृ० ७१ पर श्री ॲलन ने इस लेख को पहले वर्ग के तीसरे उपप्रकार के सर्वथा एक-सा माना है। बयाना निधि के सिक्के पर स्पष्ट रूप से अन्त में 'जयत्यजि' (फ० ११, १०) लिखा है। ब्रि० म्यू० कॉ० में एक सिक्का है, जहाँ अन्तिम अक्षर साफ है (फ० १३, १०) जो 'गुप्तो जय' प्रकट होते हैं। ब्रि० म्यू० के पहले वर्ग का चौथा उपप्रकार है, जिसका फोटो अप्रकाशित है, इस उपप्रकार का सिक्का मालूम पड़ता है।

फलक स्थित सिक्कों का वर्णन

पहला वर्ग

[देवी मोर विरहित]

पहला उपप्रकार[१]

मुद्रालेख—'पृथिवीतला म्बरशशी कुमारगुप्तो जयत्यजितः[२]

(१) सोना, .८", १२६.५ ग्रेन, बयाना निधि, फ० २२ ,४

पुरोभाग—राजा अनावृत सिर, दाहिने सवार, हथियार रहित, घोड़े के बाल विभूषित, पुट्ठे तथा गर्दन पर सुन्दर गोल आभूषण; इस उपप्रकार की यह विशेषता है। राजा का बटन-दार कोट अत्यन्त सुन्दर, दो बजे से लेख–'पृथी',तीन बजे से 'तलाम्बर शश' अस्पष्ट, घोड़े के पैरों बीच 'कुम',नौ बजे से 'प्तो जयत्यजितः'।

पृष्ठभाग—मोढ़े पर देवी बैठी, दाहिने हाथ में पत्ते सहित, लम्बे नालयुक्त कमल बायाँ हाथ खाली, कमर पर रखे, सिर के पीछे केश-ग्रंथि, चिह्न अविद्यमान, लेख 'अजितमहेन्द्रः' (फ० १०, ११)।

(२) सोना, .८",१२७.३ ग्रेन, बयाना निधि, फ० २२, १

पुरोभाग— पूर्ववत्, लेख एक बजे, 'पृथिवी तलम्वरश'।

पृष्ठभाग—पूर्ववत् 'अजितमहेन्द्रः' (फ० १०, १२)।

दूसरा उपप्रकार

(मुद्रालेख–'जयति नृपोऽ रतिभिरजितः')

(३) सोना, .७५," १२५.६ ग्रेन, बयाना निधि, फ० २२, ७

पुरोभाग—राजा बायें सवार है, एक बजे से 'जयत नृप रातभरजितः'।

पृष्ठभाग—बायें, मोढ़े पर देवी बैठी है, दाहिने हाथ में पाश, बायें में कमल, कमर पर अवलम्बित, चिह्न अविद्यमान, लेख 'अजत महेन्द्र' (फ० १०,१३)।

तीसरा उपप्रकार[३]

(मुद्रालेख–'क्षितिपतिरजितो विजयी कुमारगुप्तो दिवं जयति')

(४) सोना, .८", १२७ ग्रेन, बयाना निधि, फ० २२, ८

---

१. ब्रि० म्यू० कॅ० फ० १३, १, इं० म्यू० कॅ० भा १ पृ० ११२।

२. स्मिथ का कथन है कि इसतरह के सिक्के पर लेख 'परमभागवतमहाराजाधिराजश्री-महेन्द्रगुप्तः' (ज० रॉ० ए० सो० १८८९ पृ० १००) लिखा है, जो सही नहीं है। बयाना निधि के सिक्कों पर अंकित लेख से वह अब स्पष्ट हो गया है।

३. ब्रि० म्यू० कॅ० १३; २–५ ज० रॉ० ए० सो० १८८४ पृ० १९३ फ० ३, १२; वही १८८९ फ० २,१३।

पुरोभाग—राजा, सिर अनावृत, कोट तथा संभवतः पायजामा पहने, दाहिने घोड़े पर सवार, हथियार रहित, सिर पर प्रचुर केश; मणिविभूषित सुन्दर जीन; वर्तुलाकार मुद्रालेख, घोड़े के सिर पर 'च'; उसके सिर से पैर तक 'तपतर', पैरों के बीच 'तव' अस्पष्ट, आठ बजे से 'मरगुप्त दव जयत'।

पृष्ठभाग—उपप्रकार दूसरे की तरह; लेख 'अजतमहेन्द्र' (फ० १०, १४)।

(५) सोना, .८", १२७.२ ग्रेन, बयाना निधि, फ० २५, १०

पुरोभाग—पूर्ववत्, खुले गले का कोट, एक बजे मुद्रालेख 'क्षितिपत', नौ बजे 'गुप्त दव जयत'।

पृष्ठभाग—देवी पूर्ववत्, पाश का मुड़ाव मोर का गले के समान मालूम[1] पड़ता है। लेख 'अजतमहेन्द्रः' (फ० १०, १५)।

(६) सोना, .८", १२६.२ ग्रेन, बयाना निधि, फ० २२, ७

पुरोभाग - पूर्ववत्, लेख 'क्षतपतर', बाईं ओर लेख अस्पष्ट।

पृष्ठभाग – देवी बायें मोढ़े पर बैठी है, पाश हथौड़े से मिटाया गया है। चिह्न बायें, लेख–'अजतमहेन्द्रः'[2] (फ० ११, १)।

दूसरा वर्ग

(देवी मोर को खिला रही है)

पहला उपप्रकार

(मुद्रालेख 'गुप्तकुलव्योमशशी जयत्यजेयो जितमहेन्द्रः')

(७) सोना, .८", १२५.८ ग्रेन, बयाना निधि, फ० २३, ११

पुरोभाग—राजा का सिर अनावृत, नीचे लटकनेवाले विग (wig) के समान दीखनेवाले लंबे केश, दाहिने सवार, कोट या पायजामा पहने, घोड़े का बाल आरचित, एक बजे से मुद्रालेख 'गुप्तकुलव्योमशशी जयत्य,' अंतिम अक्षर घोड़े के पैरों के बीच।

---

१. बयाना निधि के दूसरे सिक्कों पर भी पाश का मुड़ाव मोर की गरदन के समान प्रकट होता है। यदि यह माना जाय कि इन सिक्कों के पृष्ठभाग पर सम्मुख मोर है तो वे दूसरे वर्ग के तीसरे उपप्रकार सदृश होंगे। किन्तु लेख 'जयत्यजितः' से समाप्त होता है, 'गुप्तो दिवंजयति' से नहीं। उस उपप्रकार में दिखलाई देनेवाला अंगूर का डंठल भी यहाँ कैसा अविद्यमान है यह भी समझना कठिन होगा। अन्ततोगत्वा यह मान लेना उचित होगा कि इन सिक्कों पर मोर की गर्दन नहीं है। किन्तु पाश का मुड़ाव वैसा दीखता है।

२. इस उपप्रकार में इस सिक्के का रखना निश्चित नहीं है। यह एक नया उपप्रकार समझा जा सकता है, जिसका लेख विभिन्न है। पृ० १२२ पर का विवेचन देखिए।

पृष्ठभाग—मोढ़े पर बैठी हुई देवी, कमर पर के बायें हाथ में लम्बे नालयुक्त कमल, दाहिने हाथ से मोर को अंगूर खिला रही है। डंठल अंगूरों से प्रायः ढँका हुआ। चिह्न विद्यमान, लेख 'अजितविक्रमः' (फ० ११, २)।

(८) सोना,६", १२५.६ ग्रेन, बयाना निधि, फ० २३, ४

पुरोभाग—पूर्ववत्, लेख एक बजे से—'गुप्त शश'—'त्य', छः बजे से 'जितमहेंद्रः'।

पृष्ठभाग—पूर्ववत् (फ० ११, ३)।

(६) सोना, .८" ,१२५.१ ग्रेन, बयाना निधि, फ० २३, ५

पुरोभाग—पूर्ववत्, लेख एक बजे से 'गुप्त...वम शश', पाँच बजे से 'जयत्य', नौ बजे 'जितमहेंद्रः'।

पृष्ठभाग—पूर्ववत् (फ० ११, ४)।

(१०) सोना, .८५", १२७ ग्रेन, बयाना निधि, फ० २३, ७

पुरोभाग—पूर्ववत्, लेख 'गुप्तकुल शशी जयत्य···जितमहेन्द्रः'।

नोट—राजा के केशों के सवाँरने की शैली दर्शनीय है।

पृष्ठभाग-पूर्ववत्,मोर का सिर गुच्छ के डंठलों में घुसा है। एक सामने तथा दो पीछे हैं(फ०११,५)।

दूसरा उपप्रकार[1]

(११) सोना, (.८", १२६.८ ग्रेन, बयाना निधि फ० २४, ३ मुद्रालेख 'गुप्तकुलामलचन्द्रो महेन्द्रकर्माजितो जयति)।

पुरोभाग—राजा का सिर अनावृत, दाहिने सवार, दाहिने हाथ में धनुष, बायें तलवार लटक रही है। एक बजे से लेख 'गुप्तकुल', छः बजे से 'महेन्द्र...जत जयति'।

पृष्ठभाग—देवी का शरीरोर्ध्वभाग सुन्दर, मोढ़े पर बैठी, बायाँ हाथ कमर पर, लम्बे नालयुक्त कमल के साथ, दाहिने हाथ से अंगूर का गुच्छा लेकर मोर को खिलाने जा रही है। करीब सब अँगूर समाप्त हो गये हैं, इसलिए केवल डंठल ही शेष दीखते हैं। लेख 'अजितमहेन्द्रः' (फ० ११, ६)।

(१२) सोना, .८५" १२४.४ ग्रेन बयाना निधि, फ० २४,४

पुरोभाग—पूर्ववत्, लेख १ से ४ तक 'गुप्तकुलामलचन्द्र',छः बजे से 'महेन्द्रकर्माजित जयति'।

पृष्ठभाग—पूर्ववत् (फ० ११, ७)

(१३) सोना, .८५", १२६.८ ग्रेन, बयाना निधि, फ० २४, ५

पुरोभाग—पूर्ववत्, लेख—'गुप्तकुलामलचन्द्र,' अन्त के दो अक्षर घोड़े के पिछले पैरों के मध्य में, छः बजे से 'महेन्द्रकर्माजितो जयति'।

---

१. ब्रि० म्यू कै० फ० १२, १६-१९ ज० ए० सो बं १८८४ फ० ३, १३। वहीं १८८९ फ० २, १४।

पृष्ठभाग—पूर्ववत् (फ० ११, ८)

तीसरा उपप्रकार[१]

(मुद्रालेख 'क्षितिपतिरजितो विजयी कुमारगुप्तो जयत्यजितः ।')

(१४) सोना, .८", १२६.३ ग्रेन' बयाना निधि, फ० २५, १

पुरोभाग—राजा का सिर अनावृत, दाहिने सवार, हथियार रहित, कमरबंध पीछे उड़ रहा, बारह बजे से लेख 'क्षतपतरजतो, 'विजयी' का अवशेष घोड़े के खुर के नीचे।

पृष्ठभाग—दूसरे उपप्रकार की तरह देवी, दाहिने हाथ में स्थित डंठल में केवल एक अंगूर सटा हुआ है। लेख 'अजितमहेन्द्र' (फ० ११, ६)।

(१५) सोना, .८५," १२६.४ ग्रेन, बयाना निधि, फ० २५, ३

पुरोभाग—पूर्ववत्, लेख एक बजे 'क्षि,' आठ बजे 'गुप्तजयत्यजि (त)'।

पृष्ठभाग--पूर्ववत् (फ० ११, १०)।

चौथा उपप्रकार

(मुद्रालेख 'पृथिवीतलेश्वरेन्द्रः कुमारगुप्तो जयत्यजितः')

(१६) सोना, .८," १२६.४ ग्रेन, बयाना निधि, फ० २५, ११

पुरोभाग—राजा अनावृतसिर, दाहिने सवार, बायें हाथ में धनुष, लेख आठ बजे आरम्भ, 'पृथिवीतलेश्वरेन्द्र कु'।

पृष्ठभाग—तीसरे उपप्रकार की तरह, किन्तु देवी के दाहिने हाथ में दो फल हैं, गुच्छा नहीं। बायें हाथ में कमल कॉर्नुकोपिया की तरह, बायें चिह्न, लेख अधूरा (फ० ११,११)।

(१७) सोना, .८५," १२६.६ ग्रेन, बयाना निधि, फ० २५, १४

पुरोभाग--राजा के कोट का बटन तथा घोड़े के बाल की सजावट दर्शनीय है। सात बजे लेख आरम्भ, 'पृथिवीतलेश्वरेन्द्र कुम' दाहिने, 'गुप्तो जय'।

पृष्ठभाग—पूर्ववत (फ० ११, १२)।

(१८) सोना, .६," १२५.८ ग्रेन, बयाना निधि, फ० २५, ५

पुरोभाग—पूर्ववत्, सात बजे लेख आरम्भ 'पृथवतलेश्वरेन्द्र कुम' दाहिनी ओर, 'रगुप्त दव जयत' अक्षर टूटे।

पृष्ठभाग—पूर्ववत् (फ० ११, १३)।

---

१. ब्रि० म्यू० कॅ० १३, ६-९। मुद्रालेख के अन्त्य शब्दों के बारे में पृ० १२३ टिप्पणी १ देखिए।

(ड) खड्गधारी प्रकार

कुमारगुप्त के शासनकाल में मुद्रा-निर्माताओं ने इस नये प्रकार को निकाला था। बयाना निधि के पता लगने से पहले इस प्रकार के केवल छः सिक्के ज्ञात थे, किन्तु बयाना में दस सिक्के मिले हैं। पटना के समीप गंगा नदी में इस तरह के दो सिक्के मिले थे। अन्य सिक्कों के प्राप्तिस्थान के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है।

सिक्के का विवरण इस प्रकार है—

खड्गधारी प्रकार

पुरोभाग—राजा प्रभामण्डलयुक्त, दाहिने खड़ा, मोतियों की लड़ी से युक्त पगड़ी, हार, भुजबंध आदि पहने हैं। दाहिने हाथ से वेदी पर आहुति छोड़ रहा है। बायाँ हाथ तलवार की मूँठ पर रखा है, जो कमर से नीचे लटक रही है। राजा के सम्मुख गरुड़ध्वज। बायें हाथ के नीचे 'कु' अर्द्धचन्द्र ऊपर की ओर, वर्तुलाकार मुद्रा-लेख 'गामवजित्य सुचरितैः कुमारगुप्तो दिवंजयति' (पृथ्वी को विजय कर कुमार-गुप्त अपने पुण्यकर्मों के द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति करेगा)।

पृष्ठभाग—लक्ष्मी कमल पर बैठी, दाहिने हाथ में पाश, बायें में लम्बा नालवाला कमल, चिह्न बाईं ओर, लेख 'श्री कुमारगुप्तः'।

खड्गधारी प्रकार समुद्रगुप्त के ध्वजधारी प्रकार में कुछ हेरफेर करके निकाला गया है। यहाँ राजा वेदी पर आहुति छोड़ रहा है। इसमें राजा के पोशाक विदेशी नहीं हैं। गरुड़ध्वज रखा गया है; किन्तु राजाके बायें हाथ से दण्ड या भाला हटा दिया गया है। उसका हाथ तलवार की मूँठ पर है। इस प्रकार के सिक्के कला की दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर माने जाते हैं।

पुरोभाग का लेख द्वितीय चन्द्रगुप्त के छत्रप्रकारवाले सिक्कों के करीब-करीब समान है। केवल 'क्षिति'शब्द के स्थान में 'गो' शब्द का प्रयोग किया गया है। दोनों के पुरोभाग पर चिह्न-समूह दृश्यमान हैं। राजा यज्ञ में आहुति दे रहा है, किन्तु खड्गधारी प्रकार में पीछे छत्रधारी व्यक्ति का अभाव है। कुछ सिक्के १२७ ग्रेन तौल के पाये गये हैं, पर कुछ १२४ ग्रेन के बराबर हैं।

इसका पृष्ठभाग धनुर्धारी प्रकार के सिक्के के सदृश है। सम्भवतः दोनों प्रकार शासनकाल के प्रारम्भ में तैयार किये गये थे।

इस सिक्के के पुरोभाग तथा पृष्ठभाग पर लिखित लेख में कुमार का नाम राजकीय उपाधियों से बिलकुल रहित है। इससे यह स्पष्ट होता है कि मुद्राओं की उपाधियों से या उपाधियों के अभाव से कुछ ठोस निष्कर्ष निकालना कभी-कभी भ्रमपूर्ण होगा। इस प्रकार के पुरोभाग पर अंकित लेख उपाधि-रहित हैं, जो सम्भवतः छंद की आवश्यकता के कारण लिखे नहीं जा सके। पृष्ठभाग का लेख हमेशा छोटा रहता ही है। इस कारण यहाँ

उपाधि कभी छोड़ दी जाती है अथवा कभी छोटी रहती है। जैसे समुद्रगुप्त के व्याघ्रनिहन्ता प्रकार में पूरा लेख 'राजा समुद्रगुप्त' में केवल राजा ही लिखा है।

फलक के सिक्कों का विवरण

(१) सोना, .८५", १२५.६ ग्रेन, बयाना निधि, फ० २१, ६

पुरोभाग—जैसा ऊपर लिखा जा चुका है। भुजबंध, हार तथा कलंगी का मोती स्पष्ट तथा सुन्दर है। यज्ञ-वेदी थोड़ी-सी दिखलाई पड़ती है। दाहिना हाथ खुला हुआ तथा खाली है; किन्तु नीचे गिरनेवाले पुरोडाश नहीं दीखते हैं। बायाँ हाथ तलवार की मूँठ पर रखा हुआ है। एक बजे से लेख 'गामवजित्य सुचरितैः कुमारगु'।

पृष्ठभाग--जैसा ऊपर लिखा जा चुका है। लेख 'श्रीकुमारगुप्तः' (फ० ११, १४)।

(२) सोना .८'', १२५.३ ग्रेन, बयाना निधि, फ० २१, १५

पुरोभाग—'गामवजित्य सुच'—'गुप्तदव जयति', अंतिम अक्षर ग्यारह बजे।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, पाश सीमा के बाहर, लेख बड़े अक्षरों में 'श्रीकुमारगुप्त' (फ० ११, १५)।

(ई) सिंहनिहन्ता प्रकार

द्वितीय चन्द्रगुप्त के सिंहनिहन्ता प्रकार को उसके पुत्र कुमारगुप्त ने भी जारी रखा। किन्तु इसमें वह कलात्मक गुण तथा विभिन्न सुन्दर ढंग वर्त्तमान नहीं है, जो उसके पिता के सिक्कों में पाया गया है। राजा दाहिने देख रहा है। बयाना-निधि के केवल एक सिक्के में राजा ने बाईं ओर भी दृष्टि डाली है। वह सुन्दर तथा मनोरम ढंग, जो चन्द्रगुप्त के सिक्कों पर दृष्टि-गत होता था, यहाँ अनुपस्थित है। देवी का वाहन सिंह घुटने के बल बैठा है, कभी चलता नहीं। देवी भी बैठी सामने देखती है। उसका एक पैर ऊपर की ओर मुड़ा है तथा दूसरा नीचे लटक रहा है। वह सिंह पर दोनों पैर भिन्न ओर फैलाये हुए नहीं दिखलाई गई है। हमेशा वह सामने देखती है, न कभी बाईं या दाहिनी ओर। पुरोभाग पर के मुद्रालेख प्रायः अस्पष्ट हैं। केवल दो सिक्कों पर के मुद्रालेख पूरे पढ़े जा सके हैं। राजा के शरीर में न कुछ आवेश या सुन्दरता है, और न सिंह के शरीर में इस प्रकार की मुद्राओं में कला की अवनति का आभास मिलता है। केवल पहले वर्ग के पहले उपप्रकार में देवी कुछ अच्छे ढंग से दिखलाई गई है।

ये सिक्के चन्द्रगुप्त के सिंहनिहन्ता प्रकार के सदृश हैं। अतएव इनके साधारण विवरण की आवश्यकता नहीं है। इसके बहुतेरे सिक्के १२७ ग्रेन तौल में निकाले गये हैं; किन्तु पंद्रह प्रतिशत तौल में १२४ ग्रेन ही हैं। केवल एक १३१ ग्रेन तौल में है।

इस प्रकार को दो विभागों में बाँटा जा सकता है—सिंह से डटकर युद्ध करता हुआ तथा दूसरा सिंह को कुचलता हुआ। द्वितीय चन्द्रगुप्त के इस प्रकार में सिंह का लौटता हुआ

उपप्रकार भी वर्तमान था, जो यहाँ अविद्यमान है। यहाँ राजा द्वारा सिंह को तलवार से मारने का दृश्य भी नहीं है, जैसा चन्द्रगुप्त के एक सिक्के से ज्ञात होता है।

इस प्रकार के सिक्कों को मुद्रालेखों के आधार पर विभिन्न उपप्रकारों में बाँटना सुविधा-जनक होगा।

पहला वर्ग

(सिंह से डटकर युद्ध करता हुआ)

इसके पहले उपप्रकार (फ० १२,१) में वर्तुलाकार मुद्रा-लेख— 'क्षितिपति' से प्रारम्भ होता है; किन्तु अभी तक पूरा पढ़ा नहीं जा सका है। किन्तु अक्षरों के अवशेषों से विदित होता है कि पूरा मुद्रालेख 'क्षितिपतिरजितमहेन्द्रः कुमारगुप्तो दिवं जयति' हुआ होगा (कुमारगुप्त, अजेय महेन्द्र, पृथ्वी का स्वामी स्वर्ग की प्राप्ति करता है), उपगीति छंद। पृष्ठ-भाग पर की देवी सुन्दर त्रिभंग अवस्था में है। वह बायें हाथ पर झुकी है और उसके दाहिने हाथ में कमल है। चिह्न अविद्यमान।

दूसरे उपप्रकार (फ० १२, २) में लेख अधूरा रह जाता है। यह 'कुमार'से आरम्भ होता है। श्री ऍलन ने इसे इस रूप से पूरा किया है—'कुमारगुप्तो विजयी सिंह-महेन्द्रो दिवं जयति' (विजयी कुमारगुप्त, सिंह के सदृश महेन्द्र, स्वर्ग की प्राप्ति करेगा)। 'कुमार' शब्द के पश्चात् कोई अक्षर सिक्कों पर दिखलाई नहीं पड़ता है और न श्री ऍलन के फ० १४, ६ पर प्रकाशित किये हुए सिक्के पर या बयाना-निधि के इस प्रकार के अन्य सिक्कों पर ही, इसलिए वर्तुलाकार मुद्रालेख श्रीऍलन के कथनानुसार सचमुच था या नहीं, यह कहना कठिन है। पृष्ठभाग पर देवी का दाहिना हाथ खाली तथा खुला हुआ है ; बायाँ हाथ ऊपर उठा है और कमल लिये हुए है। बाईं ओर चिह्न भी वर्तमान है।

तीसरे उपप्रकार (फ० १२, ३-४) में मुद्रा-लेख—'कुमारगुप्तो युधि सिंहविक्रमः' लिखा है। (कुमारगुप्त युद्ध में सिंह के सदृश बलवान है)। छंद—वंशस्थविल। पृष्ठभाग पर देवी दाहिने हाथ से स्वर्णमुद्राएँ बिखेरती हुई तथा बायें में कमल लिये हुए दिखलाई गई है। बाईं ओर चिह्न वर्तमान।

चौथे उपप्रकार (फ० १२, ५) में मुद्रालेख इतना अस्पष्ट है कि उसका पढ़ना कठिन है। राजा दाहिनी ओर खड़ा है। देवी के दाहिने हाथ में कोई वस्तु दिखलाई पड़ती है; किन्तु साफ प्रकट नहीं होती।

दूसरे वर्ग में राजा सिंह को लात से कुचल रहा है। पहले उपप्रकार (फ० १२, ६-८) में मुद्रा-लेख —'साक्षादिव नरसिंहो सिंहमहेंद्रो जयत्यनिशम्'—(महेन्द्र,जो सिंह के समान है, और जो साक्षात् नरसिंह का अवतार है, सदा विजयी हो)। उपगीति छंद। दूसरे उपप्रकार (फ० १२, ६-१०) में मुद्रालेख 'कुमार' से आरम्भ होता है; किन्तु उसे पूर्ण करना अभीतक

शक्य नहीं हुआ है। पृष्ठभाग पर देवी के दाहिने हाथ में एक विचित्र माला है तथा बायें में कमल है। चिह्न भी अजीब तरह का है। यह उपप्रकार सर्वप्रथम १९२५ ई० में ज्ञात हुआ।

फलक के सिक्कों का विवरण

पहला वर्ग

[सिंह से डटकर युद्ध करता हुआ राजा]

पहला उपप्रकार[1]

(लेख 'क्षितिपति' से पारम्भ)

(१) सोना, .७५", १२६.५ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० २७,६

पुरोभाग—राजा प्रभामंडलरहित, दाहिने खड़ा, सिर पर पट्टबंध बाँधे, जाँघिया, हार, कर्णफूल, भुजबँध, कमरबंद पहने है, सामने के सिंह पर बाण छोड़ रहा है, बाँह के ऊपरी भाग में बाण दिखलाई पड़ता है, लेख वर्तुलाकार में एक बजे आरम्भ 'क्षतपत'।

पृष्ठभाग—देवी दाहिनी ओर घुटने पर स्थित सिंह की पीठ पर बैठी है, बाईं बाँह पर झुकी है, जो कमर पर अवलम्बित है, दाहिने हाथ में पत्तियों से युक्त सनाल कमल है, चिह्न अविद्यमान, दाहिने लेख-'श्रीमहेन्द्रसिंहः' (फ० १२, १)।

दूसरा उपप्रकार[2]

(लेख 'कुमार' से आरम्भ)

(२) सोना, .८", १२७.४ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० २७, ११

पुरोभाग—राजा पूर्ववत्, वर्तुलाकार लेख - 'कुमार'।

पृष्ठभाग—देवी पूर्ववत्, बायें हाथ में पत्तियाँ युक्त सनाल कमल, दाहिना हाथ रिक्त, चिह्न बाएँ कोने में, लेख 'सिंहमहेन्द्र' (फ० १२, २)।

तीसरा उपप्रकार[3]

(लेख 'कुमारगुप्तो युधि सिंहविक्रमः'[4])

(३) सोना, .८", १२५.६ ग्रेन, बयाना निधि, फ० २७,७

पुरोभाग—राजा दाहिने खड़ा, लेख सात बजे आरम्भ, 'र गुप्तो युध', एक बजे, 'सिंहविक्रम'। सात बजे 'कु' तथा 'म' का अवशेष प्रकट होता है, 'स' धनुष के सिरे तथा राजा के सिर के मध्य।

---

१. ब्रि० म्यू० कॅ० फ० ४, ६ ; इ० म्यू० कॅ० भा० १ फ० ६, ६।
२. ब्रि० म्यू० गु० डा० फ० ४, ९।
३. वही फ० १४, १०-१४ इं०, म्यू० कॅ० फ० १६,५।
४. इस लेख में कभी 'सिह' या 'सिङ्ह' कभी 'विक्रम' या 'विक्क्रम' मिलता है।

पृष्ठभाग—देवी पूर्ववत्, बायें हाथ में लम्बे नालयुक्त कमल, दाहिने हाथ से मुद्राएँ बिखेर रही है। बाईं ओर चिह्न, 'सिंहमहेन्द्र' अस्पष्ट (फ० १२,३)।

(४) सोना, .८", १२३.८ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० २७, ५

पुरोभाग—पूर्ववत्, राजा का शरीर अत्यन्त सुन्दर, बाईं ओर लेख, सीमा से बाहर, दाहिने 'युध सिन्हविक्र'। लेखपाठ में थोड़ा संदेह हैं मानना पड़ेगा कि उत्कीर्ण 'यु' अक्षर का ढंग थोड़ा सा विचित्र है, चूँकि एक बजे उस अक्षर का बाँया भाग मुद्रा से बाहर रह गया है और 'उ' मात्रा की शैली भी दूसरी है। आगे के तीन अक्षर 'धसन्ह' साफ तौर पर लिखे हैं।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, कमल नाल बीच में टेढ़ा (फ० १२,४)।

चौथा उपप्रकार

(राजा दाहिने तथा सिंह बायें)

(५) सोना, .८५", १२६.६ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० २७, १३

पुरोभाग—राजा बाईं ओर खड़ा, कुरल (घुँघराले) केश, छोटी बाँहवाला सुन्दर कोटज, जाँघिया (या आधा पैंट) तथा कमरबँध पहने, सामने सिंह पर बाण से आक्रमण करते हुए, लेख अधूरा तथा अस्पष्ट।

पृष्ठभाग—देवी घुटने टेके सिंह की पीठ पर बैठी, कमर पर अवलम्बित बायें हाथ में लम्बे नाल युक्त कमल, दाहिने हाथ में कोई अस्पष्ट वस्तु, नव बजे चिह्न, लेख 'श्रीमहेन्द्रसिन्ह' (फ० १२, ६)।

दूसरा वर्ग

[सिंह को लात से कुचलता हुआ राजा]

पहला उपप्रकार[1]

(मुद्रालेख 'साक्षादिव नरसिंहो सिन्हमहेन्द्रो जयत्यनिशम्')

(१) सोना, .७५", १२७.५ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० २६, १

पुरोभाग—राजा दाहिने, नग्न शरीर, पगड़ी तथा जाँघिया पहने, सिंह को लात से कुचलता तथा बाण से विद्ध करता हुआ, सिंह एक कुदान के साथ गिर रहा है, एक बजे लेख, 'साक्षादिव', आठ बजे—'न्द्र जयत्यनशम्'; अंतिम अक्षर राजा के सिरे पर।

पृष्ठभाग—देवी घुटने टेके सिंह की पीठ पर बैठी, दाहिने हाथ में पाश, बायें में कमल (जो कानुँकोपिया-सा प्रतीत होता है)। बाईं ओर चिह्न, लेख 'श्रीमहेन्द्रसिंह' (फ० १२, ७)।

---

१. ब्रि० म्यू० कॅ० गु० डा० फ० १४, ३; ज० रा० ए० सो० ७८ ९३ फ० ३,७।

(२) सोना, .८", १२६.६ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० २६, २

पुरोभाग—पूर्ववत्, एक बजे 'सत्त', सात बजे से 'सिंहमहेन्द्र जयत्यनशम्' अर्द्ध टूटे अक्षर।
पृष्ठभाग—पूर्ववत्, (फ० १२,८)।

दूसरा उपप्रकार
(लेख, अपूर्ण, 'कुमार' से प्रारम्भ)

(३) सोना .८", १२५.६ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० २६, ३

पुरोभाग—दाहिनी ओर राजा, बायें पैर से सिंह को कुचलता हुआ, धनुष पर का बाण स्पष्ट दीख पड़ता है, राजा के शरीर में आवेश और दृढ़ निश्चय, एक बजे लेख—'कुमार' अधूरा।
पृष्ठभाग—देवी घुटने टेके सिंह की पीठ पर बैठी, दाहिने हाथ में विचित्र माला[1] तथा जाँघ पर स्थित बाँयें हाथ में कमल, लेख 'सिंहमहेन्द्र', अधूरा अस्पष्ट (फ० १२,६)।

(४) सोना, .८", १२५.६ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० २६, ११

पुरोभाग—पूर्ववत्, 'कुमार' बिलकुल स्पष्ट, दो बजे।
पृष्ठभाग—पूर्ववत् (फ० १२,१०)।

(५) सोना, .८", १२६.३ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० २६,१४

पुरोभाग—राजा पीछे उतना झुका नहीं है जैसा ऊपर के दो सिक्कों में प्रकट होता है, शरीर में स्फूर्ति तथा दृढ़ विश्वास की अभिव्यक्ति, हाथ के ऊपर बाण, एक बजे लेख—'कुमार', अस्पष्ट।
पृष्ठभाग—चिह्न अस्पष्ट, माला साफ प्रकट होती है, लेख पूर्ववत्, किन्तु अधूरा (फ० १२, ५)।

(उ) व्याघ्रनिहन्ता प्रकार

यह प्रकार समुद्रगुप्त के दुष्प्राप्य सिक्कों में गिना जाता है, जिसकी कुमारगुप्त ने अपने शासनकाल में नवावतारणा की। कुमारगुप्त के इस प्रकार के सिक्के समुद्रगुप्त की मुद्राओं से बहुत-कुछ मिलते-जुलते हैं। पुरोभाग पर राजा बायें देख रहा है और मूल पर के प्रकार की पगड़ी तथा जाँघिया पहने हुए है। व्याघ्र को बाण से मार रहा है। दोनों के मध्य में अर्द्धचन्द्र सिरेवाला ध्वज है। दोनों के लेखों में काफी समानता है, किन्तु कुमारगुप्त के सिक्कों में, आरम्भ में 'श्री माँ(मान्) शब्द जोड़ दिया गया है और 'व्याघ्र' के पश्चात् 'बल' लेख का नया स्वरूप 'श्री माँ व्याघ्रबलपराक्रमः' होता है। (यशस्वी राजा जिसकी शक्ति तथा पराक्रम व्याघ्र की तरह है) समुद्रगुप्त के सिक्के पर पूरा लेख दाहिने था; किन्तु यहाँ 'श्रीमाँ' सदा बाईं ओर लिखा रहता है। 'मा' के ऊपर अनुस्वार किसी में भी दिखलाई नहीं पड़ता।

---

१. माला कुछ अंश में मुण्डमाला के समान दीखती है।

पृष्ठभाग तो समुद्रगुप्त के व्याघ्र प्रकार से थोड़ा प्रभावित है तथा कुछ अंशों में कुमारगुप्त के अश्वारोही प्रकार से। देवी मकर की पीठ पर खड़ी है, जैसा समुद्रगुप्त के व्याघ्रनिहंता प्रकार में है। किंतु वह अश्वारोही प्रकार के सदृश मोर को खिला रही है। चूँकि वह मोढ़े पर बैठी नहीं है, इससे मोर को खिलाते समय वह थोड़ा झुक गई है। मोर की उपस्थिति के कारण चन्द्रध्वज को हटा दिया गया है, जिसे हम समुद्रगुप्त के व्याघ्र-निहन्ता प्रकार में स्पष्ट देखते हैं। पृष्ठभाग का लेख समुद्रगुप्त के सिक्कों पर अंकित लेख का सुधरा हुआ स्वरूप है। यह 'कुमारगुप्तोधिराजा' पढ़ा गया है। 'राजा' शब्द से अधिराज शब्द सम्राट् के लिए अधिक उचित है। सम्भवतः यह परिवर्तन समझ-बूझ कर किया गया है[१]।

एक समय कुमारगुप्त के व्याघ्र-निहन्ता प्रकार तथा सिंहनिहन्ता में भ्रम हो गया था। किंतु पहला दूसरे की अपेक्षा कलात्मक दृष्टि से निस्संशय ही श्रेष्ठ है। राजा का आवेश उत्कृष्ट है और वह बड़ी कुशलता से दिखाया गया है।

पृष्ठभाग पर के अपने पालतू पक्षी को खिला रही देवी आधुनिक युग की ललना की तरह दीखती है। क्योंकि राजा बाईं ओर खड़ा दिखलाया गया है, इसलिए यह आवश्यक था कि राजा बायें हाथ से धनुष चलाते हुए दिखलाया जावे। क्या कलाकार सचमुच राजा को दोनों हाथों से समान कार्य करनेवाला व्यक्ति (सव्यसाची) प्रदर्शित करने का विचार रखते थे, यह कहना कठिन है।

इस प्रकार के सिक्के दो उपप्रकारों में विभाजित किये जाते हैं। पहले उपप्रकार में 'कु' अक्षर सिक्के पर अंकित है, दूसरे में नहीं है। पहले उपप्रकार के सिक्के अधिक संख्या में प्राप्त हुए हैं। बयाना-निधि में पहले उपप्रकार के ३३ तथा दूसरे उपप्रकार के ३ सिक्के मिले हैं। इस प्रकार के अधिकतर सिक्के १२७ ग्रेन तौल में हैं। कहीं हलके तौल १२१ या १२४ ग्रेन के सिक्के भी मिले हैं। इस प्रकार का विवरण निम्नलिखित है।

पुरोभाग—राजा बायें, जाकेट, पगड़ी, आभूषण पहने हुए, धनुष से बाण चला रहा है, दाहिने हाथ में धनुष है तथा बायें हाथ से प्रत्यंचा खींच रहा है, व्याघ्र बाईं ओर पीछे गिर रहा है, व्याघ्र की छाती को राजा अपने दाहिने पैर से कुचल रहा है, बाईं ओर फीता सहित चन्द्रध्वज, पहले उपप्रकार पर 'कु' लिखा है। दो बजे लेख आरम्भ 'श्रीमां व्याघ्रबलपराक्रमः'।

---

१. 'अधिराज' शब्द से महान् शक्ति का परिचय मिलता है। (हिमलयो नाम नगाधिराजः)। स्मिथ के कथनानुसार यह लेख बतलाता है कि वर्तमान सिक्का कुमारगुप्त के शासन के आरंभिक समय में निकाला गया था। किन्तु यह मत ग्राह्य नहीं है (ज० रॉ० ए० सो० १८९३ पृ० १२४)।

२. ज० रॉ० ए० सो० १८८९ पृष्ठ १०८।

पृष्ठभाग—देवी बाईं ओर मकर पर खड़ी, बायें हाथ में लम्बे नालयुक्त कमल, दाहिने से मोर को फल खिला रही है। चिह्न बाईं ओर[1] लेख—'कुमारगुप्तोधिराजा'।

पहला उपप्रकार[2]

(बाँह के नीचे 'कु' अक्षर)

(१) सोना, .८५", १२६.६ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० २७,१

पुरोभाग—पूर्ववत्, चन्द्रध्वज त्रिशूल के सदृश व्याघ्र के सिरे पर प्रकट होता है। लेख दस बजे 'श्रीमां' दो से पाँच बजे तक 'व्याघ्रबलपराक्रम'। राजा के बाँयें हाथ के नीचे 'कु', उसके ऊपर अर्द्धचन्द्र।

पृष्ठभाग—देवी की स्थिति बेढब, सिर के पीछे कमल स्पष्ट दिखलाई पड़ता है, बायें चिह्न, लेख दाहिनी ओर—'कुमारगुप्तोधिराजा' सभी मात्राएँ साफ प्रकट होती हैं। (फ०१२,११)।

(२) सोना, .८" ,१२६,३ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० २७,५

पुरोभाग—पूर्ववत्, राजा के शरीर में तीव्र आवेश, बाँयें हाथ के नीचे कु, चन्द्रध्वज की कोर और दंड स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं। दस बजे लेख-'श्रीमाँ' तीन बजे 'घ्र'।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, मकर का नथुना स्पष्ट दिखलाई पड़ता है, कमल ठीक तरह प्रदर्शित नहीं। बायें चिह्न, मुद्रालेख—'कुमारगुप्तोधिराजा (फ०१२,१२)।

दूसरा उपप्रकार

(विना 'कु' के)[3]

(१) सोना, .८", १२४ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० २७,१३

पुरोभाग—पूर्ववत्, राजा का सिर सामने झुका, दृढ़ निश्चय प्रकट करनेके लिए; दस बजे लेख 'श्रीमाँ', 'दो बजे 'व्याघ्रबलपराक' अस्पष्ट, 'त' या 'भ' के सदृश, एक अक्षर श्री से पूर्व उत्कीर्ण किस लिए है, यह कहना कठिन है। शायद वह चंद्रकोर भी होगी।

पृष्ठभाग—मगर का सिर तथा नथुना साफ दिखलाई पड़ता है, नालयुक्त कमल, लेख दाहिने 'कुमारगुप्तोधिराजा' (फ०१२,१३)।

---

१. हर्नले ने अंत्य शब्द को 'राज्ञ' पढ़ा था (ज० रॉ० ए० सो० १८९३ पृष्ठ १२३); किन्तु अन्तिम अक्षर 'ज' है, न कि 'ज्ञ'। व्याकरण के अनुसार भी पता लगता है कि 'कुमारगुप्तः' के कर्त्ता में होने पर आखिरवाला शब्द 'राजा' होगा, न कि 'राज्ञः'।

२. ब्रि० म्यू० कॅ० फ० १४,१५-१७, फ० ५, १-४; ज० रॉ०ए०सो० १८८९ फ० ३,५; इं० म्यू० कॅ० भा० १ फ० १६,४ ; न्यू० क्रॉ० १९१० फ० १५, १५।

३. ब्रि० न्यू० कॅ० गु० डा०, फ० १५ १४।

(ऊ) गजारोही प्रकार

बंगाल के महनद नामक स्थान में प्रथम कुमारगुप्त के और स्कन्दगुप्त के धनुर्धारी प्रकार के सिक्कों के साथ पहली गजारोही मुद्रा मिली थी और श्री ऍलन ने इसे प्रथम कुमारगुप्त का सिक्का बतलाया था[1]। उसका अनुमान बयाना-निधि से प्राप्त तीन सिक्कों से पुष्ट हो जाता है, जिनमें राजा का नाम और बिरुद स्पष्ट पढ़ा गया है।

इस प्रकार के सिक्के का संबंध आखेट से प्रायः रहता है। पुरोभाग पर राजा हाथी पर सवार है, जो तेजी के साथ बाईं ओर जा रहा है। राजा स्वयं महावत है, क्योंकि उस के हाथ में अंकुश है। पीछे छत्रधारी सेवक राजा के सिर पर छत्र उठाये हुए है। पृष्ठभाग पर कमल पर लक्ष्मी खड़ी है। उस ओर शंख भी दिखाई पड़ता है।

सिक्के का विवरण

पुरोभाग--राजा का अनावृत सिर, पट्टी बाँधे, हार, कर्णफूल, भुजबंध तथा कमरबंध पहने हुए है और पूरे साजवाले हाथी पर सवार है, जो तेजी से बाईं ओर जा रहा है। राजा के दाहिने हाथ में अंकुश है और बायाँ हाथ कमर पर रखा हुआ है। राजा के पीछे एक नौकर बैठा है, जो राजा के सिर पर छत्रधारण किये हुए है। वर्तुलाकार मुद्रालेख अधूरा, सम्भवतः 'क्षतरिपुकुमारगुप्तो राजत्राता जयति रिपून्' है (कुमारगुप्त, जिसने शत्रुओं को नष्ट किया है और सामंतों की रक्षा की है, सदा शत्रुओं पर विजयी हो)। छंद—उपगीति।

पृष्ठभाग—बिन्दुविभूषित वर्तुल में, लक्ष्मी प्रभामंडित, कमल पर सम्मुख खड़ी, कुण्डल, हार, कंकण, पायल तथा साड़ी पहने, चिपटी पगड़ीनुमा, चादर के आंचल दोनों तरफ गिरते हुए; दाहिने हाथ में कली तथा पुष्प से युक्त कमलनाल, बायें में कॉर्नुकोपिया, चिह्न अविद्यमान, शंख दाहिने कोने में, लेख 'श्रीमहेन्द्रगजः'।

फलक के सिक्के

(१) सोना, .८५", १२६.१ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० ३१,२

पुरोभाग—छत्र स्पष्ट दिखलाई पड़ता है, सेवक के पीछे लेख 'न् क्षतरप', हाथी के पिछले पैरों के बीच 'कु' अस्पष्ट, हाथी से नीचे 'रगुप्त', हाथी के सिर से ऊपर 'तरिपु'।

पृष्ठभाग--कॉर्नुकोपिया अस्पष्ट, लता से नीचे भी खिला हुआ कमल पुष्प, बाईं ओर शंख। (फ० १२, १४)।

(२) सोना, .८", १२५.४ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० ३१,३

पुरोभाग—छत्र का दंड तथा फीता स्पष्ट, लेख पूर्ववत् 'क्षतरिपु', नीचे अक्षर अस्पष्ट, हाथी के सिर पर 'तरपु'।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, (फ० १२,१५)।

---

१. ब्रि० म्यू० कॅ० गु० डा० पृ० ८८।

(ऋ) गजारूढ-सिंहनिहन्ता प्रकार

१६१७ ईसवी में डा० हीरानंद शास्त्री ने इस प्रकार का पहला सिक्का प्रकाशित किया था[१]; जिसका नमूना लखनऊ संग्रहालय में बिकने के लिए आया था और उसी समय सिक्के की आकृति ढाल ली गई थी। वह अच्छा नमूना नहीं था और न उस पर का लेख ही पढ़ा जा सका था। बयाना-निधि में ऐसे चार सिक्के निकाले गये, जिनके सहारे लेख पूरा पढ़ा जा सका है। सभी सिक्के १२७ ग्रेन तौल के बराबर तैयार किये गये थे। इस प्रकार का सामान्य वर्णन निम्नलिखित है—

पुरोभाग—राजा अनावृत सिर, सजे हुए हाथी पर सवार, जो दाहिने तेजी से बढ़ रहा है। राजा हाथ उठाये हुए है और आक्रमण करने के लिए कटार लिये हुए है। पीछे वामन सेवक राजा के सिरे पर छत्र लिये खड़ा है; हाथी के सामने सिंह है, जिसे हाथी बायें पैर से कुचलना चाहता है। सिंह मुँह खोले हुए हाथी के अगले दाहिने पैर को काटने का प्रयत्न कर रहा है। वर्तुलाकार मुद्रालेख अधूरा तथा अस्पष्ट, उसका आरंभ 'क्षत' से होता है। सम्भवतः यह गजारूढ़ प्रकार के सदृश ही प्रकट होता है—'क्षतरिपु कुमारगुप्तो राजत्राता जयति रिपून्'। उपगीति छंद।

पृष्ठभाग—देवी प्रभामंडलयुक्त, कर्णफूल, हार, कंकण, भुज-बँध पहने हुई है, केश ग्रंथि के रूप में बँधे हैं। देवी कमल पर तीन चौथाई दाहिने खड़ी है और बायें देख रही है। दाहिने हाथ में वह कुछ अस्पष्ट वस्तु लिये हुए है, जिसको सामने का मोर देख रहा है, बाँया हाथ कमर पर अवलम्बित है, लम्बे सनाल कमल लिये हुए है। देवी साड़ी पहने तथा चादर लिये हुए है, जिसका अंतिम भाग दोनों ओर लटक रहा है। चिह्न अविद्यमान, लेख कुछ दाहिनी तथा कुछ बाईं ओर, 'सिङ्हनिहन्ता महेन्द्रगजः' (महेन्द्र का हाथी सिंह का नाशक है)।

फलकस्थित सिक्कों का वर्णन

(१) सोना, .८", १२६.८ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० ३०,२

पुरोभाग—राजा के सिर पर छत्र दिखलाई पड़ता है, हाथी का शरीर सुन्दर है तथा वह क्रोध में सूँढ़ उठा रहा है। सिक्के पर सिंह थोड़ा-सा दिखलाई पड़ता है। हाथी का अगला बाँया पैर सिंह की पीठ पर रखा जा रहा है। मुद्रा-लेख बारह बजे आरम्भ—'क्षत', नव बजे 'यतर', दस पर 'पून्'।

पृष्ठभाग—मोर का सिरा स्पष्ट है, देवी का शरीरोर्ध्वभाग सुन्दर है, किंतु पैर कुछ बेढब है। चिह्न अविद्यमान, दस बजे लेख 'सिंह न', तीन बजे 'हन्ता महेन्द्रगज', कुछ अस्पष्ट (फ०१३,१)।

---

१. ज०ए० सो बं० १९१७ पृ० १५५। यह सिक्का लखनऊ संग्रहालय द्वारा खरीदा न जा सका; अतः इसका पता नहीं है।

(२) सोना, .७५", ११५.२ ग्रेन, (घिसा हुआ), बयाना-निधि, फ० ३०, ३

पुरोभाग—सेवक की भद्दी आकृति, छत्र सीमा से बाहर, सिंह पूरी तरह से प्रदर्शित, उसका मुँह (जबड़ा) स्पष्ट, जो हाथी के पैर को काटने के लिए खुला हुआ है, लेख अधूरा तथा अस्पष्ट, 'चत' बारह बजे, सिक्का दो बजे पर फटा है।

पृष्ठभाग—मोर का सिर स्पष्ट प्रकट नहीं होता, दाहिने तथा बायें लेख 'हन्ता महेन्द्रगज' (फ० १३,२)।

(ऋ) खड्गनिहन्ता (गैंड़ा मारनेवाला) प्रकार

प्रथम कुमारगुप्त के आखेट के प्रसंग में गैंड़ा मारनेवाला सिक्का एक सर्वथा नया प्रकार उपस्थित करता है। यह १९४६ ई० में बयाना-निधि से सर्वप्रथम ज्ञात हुआ, जब चार सिक्के लेखक द्वारा प्रकाश में लाये गये। १९४८ ई० में लखनऊ-संग्रहालय द्वारा एक ऐसा ही सिक्का खरीदा गया, जो जे० एन० एस० आई० भा० ११ पृ० ३-१० फलक ३, ७ पर प्रकाशित किया जा चुका है।

यह प्रकार अद्वितीय तथा कला पूर्ण है। पुरोभाग पर राजा घोड़े पर सवार है तथा तलवार से गैंड़ों को मार रहा है। लेख छंदोबद्ध है, जिसमें 'खड्ग' शब्द का श्लेषात्मक प्रयोग किया गया है। उस शब्द का अर्थ तलवार तथा गैंड़ा दोनो होता है। मुद्रालेख इस प्रकार है—'भर्त्ता खड्गत्राता कुमारगुप्तो जयत्यनिशम्'। 'कुमारगुप्त सदाविजयी हो जो खड्गत्राता है, अर्थात् तलवार (खड्गेन त्राता) से रक्षा करता है अथवा गैंड़ा के आंतक से (खड्गात्) बचाता है।' पृष्ठभाग भी अपूर्व है। देवी के पीछे सेविका है, जिसने छत्र धारण किया है। खड़ी देवी को हाथी का सिरवाला मकर कमल भेंट कर रहा है।

इस प्रकार के सिक्के १२७ ग्रेन तौल के बराबर निकाले गये थे। उसका वर्णन निम्नलिखित है—

पुरोभाग—राजा के अनावृत सिर पर लच्छेदार अलकें हैं। वह जीन से सजे घोड़े पर सवारी कर रहा है तथा बटनदार कोट तथा पायजामा पहने हुए है, उसका शरीर आगे की ओर झुका है तथा वह दाहिने हाथ में तलवार लेकर गैंड़ा को मार रहा है। घोड़ा कुछ भयभीत होकर ऊपर सिर उठाये हुए है। डटकर सामना करने के लिए गैंड़ा खड़ा है और चढ़ाई करने के निमित्त पीछे देख रहा है। उसका मुँह खुला हुआ है, उसकी आकृति वास्तविक तथा सुन्दर उत्कीर्ण है। सिर पर का सींग, बाईं आँख, दोनों कान, शरीर पर के वर्तुल गोल बिन्दु, पूँछ तथा चारों पैर अच्छी तरह दिखलाई पड़ते हैं। वर्तुलाकार मुद्रालेख 'भर्त्ता ? खड्गत्राता कुमारगुप्तोजयत्यनिशम्'।

पृष्ठभाग—बिंदु विभूषित वर्तुल में देवी गंगा प्रभामंडल-रहित, बाईं ओर, हाथी के सिरवाले मकर पर खड़ी, लम्बे नालयुक्त कमल लिये हुए, दाहिना हाथ फैला हुआ, उँगलियों से किसी वस्तु की ओर संकेत कर रही है, जो सिक्के पर अन्तर्भूत नहीं हो पाई है। बायाँ हाथ बगल में लटक रहा है। सिर के केश ग्रंथि के रूप में बंधे हैं, कर्णफूल, हार तथा कंकण पहने ; सेविका पीछे से छत्रधारण किये हुई है, उसका दंड बिन्दुदार लकीर से व्यक्त, बायाँ हाथ कमर पर, दाहिने चिह्न, लेख बाईं ओर—'श्री महेन्द्रखड्ग'।

फलकस्थित सिक्कों का विवरण

(१) सोना, .७५", १२७.१ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० ३०, ५

पुरोभाग—राजा का सिर कुछ सीमा से बाहर, कोट के बटन स्पष्ट, गैंड़े के चारों पैर दीख पड़ते हैं, एक बजे से लेख 'त कुमारगुप्तोजयत्य'।

पृष्ठभाग—कमलनाल कुछ-कुछ दीख पड़ता है, लेख बाईं ओर 'श्रीमहेन्द्रखड्ग' (फ० १३, ३)।

(२) सोना, .७५", १२५.४ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० ३०, ६

पुरोभाग—कोट का बटन अत्यंत स्पष्ट, गैंड़े के पैर कुछ-कुछ दीख पड़ते हैं। लेख दस बजे 'खड्गत्राता कुमारगुप्त ज',कुछ अस्पष्ट।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, देवी का पैर घुमाया हुआ है, सम्भवतः वह दाहिने देखना चाहती है, किन्तु वास्तव में बायें देख रही है। इस सिक्के पर संकेत करती हुई उँगली स्पष्ट नहीं है, हाथी के सिरवाले मकर के नथुने में कमल साफ दीख पड़ता है, देवी के दाहिने हाथ में कमल स्पष्ट है, सेविका ऊँची है, उसका वक्षस्थल उन्नत है, लेख 'श्रीमहन्द्रखग' अस्पष्ट है; किन्तु 'खग' साफ पढ़ा जाता है। दाहिने चिह्न। (फ० १३, ४)।

(३) सोना, .८", १२८. १ ग्रेन, बयाना-निधि, फ०३०, ७

पुरोभाग—इस सिक्के पर राजा के कोट-बटन स्पष्ट नहीं दीख पड़ते है ; गैंड़े के शरीर का निचला भाग तथा पैर कटा हुआ है। लेख नौ बजे आरम्भ 'भत्त खगत्राता' लेख में महत्त्व का अक्षर 'ख' राजा के दाहिने कंधे के ऊपर स्पष्ट पढ़ा जा सकता है।

पृष्ठभाग—देवी कुछ दाहिनी ओर घूम गई है, यद्यपि वह वास्तव में बाईं ओर देखती है, मकर अच्छी तरह से दीख पड़ता है, उसके नथुने में कमलनाल वर्त्तमान है, कमल चार बिन्दुसमूह से व्यक्त किया गया है, सेविका की आकृति अस्पष्ट है;

किन्तु छत्र की डंडेवाली लकीर बिलकुल साफ है। लेख बाईं ओर 'श्रीमहन्द्रखग'; अंतिम दो अक्षर धुँधले हैं (फ० १३, ५)।

४ सोना, .८", १२६.१ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० ३०, ८

पुरोभाग—कोट का बटन स्पष्ट, गैंड़े का पैर सीमा के बाहर, उसके चेहरे का क्रोध दर्शनीय है और वह साफ तौर पर प्रकट हो रहा है, नव बजे से लेख 'भत खगतत' (भर्त्ता खड्गत्राता)। दाहिने कंधे के ऊपर 'ख' अक्षर का चौड़ा त्रिभुजाकार नीचे का हिस्सा दिखलाई पड़ता है।

पृष्ठभाग—मकर की पूँछ तथा नथूने स्पष्ट,कमलनाल पकड़े हुए,सभी स्पष्ट हैं; सेविका वामन, दाहिने चिन्ह कुछ अस्पष्ट, लेख बाईं ओर 'श्री महन्द्खग' (फ० १३,६)।

(लृ) अश्वमेध प्रकार

ऐतिहासिक प्रशस्तियों में कहीं भी ऐसा वर्णन नहीं आता कि प्रथम कुमारगुप्त ने अश्वमेधयज्ञ किया था; किन्तु सिक्के से यह प्रमाणित होता है कि उसने एक अश्वमेध अवश्य किया था। अश्वमेध प्रकार के सिक्के दुष्प्राप्य हैं। पहले ब्रिटिश संग्रहालय में इस प्रकार के दो सिक्के थे,उनमें एक तो मथुरा से खरीदा गया था; किन्तु दूसरे का प्राप्तिस्थान अज्ञात है। १९४६ई० में लेखक-द्वारा बयाना में चार ऐसे सिक्कों का पता लगाया गया तथा १९४८ ई० में लखनऊ-संग्रहालय द्वारा इस प्रकार का एक सिक्का खरीदा गया।

ब्रिटिश संग्रहालय के सिक्के के पुरोभाग में घोड़ा जीन आदि से सुसज्जित दीख पड़ता है, वह अनावृत नहीं है, जैसा समुद्रगुप्त के अश्वमेध सिक्के का घोड़ा। किंतु बयाना-निधि में अभी दो सिक्के मिले हैं, जो समुद्रगुप्त के नकल पर हैं। पुरोभाग का लेख, जो शायद गद्य में था, अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है, 'देवो जितशत्रु कुमारगुप्तोधिराजा'। (राजा कुमारगुप्त राजाओं का राजा, जिसने शत्रु को जीता है)। इस लेख में हमें जो प्रारम्भिक अक्षर मालूम होता है, उसे श्री ॲलन अंतिम अक्षर समझते हैं। उनके मतानुसार लेख 'जयति दिवं कुमार-गुप्तः' से समाप्त होना चाहिए। बयाना-निधि के नये सिक्कों में घोड़े के नीचे 'कुमार' और उसके पीछे 'गुप्तोधिराजा' स्पष्ट पढ़ा जा सकता है। इसलिए पूरा मुद्रालेख, जैसा हमने ऊपर निश्चित किया है, वैसा ही होगा। पृष्ठभाग का मुद्रालेख 'श्री अश्वमेधमहेन्द्रः' है।

कला की दृष्टि से पितामह समुद्रगुप्त के सिक्कों के सामने प्रथम कुमारगुप्त के सिक्के फीके पड़ते हैं। समुद्रगुप्त के सिक्के पर घोड़ा भव्य तथा सुन्दर दिखलाई पड़ता है; किन्तु कुमारगुप्त के सिक्के पर का सुसज्जित या अनावृत घोड़ा उससे सर्वथा निकृष्ट है। यज्ञ-यूप भद्दा है,जिसमें न उसकी रशना और न चषाल ही दिखलाई पड़ता है। समुद्रगुप्त के अश्वमेध सिक्के पर घोड़े के नीचे 'सि' अक्षर वर्तमान है, जो कुमारगुप्त के सिक्के पर अविद्यमान है। पृष्ठभाग पर रानी की आकृति भी स्थूल और झुकी हुई तथा मोटी है। यह समुद्रगुप्त की रानी से बहुत

ही निकृष्ट है, जो अत्यन्त सुन्दर, लम्बी, आकर्षक तथा कोमल है। इस प्रकार के सभी सिक्के तौल में १२७ ग्रेन के बराबर हैं। इस प्रकार के दो उपप्रकार हैं। पहले उपप्रकार में घोड़ा सुसज्जित है और दाहिनी ओर देख रहा है तथा दूसरे में वह अनावृत है और बाईं ओर देख रहा है।

फलकस्थित सिक्के का विवरण

पहला उपप्रकार

(घोड़ा सुसज्जित)

(१) सोना, ८", १२६·७ ग्रेन, बयाना निधि, फ० ३०, ६

पुरोभाग—सुसज्जित घोड़ा दाहिने यूप के सामने खड़ा है, वह सीमा के बाहर है, उसका चबूतरा स्पष्ट है, घोड़े के सिरे पर ध्वज फहरा रहा है; वर्तुलाकार मुद्रालेख अपूर्ण। नव बजे आरम्भ 'दवजत सत्रकमर' (देवो जितशत्रुकुमार), पहले चार अक्षर पूँछ के ऊपर, ये ध्वज के द्वारा अंतिम पाँच अक्षरों से पृथक् किये गये हैं।

पृष्ठभाग—बिंदुविभूषित वर्तुल में रानी, बाईं ओर खड़ी, साड़ी तथा चादर पहने, दाहिने हाथ में चंवर लिये हुए, दाहिने कन्धे के ऊपर, बायाँ हाथ नीचे लटकता हुआ, तौलिया लिये हुए, रानी के सम्मुख यज्ञ-सूचि, फीता नीचे, लेख अधूरा, 'श्री अश्वमेधमहेन्द्रः', चिह्न विद्यमान (फ० १३,७)।

(२) सोना, .८", १२७·६ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० ३०, १०

पुरोभाग—दाहिने सुसज्जित घोड़ा, पहले की तरह, यूप तथा कुछ चबूतरा दीख पड़ता है, घोड़े के ऊपर ध्वज, नव तथा एक बजे के मध्य अस्पष्ट अधूरा लेख, 'देव जतशत कम' (देवो जितशत्रुः) [कुमारगुप्तोधिराजा]

पृष्ठभाग—रानी बाईं ओर खड़ी, बायाँ पैर झुका हुआ, लेख अस्पष्ट, 'श्री अश्वमेधमहेन्द्रः' (फ० १३, ८)।

दूसरा उपप्रकार

(घोड़ा असज्जित)

(३) सोना, .८५", १२६.७ ग्रेन, बयाना निधि, फ० ३०, ११

पुरोभाग—घोड़ा असज्जित, बायें खड़ा, सामने यूप तथा चबूतरा, ऊपर ध्वज फहराता हुआ, लेख पहले उपप्रकार की तरह, ग्यारह बजे आरम्भ 'दव जतसत,' घोड़े के नीचे 'कुमारगुप्तोधिराजा' (देवोजितशत्रु कुमारगुप्तोधिराजा)।

पृष्ठभाग – रानी बाईं ओर खड़ी, दाहिने हाथ में चँवर लिये हुए दाहिने कंधे पर, बायें हाथ में तौलिया नीचे लटकता हुआ, चिह्न अविद्यमान, मुद्रालेख 'श्रीअश्वमहेन्द्रः' (फ० १३, ९)।

(४) सोना, .८५", १२६.५ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० ३०, १२

पुरोभाग–असज्जित घोड़ा बायें खड़ा, यूप तथा चबूतरा स्पष्ट, बारह बजे लेख 'दव जतशत्रु कु', घोड़े के नीचे 'मरगुप्त' (देवो जितशत्रु कुमारगुप्तोधिराजा)।

पृष्ठभाग––रानी पूर्ववत्, उसकी आकृति अस्पष्ट, बायें हाथ में तौलिया रस्सी की तरह लटकता हुआ, सिरे पर मोड़, चिह्न अविद्यमान, लेख 'श्री अश्वमेधमहेन्द्रः' (फ० १३,१०)।

(लृ) कार्तिकेय प्रकार[1]

कुमारगुप्त का नामकरण कुमार या कार्तिकेय के नाम से हुआ था, अतएव कार्तिकेय प्रकार महाराजा का एक नया आविष्कार था, जिससे उस देवता के प्रति आदर का भाव प्रदर्शित किया गया है। शायद कुमारगुप्त को शासन के पिछले समय में इस प्रकार के सिक्के निकालने का विचार आया हो, इस कारण इस तरह के सिक्के अधिक संख्या में नहीं मिलते। बयाना निधि में कुमारगुप्त के ६२८ सिक्कों में से केवल तेरह सिक्के इस प्रकार के प्राप्त हुए हैं, जहाँ धनुर्धारी प्रकार के १८३ तथा अश्वारोही प्रकार के ३०५ सिक्के मिले हैं[2]।

इस सिक्के के पुरोभाग में हमें राजा मोर को खिलाता हुआ दिखलाई पड़ता है[3]। पृष्ठभाग पर कार्तिकेय वाहन के रूप में है। पुरोभाग का लेख सम्पूर्ण रूप में अभी तक नहीं पढ़ा गया है। यह 'जयति स्व गुणैर्गुण'[4] से आरम्भ तथा 'महेन्द्रकुमार' से समाप्त होता है [राजा महेन्द्रकुमार विजयी हो अपने गुण से]। पृष्ठभाग पर कार्तिकेय अपने वाहन मोर

---

१ सुवर्ण सिक्कों के प्रकारों का नाम पुरोभाग पर अंकित दृश्य के ऊपर स्थित किया गया है। इसलिए यह प्रकार 'मयूर' के नाम से प्रसिद्ध है; क्योंकि राजा मोर को खिला रहा है। किंतु इस प्रकार की मुद्रा में कार्तिकेय का आदर अभिप्रेत था, इसलिए उसकी मूर्त्ति पृष्ठभाग पर उत्कीर्ण है। अतः इस प्रकार को 'कार्तिकेय' प्रकार मानना उचित होगा।

२ इलाहाबाद में मिले हुए ३०० सिक्कों की निधि में प्रायः सब मुद्राएँ कार्तिकेय प्रकार की थीं, ऐसा स्मिथ ने कहा है। किन्तु वह विधान प्रामाणिक नहीं है। कनिंघम ने यह निधि देखी थी; किंतु उसे उसकी जाँच करने का मौका नहीं मिला था। ज० ए० सो० बं०, १८८४, पृ० १५२।

३ हर्नले का मत था कि कुछ सिक्कों पर दो मोर की आकृतियाँ वर्तमान हैं, उसे स्वीकार नहीं कर सकते। ज० रॉ० ए० सो० १८९३ पृ० १२१।

४ श्रीॲलन ने दूसरा शब्द सूचीपत्र में 'स्वभूमौ' पढ़ा है; किंतु एक अच्छी मुद्रा पर के लेख के आधार से उन्होंने अपने को सुधारकर 'स्वगुणै' पढ़ा (न्यू० क्रॉ० १९३५ पृ० २२५); डॉ० शास्त्री ने सुझाव दिया था कि मध्य का शब्द 'शत्रु निहन्ता' है (ज० ए० सो० बं १७३५ पृ० १५); किन्तु बयानानिधि के सिक्कों में 'गुणैर्' के बाद 'गण' ही अंकित किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि यह सुझाव अग्राह्य है।

पर बैठा है [1] तथा बायें हाथ में शक्ति (भाला) लिये हुए है। दाहिने हाथ से कोई चीज बिखेर रहा है, सामने यज्ञवेदी के सदृश वस्तु दीख पड़ती है।

इस प्रकार में दो उपप्रकार प्रकट होते हैं। पहले में राजा पुरोभाग पर सीधे खड़ा है और पृष्ठ की ओर कार्तिकेय की तीन-चौथाई बाईं ओर आकृति बनी हुई है। दूसरे उपप्रकार में राजा कुछ झुका हुआ है तथा कार्तिकेय सामने देख रहा है। पहला उपप्रकार दूसरे से अधिक लोकप्रिय था। एक सिक्के में, जिसे डॉ० हीरानन्दशास्त्री ने प्रकाशित किया था, राजा पुरोभाग पर दोनों पैरों को अड़ाकर टेढ़ा खड़ा है [2]। इस प्रकार के सभी सिक्के तौल में १२७ ग्रेन के बराबर हैं। सिक्कों का वर्णन निम्नलिखित है—

पुरोभाग—राजा प्रभामंडलयुक्त खड़ा है, अनावृत सिर तथा शरीर, कमर से कमरबंध लटक रहा है, कच्छानुमा धोती पहने हुए, आभूषणसहित [3], दाहिने हाथ से सामने मोर को अंगुर का गुच्छा दे रहा है, बायाँ हाथ कमर पर, लेख एक बजे आरम्भ 'जयति स्वगुणैर्गुण', उसके अंत में 'महेन्द्रकुमार' लिखा है (अपने गुणों से विजयी महेन्द्रकुमार)।

पृष्ठभाग— कार्तिकेय प्रभामण्डलयुक्त, मोर पर सवार, कंधे पर के बायें हाथ में भाला, हाथ कंधे पर, सामने किसी चीज पर दाहिने हाथ से कुछ बिखेर रहा है, मोर एक चबूतरे पर बैठा है। चिह्न विद्यमान, लेख 'महेन्द्रकुमारः'।

फलकस्थित सिक्कों का वर्णन

पहला उपप्रकार

(राजा सीधे खड़ा है, कार्तिकेय तीन-चौथाई बाईं ओर)

(१) सोना, .८", १२५.३ ग्रेन, बयाना निधि, फ० २६, १

पुरोभाग—मोर सिक्के पर थोड़े अंश में वर्तमान, अंगुर का गुच्छा स्पष्ट, एक बजे लेख 'जयति स्वगुणैर गुण' दस बजे 'कुमार'।

पृष्ठभाग—कार्तिकेय तीन-चौथाई बाईं ओर, दाहिना हाथ वेदी के ऊपर खुला हुआ, लेख अस्पष्ट (फ० १३, ११)।

(२) सोना, .८", १२७.२ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० २६, ३

पुरोभाग—मोर अस्पष्ट, लेख 'जयतस्वगुणैर्गुण' के बाद के अक्षर स्पष्ट नहीं।

---

१ चित्र का वक्षस्थल इतना उभरा है कि स्मिथ ने इसे स्त्री की आकृति बतलाया है। किन्तु दाहिने हाथ में शक्ति से कार्तिकेय प्रकट होता है। किसी सिक्के पर कुमारगुप्त की भी छाती उन्नत है। यहाँ वह ऐसी ही उभरी है।

२ ज० ए० सो० बं० १९१७ पृ० १५४ फ० ७, २।

३ राजा के सिर पर नुकीला आभूषण भी दीख पड़ता है।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, लेख 'महेन्द्रकु' (फ० १३, १२)।

(३) सोना, .८", १२६.६ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० २६, ६

पुरोभाग—पूर्ववत्, लेख एक बजे 'जयति स्वगुणै गुण रय'[1] दस बजे 'महेन्द्रकुमारः'।

पृष्ठभाग—पूर्ववत् (फ० १३, १३)।

दूसरा उपप्रकार[2]

(राजा कुछ झुका हुआ, कार्तिकेय सामने)

(१) सोना, .८", १२७.० ग्रेन, बयाना-निधि, फ० २६, १२

पुरोभाग—राजा सामने की ओर कुछ झुका हुआ, हाथ में अंगूर नहीं, दाहिना हाथ मोर के सिर के ऊपर, वह मोर की ओर इशारा कर रहा है, लेख अस्पष्ट, 'जयतस्वगुर्णगुण (रविन्दः) कुमारः'।

पृष्ठभाग—मोर का चबूतरा साफ दीख पड़ता है, दाहिना हाथ खुला; किन्तु कोई वस्तु गिरती नहीं प्रकट होती, लेख अस्पष्ट (फ० १३, १४)।

(ए) छत्रप्रकार

छत्र प्रकार के सिक्के द्वितीय चन्द्रगुप्त के समय में अत्यन्त लोकप्रिय थे; किन्तु उसके पुत्र कुमारगुप्त ने उन्हें बड़ी संख्या में नहीं निकाला। बयाना-निधि से पहले इस प्रकार का कोई सिक्का ज्ञात ही नहीं था और उसमें भी केवल दो सिक्के ही प्राप्त हुए हैं। यह छत्र प्रकार द्वितीय चन्द्रगुप्त के छत्र प्रकार का अक्षरशः अनुकरण है। पुरोभाग का लेख पूरा उत्कीर्ण नहीं हो पाया है। वह 'जयति महीतलम्' से आरम्भ होता है (राजा पृथ्वी का विजेता)। इस प्रकार की तौल १२७ ग्रेन है।

फलकस्थित सिक्के का विवरण

(१) सोना, .८", १२६.१ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० २६, १४

पुरोभाग—राजा प्रभामंडलयुक्त, बाईं ओर खड़ा, धोती, हार, कर्णफूल पहने हुए, अर्ध शरीर तथा सिर अनावृत, घुँघराले केश नीचे लटक रहे हैं। दाहिने हाथ से वेदी पर राजा आहुति दे रहा है, वह भी सीमा के बाहर। राजा के पीछे वामन, जिसके बाल लच्छेदार हैं। वह पीछे खड़ा है तथा दाहिने हाथ में छत्र धारण किये हुए है, बायाँ हाथ बायें पैर पर रखा हुआ है, एक बजे लेख अधूरा, 'जयत महत' (जयति-महीतलम्)।

---

१. ब्रि० म्यू० कॅ० गु० डा० फ० १५, ५—११; ज० ए० सो० बं० १८८४ फ० ४, १; ज० रॉ० ए० सो० १८८९ फ० ३, १।

२. ब्रि० म्यू० कॅ० गु० डा० फ० १५, १२-१४

पृष्ठभाग—देवी बाईं ओर खड़ी, प्रभामंडलयुक्त, कुण्डल, हार और कंकण पहने हुए, दाहिने हाथ में पाश, बायें हाथ में लम्बे नालयुक्त कमल, जो बायें लटक रहा है; बायें चिह्न, लेख—'श्रीमहेन्द्रादित्य' (फ० १३,१५)।

(ऐ) अप्रतिघ प्रकार

अप्रतिघ प्रकार प्रथम कुमारगुप्त का एक नये प्रकार का सिक्का है, जिसके रहस्य और सार्थकता के विषय में अभी तक कुछ पता न लग सका। पहले मुद्राशास्त्रज्ञ इसे राजा तथा दो रानी प्रकार का सिक्का कहते थे; क्योंकि उनलोगों ने कुमारगुप्त की दोनों ओर स्त्रियों की आकृतियाँ समझी थीं; पर यह अनुमान गलत है। दाहिनी ओर तो स्त्री की आकृति है; किन्तु बाईं ओर पुरुष की मूर्त्ति है। वह शरीर के पास एक ढाल लिये हुए है। इस कारण स्त्री के वक्षस्थल का आभास मिलता है।

श्री ऍलन ने अपने सूचीपत्र में इसे 'प्रताप' सिक्का कहकर वर्णन किया है। क्योंकि उन्होंने पृष्ठभाग पर 'श्रीप्रताप' पढ़ा था। बयाना-निधि में प्राप्त सिक्कों से यह प्रकट होता है कि पृष्ठभाग पर का लेख 'श्रीप्रताप' नहीं है, वरन् 'अप्रतिघ' है। चूँकि इसके रहस्य को कोई समझ नहीं सका है, इसलिए इस प्रकार के सिक्के को 'अप्रतिघ' का नाम दिया है। अभी तक पुरोभाग के मुद्रालेख का पढ़ना सम्भव नहीं हो सका है। शायद वह बारह बजे आरम्भ होता है। पहले पाँच अक्षर 'प्रताप पर' पढ़े जा सकते हैं, अगले तीन अक्षर अस्पष्ट हैं, जिन्हें प्रोफेसर मिराशी ने 'म', 'ध' तथा 'र' पढ़ा है। वे मानते हैं कि आठ अक्षर मिलकर अनुष्टुप का अर्द्ध श्लोक 'प्रतापपरमाधारः' हो जाता है। किन्तु छठे अक्षर को 'म' मानना कठिन है। छठा, सातवाँ तथा आठवाँ अक्षर संख्या ५०, ७ या ५० तथा २ के सदृश दीखते हैं; किन्तु मुद्रालेख के बीच में अंक अभी तक नहीं पाये गये हैं। प्रोफेसर मिराशी ने 'प्रतापपरमाधरः' के पश्चात् 'श्री प्रथमक्रमाक्रमवपुः' पढ़ा है, जो शार्दूलविक्रीडित छंद के पद का एक अंश-सा मालूम होता है। एक ही मुद्रालेख में प्रथम अनुष्टुप का चरण और पीछे शार्दूलविक्रीडित का अंश होना सर्वथा असम्भव है। किन्तु उनका सार्थक शब्दसमूह बनाना अशक्यप्राय है। मुद्रालेख के रहस्य को समझने के लिए तब तक प्रतीक्षा करनी होगी, जब तक कोई दूसरी मुद्रा न प्राप्त हो, जिसपर का लेख स्पष्ट रूप में पढ़ा जाय।

इस प्रकार के सिक्के का विवरण निम्नलिखित है—

पुरोभाग—एक पुरुष बीच में खड़ा है, धोती पहने, जिसकी चुनन पैरों के मध्य लटक रही है, छाती पर हाथ प्रार्थना के रूप में जोड़े हुए, सिर पर एक ग्रंथि की तरह ऊँचा आकार, जो बुद्ध-प्रतिमा में मिलता है; अथवा केश-ग्रंथि। उसके दाहिने एक स्त्री, जो बाईं ओर खड़ी है, सिर पर केशों की गाँठ बँधी है, साड़ी तथा चोली पहने, कमर पर बायाँ हाथ रखे, दाहिना हाथ ऊपर उठे हुए, जो वितर्क मुद्रा में है, उसकी उँगलियाँ बीच के व्यक्ति को मानो स्पर्श कर रही हैं। दाहिने एक पुरुष की आकृति,

चुस्त टोपी पहने, बायें हाथ में ढाल लिये, सामने दाहिने हाथ में गरुड़ध्वज, जो बीच की आकृतिके पीछे है, मध्य व्यक्ति के दोनो ओर लंबवत् मुद्रालेख, किंतु अक्षरों का सिर दाहिने या बायें न ऊपर की ओर। दाहिने सिरे से सतह की ओर 'कुमार', बायें नीचे से ऊपर की ओर 'गुप्त' लिखा हैं। कोई व्यक्ति प्रभामंडलयुक्त नहीं। वर्तुलाकार मुद्रालेख बारह बजे से, 'प्रतपपर' 'प्रतापपर' के लिए, अगला भाग अस्पष्ट।

पृष्ठभाग—बिन्दुविभूषित वर्तुल में देवी लक्ष्मी, प्रभामंडलयुक्त, खिले दोहरे सुन्दर कमलासन पर बैठी हुई, बायाँ हाथ कमर पर जिसकी केहुनी ऊपर उठी है, दाहिना हाथ ऊपर मुड़ा हुआ तथा लम्बे नालवाला कमल लिये,कमल की दो कलियाँ सतह पर, चिह्न मध्य में, जो नाभ्म को छिपा देता है, अधिकतर सिक्के में दाहिने ऊपर की ओर अर्द्धचन्द्र वर्त्तमान, दाहिनी ओर लेख 'अप्रतिघ'।

इस सिक्के के रहस्य का कुछ पता नहीं। इसमें संदेह नहीं कि मध्य व्यक्ति कुमारगुप्त है, उसका नाम ही उसके दोनों ओर उत्कीर्ण है; पर उसके हाथ क्यों जुड़े हुए हैं, उसने आभूषण क्यों नहीं पहना है, उसके केश ग्रंथि-बद्ध क्यों हैं, यह कहना कठिन है। सोने के सिक्कों के पृष्ठभाग का लेख राजा का बिरुद होता है या उसका वर्णन करता है। कुमारगुप्त 'अप्रतिघ' या 'अजेय' क्यों कहा गया है? दाहिनी ओर स्त्री कौन है,जो राजा से आवेश में वाद-विवाद कर रही है? क्या वह उसकी रानी है? बाईं ओर ढाल लिये तथा गरुड़ध्बज पकड़े हुए कौन-सा पुरुष है? वह सेनापति है क्या, जो राजा से विवाद कर रहा है? क्या वह स्त्री के कथन की पुष्टि कर रहा है?

खेद है कि इन प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया जा सकता। उसका संतोषजनक उत्तर तब मिलेगा जब पुरोभाग का लेख पढ़ लिया जायगा। वर्त्तमान अवस्था में उसका पढ़ना कठिन है।

किंतु इस विषय में कुछ अस्थाई सुझाव रखा जा सकता है। मध्य का व्यक्ति निसंदेह कुमारगुप्त है, जैसा कि लेख से ज्ञात होता है[१]। दाहिने स्त्री उसकी रानी है तथा बायें सेनापति अथवा युवराज है, दोनों ही राजा को समझा रहे हैं, ऐसा प्रतीत होता है। क्या यह माना जा सकता है कि राजा संसार छोड़ने का विचार कर रहा है तथा उसकी रानी, युवराज या सेनापति राजा को उस विचार से विमुख करने का असफल प्रयत्न कर रहे है[२]?

---

१. डॉ० मजूमदार के मतानुसार लंबवत् लेख 'मिहिरकुल' है, कुमारगुप्त नहीं (ज० न्यू० सो० इ० भा० १२ पृ० ७२); किन्तु यह माना नहीं जा सकता।

२. प्रो० मिराशी का कथन है कि बीच की मूर्त्ति योगी की है, जिससे युवराज तथा रानी राज्य की आपत्ति के संबंध में पूछताछ कर रहे हैं (ज० न्यू० सो० इ० ११ पृ० ७); किन्तु स्त्री के भाव समझाने के हैं, कुछ विनती के नहीं हैं।

राजा के हाथ जोड़ने से यह प्रकट होता है कि वह उनके विचार से सहमत नहीं अथवा उनके तर्क मानने में असमर्थता दिखला रहा है । राजा अपने संकल्प पर दृढ़ है, इसीलिए उसने पृष्ठभाग पर माने 'अप्रतिघ', अजेय मुद्रालेख खुदवाया है ।

फलकस्थित सिक्कों का वर्णन[1]

(१) सोना, '७५", १२३ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० ३१,६

पुरोभाग—कुमारगुप्त बीच में खड़ा, जुड़े हुए हाथ अस्पष्ट, बाईं ओर के पुरुष का दाहिना हाथ वितर्क मुद्रा में, गरुडध्वज के पीछे लंबवत् लेख राजा-रानी के बीच में, सिर से नीचे की ओर 'कुमार', पहले दो अक्षर अस्पष्ट, राजा तथा पुरुष के बीच बाईं ओर नीचे से ऊपर की ओर—'गुप्त', बारह बजे वर्तुलाकार मुद्रा-लेख 'प्रतपररप' ।

पृष्ठभाग—लक्ष्मी दोहरे कमलासन पर बैठी सामने देखती हुई, बायें हाथ में कमल, जो केवल चार बिन्दुओं से व्यक्त किया गया है, स्पष्ट; दाहिने सिरे पर अर्द्धचन्द्र, लेख दाहिने 'अप्रतिघ' (फ० १४, १) ।

(२) सोना, '७२", १२१ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० ३१,१२

पुरोभाग—पूर्ववत्, लेख ग्यारह बजे ।

पृष्ठभाग--पूर्ववत्, अर्द्धचन्द्र अदृश्य, लेख 'अप्रतिघः ; 'इ' मात्रा तथा विसर्ग के दोनों चिह्न स्पष्ट हैं (फ० १४,२) ।

(३) सोना, .७५", १२०.४ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० ३१,१

पुरोभाग--पूर्ववत्, अर्द्धचन्द्र राजा तथा दाहिने रानी के बीच में, तीन से सात बजे के बीच अक्षर स्पष्ट हैं, वे ' प्र, प्र, प, र, प, पु' पढ़े जा सकते हैं ।

पृष्ठभाग--पूर्ववत्, दाहिने अर्द्धचन्द्र, लेख 'अप्रतिघः' (फ० १४,३) ।

(ओ) वीणाधारी प्रकार

बयाना-निधि के ज्ञात होने से पूर्व, कुमारगुप्त के वीणा प्रकार का सिक्का अज्ञात था । इसमें भी दो ही सिक्के मिले हैं । इससे प्रकट होता है कि समुद्रगुप्त के वीणा प्रकार को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न कुमारगुप्त ने किया था । पुरोभाग पर राजा ऊँची पीठवाले पर्यङ्क पर बैठा है और गोद में रखी हुई वीणा को बजा रहा है, जैसे मूल प्रकार में था । मुद्रालेख भी मूल के समान है, केवल नाम का परिवर्तन है 'महाराजाधिराजश्रीकुमारगुप्तः' । किंतु पृष्ठभाग पर कई भेद दीख पड़ते हैं । उसमें देवी बाईं ओर देख रही है और वह भी राजा की तरह चारपाई पर बैठी है । समुद्रगुप्त के सिक्के पर देवी मोढ़े पर बैठी हुई दिखलाई

---

१ इस सिक्कों का चित्र कुछ अंश में बड़ा कर दिया गया है, ताकि लेख स्पष्ट रूप से पढ़ा जा सके ।

गई है। इस प्रकार में देवी का बायाँ हाथ पर्यङ्क पर रखा हुआ है, जो मूल रूप में समुद्र के सिक्के पर कॉर्नुकोपिया लिये हुए था। दाहिने में पाश नहीं है, किंतु एक फूल है जिसे देवी द्वारा सूँघा जाना दिखलाया गया है। यह भी हो सकता है कि पृष्ठभाग पर रानी का चित्र हो,जो फूल को सूँघते हुए अपने पति का गाना सुनती हो। पर्यङ्क पर इस ढंग से बैठी हुई देवी प्राय: तक्षण या चित्रकला में प्राचीनभारत में नहीं दिखाई गई है। मुद्रालेख 'श्रीकुमारगुप्त' बाईं ओर लिखा गया है,दाहिने नहीं।

(१) सोना, .७५", १२५.३ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० ३१,४

पुरोभाग—राजा प्रभामण्डलयुक्त, कुण्डल, हार, भुजबंध पहने, पर्यङ्क पर बैठा है, जिसकी पीठ का कुछ भाग दिखलाई पड़ता हैं, दाहिना पैर पर्यङ्क पर मुड़ा है,बायाँ पैर दाहिने के ऊपर से मुड़ कर पर्यङ्क के नीचे लटक रहा है। चार तार वाली वीणा को राजा उँगलियों से छेड़ रहा है, जो गोद में रखी हुई है, बायाँ हाथ वीणा पर, उसकी उँगलियों के हाव-भाव से राजा की गान-मुग्धता व्यक्त हो रही है। एक बजे लेख आरम्भ 'महाराजाधिराजश्रीकुमारगुप्तः' ; 'कुमार' पर्यङ्क के नीचे तथा 'गुप्त' ग्यारह बजे अंकित है, पहला अक्षर राजा के सिर के पीछे, पर्यङ्क के ऊपर।

पृष्ठभाग—बिन्दु-विभूषित वर्तुल में देवी या रानी, कुण्डल, हार तथा कंकण पहने, पर्यङ्क पर बैठी हुई जिसकी पीठ का कुछ भाग तथा चारों टपदार पैर स्पष्ट दिखलाई पड़ते है, दाहिना पैर पर्यङ्क के नीचे मुड़ता हुआ,बायाँ सामने नीचे लटका हुआ,दाहिने झुके हाथ में लम्बे डंठलवाला पुष्प, बायाँ हाथ पर्यङ्क पर, एक बजे लेख, 'कुमारगुप्त'; दूसरा और तीसरा अक्षर संदेहात्मक, किन्तु वे 'म' 'व' 'र' के सिवा कुछ नहीं हो सकते।

(औ) राजा-रानी प्रकार

बयाना-निधि के ज्ञात होने के पूर्व इस प्रकार का सिक्का अज्ञात था। उसमें भी उसका एक ही नमूना मिला है। सम्भवत: कुमारगुप्त प्रथम चन्द्रगुप्त के एकमेव ज्ञात प्रकार को पुनः जीवित करना चाहता था। मूल सिक्के की तरह पुरोभाग पर राजा-रानी आमने-सामने खड़े हैं। रानी का स्थान ठीक कुमारदेवी की तरह बायें है और वह दाहिनी ओर देखती है। उसके दोनों हाथ भी उसी प्रकार हैं। राजा बायें खड़ा है और सामने देख रहा है; किन्तु उसके बायें हाथ में दण्ड नहीं दीख पड़ता, क्योंकि यह तरीका कुमारगुप्त से पहले ही त्याग दिया गया था। उसका बायाँ हाथ कंधे पर रखा हुआ है और तलवार की मूँठ पकड़े हुए है। प्रथम चन्द्रगुप्त की तरह कुमारगुप्त दाहिने हाथ से रानी को कुछ दे रहा है। इस राजा के सिक्के में वह पुष्प-गुच्छ-सा प्रतीत होता है। राजा-रानी के बीच अर्द्धचन्द्र है, जैसा प्रथम चन्द्रगुप्त के सिक्के में दीख पड़ता है। पृष्ठभाग पर घुटने टेके हुए सिंह पर देवी बैठी हुई है, जैसा मूल नमूने में वर्त्तमान है। उसका बायाँ हाथ खाली है और कमर पर

रखा हुआ है। मूल नमूने में जो विदेशी कॉनुकोपिया इस हाथ में था, उसको अभी हटाया गया है। दाहिने हाथ में पाश के बदले लम्बे नालयुक्त कमल दीख पड़ता है। देवी सिंह पर कुछ बायें झुकी हुई है, जैसा सिंह-निहन्ता प्रकार के द्वितीय वर्ग के दूसरे उपप्रकार में फ० १२, ९-१० प्रकट होता है[१]। इस सिक्के को सिंह-निहन्ता प्रकार के अनन्तर तैयार किया गया मान सकते हैं।

सिक्के का वर्णन निम्नलिखित है—

(१) सोना, .७५", १२६.७ ग्रेन, बयाना-निधि, फ० ३१,१४

पुरोभाग—राजा दाहिने खड़ा, अनावृत सिर, लच्छेदार केश, कोट, धोती, कुण्डल, हार, कंकण तथा भुजबंध पहने हुए है, बायाँ हाथ तलवार की मूँठ पर, दाहिने हाथ से पुष्प-गुच्छ दे रहा है, सामने रानी खड़ी, कर्णफूल, हार, कंकण पहने हुई है, दाहिना हाथ कमर पर, बायाँ हाथ नीचे लटकता हुआ, राजा-रानी के बीच चन्द्र, दाहिने मुद्रालेख के अस्पष्ट अवशेष।

पृष्ठभाग—बिन्दुविभूषित वर्तुल में देवी प्रभामंडलयुक्त, दाहिने देखते हुए जानुस्थित सिंह की पीठ पर बैठी हुई, दाहिने हाथ में कमल, बायें जँघे पर स्थित व खाली, दाहिने झुकी हुई, कर्णफूल, हार, कंकण, भुजबंध तथा करधनी पहने, साड़ी की चुनन स्पष्ट, चिह्न अविद्यमान, दाहिने लेख 'श्रीकुमारगुप्तः' (फ० १४,४)।

(अ) गरुड़ प्रकार

मध्यप्रदेश के रामपुर जिले में स्थित खैरीताल नामक स्थान से १९४८ में स्वर्ण मुद्राओं की एक निधि मिली थी, जिसपर 'महेन्द्रादित्य' उत्कीर्ण था। लखनऊ संग्रहालय में इस तरह का एक सिक्का वर्तमान था; किन्तु उसका प्राप्तिस्थान अज्ञात था। ये सब सिक्के न ढालकर बनाये गये हैं और न ठप्पे से। सोने की पतली चादर को एक ओर से सूक्ष्म सूचिका से दबाकर दूसरी ओर से चिह्नसमूह तथा अक्षर बनाये गये हैं; इस पद्धति को अंगरेजी में struck in repousse कहते हैं।

(१) सोना, .८", २० ग्रेन, खैरीताल-निधि

पुरोभाग—बिंदुविभूषित वर्तुल में, ऊपरी आधे में गरुड़ पंख फैलाये हुए, बायें चक्र के ऊपर अर्द्धचन्द्र, शंख दाहिने, नीचे आधे में लेख 'श्री महेन्द्रादित्य', 'म' के नीचे सात बिन्दुओं का गुच्छ; 'द्र' के नीचे 'उ'। पुरोभाग का चिह्नसमूह पृष्ठभाग को दबाकर बनाया गया है (फ० १४, ६)।

पृष्ठभाग—खाली।

---

१. पैरों की स्थिति में कुछ भेद-विभिन्नता है। इसमें दोनों पैर मुड़े हैं। सिंह-निहन्ता प्रकार के द्वितीय वर्ग के दूसरे उपप्रकार में दाहिना पैर नीचे लटका हुआ है।

(२) सोना, .६", २० ग्रेन, खैरीताल निधि।

पुरोभाग— पूर्ववत्, सिक्का भद्दा, दूसरी पंक्ति में अक्षर 'द'(फ० १४, ७)।

क्या ये वर्तुलाकार पदार्थ सचमुच सिक्के थे? यदि ऐसा हो तो इन्हें किसने चलाया था, यह कहना कठिन है। सोने का इतना हलका पतला तथा एक ओर अनुत्कीर्ण सिक्का बहुत कम मिलता है। दक्षिण कोसल में इस ढंग के सिक्के नल वंश के राजाओं ने प्रचलित किये थे। यदि ये सिक्के हों तो इनके कर्त्ता का पता लगाना आसान नहीं है। वि० प्र० रोडे [1] तथा प्रो० मिराशी [2] का मत है कि ये सिक्के कुमारगुप्त के हैं अथवा उसके रामपुर में शासन करनेवाले किसी स्थानीय सामंत ने इन्हें तैयार कराया होगा। घोष महोदय इन सिक्कों को कुमारगुप्त का नहीं मानते [3]। इस प्रश्न को हल करने के लिए कुछ निर्णायक प्रमाण नहीं मिलते हैं; किन्तु लेखक का विचार है कि ये सिक्के प्रथम कुमारगुप्त के नहीं हैं।

हम यह मानते हैं कि गुप्तसम्वत् दक्षिण कोसल में यदा-कदा प्रयोग में लाया जाता था, जैसा कि कुछ लेखों ने दर्शाया है; किन्तु इस बात को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त प्रमाण नहीं है कि दक्षिण कोसल प्रांत गुप्त साम्राज्य में अंतर्भूत था। यदि यह भी हम मान लें, तोभी यह कहना कठिन है कि इस प्रकार के सिक्के गुप्तसाम्राज्य के केवल इस प्रदेश में क्यों मिलते हैं? खैरीताल निधि में गुप्तसम्राटों के दूसरे अन्य प्रकार जैसे धनुर्धारी अथवा अश्वारोही प्रकार के सिक्के क्यों नहीं निकले? गुप्त स्वर्णमुद्राप्रकार किसी एक स्थान में सीमित नहीं रहते थे। इस तरह के सिक्के अन्य बड़ी निधियों में—जैसे बयाना और भरसार निधियों में—क्यों नहीं पाये गये? यह सम्भव है कि इस सिक्के को कोई स्थानीय राजा महेन्द्रादित्य ने दक्षिण कोसल में चलाया था, जिसने इस प्रकार को प्रसन्नमात्र के सिक्के से नकल किया था।

खैरीताल निधि के सिक्कों में नीचे की पंक्ति में कुछ अक्षर 'द', 'उ', 'श', मिलते हैं, जिनका अर्थ अज्ञात है। प्रो० मिराशी का सुझाव है कि 'श' अक्षरवाला सिक्का शूर-द्वारा तैयार किया गया और 'द' वाले को दयितवर्मन ने चलाया था, जो अरंग ताम्रपत्र के राजा द्वितीय भीमसेन के पूर्वजों में गिने जाते हैं। श्री राव महोदय का मत है [4] कि इस अक्षर से संख्या का बोध होता है, जिस समय सिक्का तैयार किया गगा था। पूर्वी चालुक्य नरेश चन्द्र के सिक्कों पर भी अक्षरों में लिखे अंक दिखलाई पड़ते हैं। उनके कथनानुसार 'उ' तथा 'द' अक्षर क्रमशः ८ तथा ५ के बोधक हैं।

---

१ ज० न्यू० सो० इ० भा० १० पृ० २३७-९।
२ वही—भा० ११ पृ०।
३ ज० ए० सो० बं० न्यू० सप्लिमेण्ट ४६ नं० ३३२।
४ ज० न्यू० सो० इ० १३।

नवाँ अध्याय

प्रथम कुमारगुप्त की रजत तथा ताम्रमुद्राएँ

द्वितीय चन्द्रगुप्त की अपेक्षा प्रथम कुमारगुप्त के चाँदी के सिक्के अधिक संख्या में मिले हैं, जिनमें कई वर्ग तथा उपप्रकार दिखलाई पड़ते हैं। कुमारगुप्त के समय चाँदी के सिक्के साम्राज्य के पश्चिम भाग में ही सीमीत नहीं रहे। कम मूल्यवाले चाँदी के सिक्कों की उपयुक्तता लोगों की समझ में आई थी। कौड़ियों या ताम्रमुद्राओं तथा सुवर्णमुद्राओं के बीच में चाँदी के सिक्के रहने से आर्थिक व्यवहार में, मामूली चीजों की खरीद-बिक्री में, बड़ी सहायता होती है। जब इन बातों पर सरकार तथा जनता नें विचार किया तब गुप्त टकसालों ने गंगाघाटी के प्रांतों के लिए भी चाँदी के सिक्के प्रचलित किये।

(अ) पश्चिम भारतीय रजतमुद्रा

पश्चिम भारत में प्रथम कुमारगुप्त के चाँदी के सिक्के क्षत्रप राजा के नमूना या मूलरूप के अनुकरण पर तैयार होते रहे। ये सिक्के द्वितीय चन्द्रगुप्त के चाँदी के सिक्कों से साधारण रूप में भिन्न नहीं हैं। यूनानी अक्षरों के अवशेष कुछ उपप्रकारों में दिखलाई देते हैं, कुछ में नहीं।

पृष्ठभाग पर नियमतः गरुड़ का प्रयोग चालू रहा और उसके साथ सात बिन्दुसमूह का भी। क्षत्रप सिक्कों के पृष्ठभाग पर रहनेवाला स्तूप या अर्द्ध चंद्रयुक्त पहाड़ किसी भी गुप्त सिक्के पर नहीं मिलता।

प्रथम कुमारगुप्त के सिक्कों का प्राप्तिस्थान निश्चित रूप से ज्ञात है, पश्चिमी प्रकार के सिक्के काठियाबाड़, गुजरात, वलभी, मोरवी, जूनागढ़, अहमदाबाद, कैरा आदि ज्ञात स्थानों में मिले हैं। काठियाबाड़ तथा गुजरात के प्राप्तिस्थान सूक्ष्मता से देखे नहीं गये। यदि उनका ठीक ज्ञान होता तो विविध उपप्रकार कहाँ-कहाँ चलते थे, यह हम कह सकते। कभी-कभी कुमारगुप्त के चाँदी के सिक्के गुजरात और काठियाबाड़ के बाहर भी मिले हैं। १३६५ चाँदी के सिक्कों की एक निधि सतारा जिले के समन्द स्थान से मिली है तथा १३ सिक्के बरार के इलिचपुर से। ये दोनों स्थान गुप्तसाम्राज्य में अंतर्भूत नहीं थे; किन्तु इन स्थानों से सिक्कों की प्राप्ति द्वारा प्रकट होता है कि वणिक, विद्वान् ब्राह्मण या सेनानायक द्वारा वे वहाँ लाये गये होंगे।

स्मिथ ने पश्चिमी सिक्कों को दो उपप्रकारों में विभक्त किया है। पहले उपप्रकार में मुद्रालेख–'परमभागवतमहाराजाधिराजश्रीकुमारगुप्तमहेन्द्रादित्यः' मिलता है, और दूसरे उपप्रकार में महाराजाधिराज की उपाधि 'राजाधिराज' में संक्षिप्त कर दी गई है। स्थानीय जन-

श्रुति को स्वीकार न करते हुए, जिसे वॉटसन ने सूचित किया था, कि कुमारगुप्त अपने पिता के समय में काठियाबाड़ का राज्यपाल रहा, स्मिथ ने यह अनुमान किया है कि राजाधिराज की संक्षिप्त उपाधिवाला सिक्का कुमारगुप्त ने राज्यपाल के पद से तैयार किया था। किन्तु महाराजाधिराज तथा राजाधिराज उपाधियों के अर्थ में पर्याप्त भेद नहीं है। इसलिए स्मिथ का अनुमान न्यायसंगत नहीं प्रतीत होता है। मथुरा के लेख (गु० स० ६१) में द्वितीय चन्द्रगुप्त के लिए राजाधिराज की उपाधि प्रयुक्त की गई है[2], जब कि वह चक्रवर्ती सम्राट् था। स्मिथ ने स्वीकार किया है कि लम्बे लेखवाले सिक्के पर राजा का रूप छोटे लेखवाले राजा के मुकाबिले में कम अवस्था का है[3]। इसलिए भी यह प्रमाणित करना कठिन है कि छोटे लेखवाला सिक्का पहले तैयार किया गया था, अर्थात् उसके आरम्भिक जीवन में निकाला गया था, जब कुमारगुप्त पिता का राज्यपाल रहा। भारतीय शासन-परम्परा में युवराज को मुद्रासंचालन का अधिकार नहीं रहता था। इसलिए स्मिथ के मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

पश्चिमी सिक्कों का वर्गीकरण विभिन्न प्रयुक्त उपाधियों के ऊपर करना, जैसा स्मिथ ने किया था, वैज्ञानिक रीति नहीं है। श्री ॲलन ने उनको बनावट (fabric) के अनुसार विभाजित किया है। बड़े आकार के सिक्के छोटे से तथा कलात्मक सिक्के भद्दे सिक्के से पृथक् किये गये हैं। यह विभाजन भी वैज्ञानिक नहीं है, क्योंकि यह कहना कठिन है कि अच्छी कारीगरी कहाँ खतम होती है और भद्दी कहाँ से शुरू होती है। तीसरे वर्ग के कुछ सिक्के, जिसे श्री ॲलन ने छोटे आकार का माना है, पहले वर्ग के समान बड़े आकार के हैं[4]; किंतु किसी अधिक शास्त्रीय वर्गीकरण की रीति के अभाव के कारण ब्रिटिश-संग्रहालय के सूचीपत्र में श्री ॲलन-द्वारा प्रस्तावित वर्गीकरण हम यहाँ स्वीकार करते हैं। पहले वर्ग के सिक्के का वर्णन इस तरह है—

पहला वर्ग

इस वर्ग के सिक्के प्रथम चन्द्रगुप्त के चाँदी के सिक्कों से अत्यधिक मिलते-जुलते हैं। इसलिए अनुमान किया जा सकता है कि चंद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात् तुरत ही कुमारगुप्त ने उन्हें प्रचलित किया। सम्भवतः अपने पिता के ही टकसाल से प्राप्तिस्थान ठीक ज्ञात न होने के कारण, यह टकसाल कहाँ थी,यह नहीं बतलाया जा सकता। सम्भवतः वह काठियावाड़ में होगी, जहाँ क्षत्रप मुद्रा का प्रभाव अत्यधिक रहा। स्कन्दगुप्त के पहले वर्ग के चाँदी के सिक्के इस स्वरूप के हैं और वे भी संभवतः उसी टकसाल से निकाले गये होंगे। सिक्कों में नाक, मूँछ तथा कॉलर पिछले क्षत्रप सिक्कों के ढंग के ही हैं। अधूरे यूनानी अक्षरों को अवशेष पृष्ठभाग

---

१. ज० रॉ० ए० सो० १८८९ पृ० १२३।
२. ए० इं० भा० २१ पृ० ८, सरकार पृ० २६९।
३. इ० म्यू० कॅ० भा० १ पृ० ५।
४. ब्रि० म्यू० कॅ० भूमिका पृ० ९४ फ० ७, २ तथा फ० ६, ५७।

पर दीख पड़ता है। राजा के अर्द्धचित्र के पीछे मुद्रावर्ष देनेका इरादा था; किंतु वहाँ प्रायः 'वर्ष' शब्द मिलता है, न कि वर्ष की संख्या।

पृष्ठभाग पर गुप्तवंश का राजचिह्न गरुड विद्यमान है। दाहिने विन्दु-समूह है। वर्तुलाकार मुद्रालेख 'परमभागवतमहाराधिराजश्रीकुमारगुप्तमहेन्द्रादित्यः' पढ़ा गया है[२]।

इस वर्ग में चार उपप्रकार किये जा सकते हैं। पहले उपप्रकार के सिक्के पतले और बड़े तथा दूसरे के मोटे और छोटे रहते हैं। दूसरे उपप्रकार में 'म' तथा 'व' अक्षरों का अधोभाग गोलाकार है। तीसरे उपप्रकार के सिक्के दूसरे उपप्रकार की तरह हैं; किन्तु गोलाकार 'म' तथा 'व' नहीं मिलते, जैसे दूसरे उपप्रकार में दीख पड़ते हैं। इसके दो सिक्कों (ब्रि० म्यू० कै० गु० डा० नं० ३०४-५) पर गरुड के नीचे तारे बने हैं; किन्तु इनका चित्र उस सूची में प्रकाशित नहीं किया गया है। चौथे उपप्रकार में राजा के सिर के पिछले भाग में 'वर्ष' शब्द लिखा है, जिसके बाद निर्माण की तिथि अंकों में १०० प्रकट होती है। किंतु अंक का चिह्न स्पष्ट नहीं है। इस उपप्रकार पर लेख के अंत में षष्ठी विभक्ति है, जैसी द्वितीय चंद्रगुप्त के चाँदी-सिक्कों के मुद्रालेख में मिलती है। पहले और दूसरे उपप्रकारों के सिक्के अधिक संख्या में मिले हैं; किन्तु तीसरा उपप्रकार केवल तीन सिक्कों से और चौथा केवल एक सिक्के ही से ज्ञात हैं। पहला उपप्रकार आकार में .६" तथा दूसरा और तीसरा .५५" हैं। कुछ बिरले सिक्के तौल में २४.१ ग्रेन से भी कम हैं; किंतु औसत ३० ग्रेन तौल का है। सुस्थिति के सिक्के ३३ ग्रेन के हैं, जो इनकी यथार्थ तौल होगी। यह क्षत्रप चाँदीसिक्कों की तौल के समान है। प्रथम वर्ग के समस्त उपप्रकारों का वर्णन यहाँ किया जायगा।

फलकस्थित सिक्कों का वर्णन

पहला उपप्रकार[१]

(बड़े आकारवाला)

(१) चाँदी, .६", २६.८ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कै०, फ० १६, १

पुरोभाग—दाहिने राजा का अर्द्धचित्र, क्षत्रप सिक्कों के समान सिर पर कटा हुआ, सिर से पीछे घुँघराले केशों के ऊपर 'वर्ष'।

पृष्ठभाग—पंख फैलाये गरुड, सातबिन्दुओं का समूह दाहिने, यूनानी अक्षरों का अभाव, वर्तुलाकार मुद्रालेख, तीन बजे से शुरू 'पर (भगवत) महरजधिराजश्रीकुमरगुप्त-महन्द्रदत्य,' अंतिम तीन अक्षर कटे हुए, 'श्र' के ऊपर 'ई' मात्रा का अभाव, यद्यपि उसके लिए पर्याप्त स्थान था (फ० १७,१)।

---

१. द्वितीय चन्द्रगुप्त के चाँदी सिक्के के प्रथम वर्ग से लेख लिया गया है। केवल उसमें नाम और उपाधि बदल दिये गये हैं।

२. ब्रि० म्यू० कै० गु० डा० फ० १६, १-१७; क० आ० स० रि० भा० ९ फ० ५, ४-५; ज० रा० ए० सो० फ० २, ३९-४२; पी० ई० भा० २ फ० ३७, १६-१७।

(२) चाँदी, .६", ३१.८ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कॅ०, फ० १६,२

पुरोभाग—पूर्ववत्, अर्द्धचित्र संपूर्ण, सिर के पीछे 'वर्ष' शब्द का केवल अवशेष, सिर के सामने यूनानी अक्षर।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, लेख तीन बजे 'परमभग (वत महा) रजधरजश्रकुमरगुप्तमहेन्द्रदत्य' (फ० १७,२)।

(३) चाँदी, ६" ३०.४ ग्रेन, वही, फ० १६,८

पुरोभाग—पूर्ववत्, चित्र भद्दा, अधिक संख्या में गलत आकार के यूनानी अक्षर, O,U,I, H, O, राजा के चेहरे के सम्मुख।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, गरुड के चबूतरा से नीचे यूनानी अक्षर, O, व U, लेख चार बजे आरम्भ, 'परमभगवतमहरजधरजश्रकुमरगुप्त-महन्द्रदत्य' (फ०१७,३)।

दूसरा उपप्रकार[1]

(कुछ आकार में छोटा, तथा गोल 'म' व 'र' के साथ)

(४) चाँदी, .६", ३२ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कॅ०, फ० १६,१८

पुरोभाग—पहले उपप्रकार की तरह अर्धचित्र, सामने कुछ यूनानी अक्षर, O,H,O,H,O

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, गरुड से नीचे दो यूनानी अक्षर O व U। लेख चार बजे आरम्भ—'[प] रमभगवतमहरजधरजश्रकुमर [गुप्त] महन्द्र [दित्य]' (फ० १७,४)।

(५) चाँदी, .५५", ३१.६ ग्रेन, वही, फ० १६,२२

पुरोभाग—पूर्ववत्, अर्द्धचित्र पूर्ण, यूनानी अक्षरों के अवशेष अविद्यमान।

पृष्ठभाग—नीचे का कुछ भाग दो बार मुद्रित, किनारे पर पहले लेख का अवशेष, लेख तीन बजे, 'परम भगवत' शेष कटा हुआ (फ० १७, ५)।

तीसरा उपप्रकार[2]

(दूसरे उपप्रकार की तरह, किंतु 'म' तथा 'व' अक्षर कोणयुक्त)

(६) चाँदी, .५",३५.७ ग्रेन, वही, फ० १७,२३

पुरोभाग--पूर्ववत, यूनानी अक्षरों का अभाव।

पृष्ठभाग—नौ बजे लेख आरम्भ, 'कुमरगुप्तमहन्द्रदत्य' (फ० १७,६)।

चौथा उपप्रकार

(पहले उपप्रकार के सदृश, तिथि उत्कीर्ण)

(७) चाँदी, .५५", २७ ग्रेन, आ० स० इ० ऍ० रि० १६२३-४ फ० १२।

पुरोभाग—राजा का चित्र दाहिने,कान के पीछे तिथि वर्ष १०० (?)

---

१. ब्रि० म्यू० कॅ० गु० डा० फ० १६, १८-२२।

२. वही, फ० १६-२३।

पृष्ठभाग—उपप्रकार पहले के समान, लेख-'परमभगवतमहरजधरजश्री (कुमारगुप्त) महन्द्रदित्य'। फ० १७,७ (परिवर्धित आकार में)।

दूसरा वर्ग[१]

इस वर्ग के सिक्कों के पुरोभाग पर यूनानी अक्षर का अभाव है। उनके आकार में अव्यवस्थिति है। कुछ नुकीले हैं [फलक १७,६], कुछ बहुभुजी हैं [फ० १७,४]। राजा का चित्र भद्दे ढंग से खुदा है और वह क्षत्रप नमूने से ज्यादा समानता नहीं दिखलाता है। गरुड़ की आकृति बेढब है। उसके समीप बिन्दु-समूह नहीं दिखाया गया ह। श्री ऍलन का मत है कि इस वर्ग के सिक्के छोटे हैं। (ब्रि० म्यू० कॅ० गु० डा०; पृष्ठ ६४)। कुछ तो निस्संशय छोटे हैं। किंतु कुछ सिक्के पहले वर्ग के समान आकार के हैं (फ० १७,-८-१०;३१)। उनका आकार .५" से .६" तक मिलता है। औसत तौल २६ से ३१ ग्रेन तक पाई जाती है। यूनानी अक्षरों के अभाव से यह प्रकट होता है कि टकसाल के अधिकारियों के विदेशी अक्षरों को हटाने का प्रयत्न सफल होने लगा था। शायद पूर्वी मालवा में यह प्रकार तैयार किया गया होगा, जहाँ संभवतः क्षत्रप सिक्के अधिक प्रचलित न थे।

इस वर्ग में दो विभिन्न उपप्रकार के सिक्के मिले हैं। पहले में प्रथम वर्ग का मुद्रालेख खुदा है तथा दूसरे उपप्रकार में उस लेख का आरम्भिक शब्द 'परम' छोड़ दिया है, और लेख 'भागवत' से शुरू होता है। फलकस्थित सिक्कों का वर्णन निम्नलिखित है—

पहला उपप्रकार

(पहले वर्ग के समान लेख)

(१) चाँदी, .५५", ३०.७ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कॅ०, फ० १६, २४

पुरोभाग—राजा का अर्द्धचित्र, यूनानी अक्षरों का अभाव।

पृष्ठभाग—एक बजे लेख आरम्भ 'परमभगवत-महरजधरज', बाद के अक्षर अस्पष्ट; 'परम' का 'म' अक्षर वर्गाकार, 'ग', 'व' तथा 'त' पतले हैं। वे लम्बी लकीर की तरह दीखते हैं। बिन्दु-समूह (pellet) अविद्यमान (फ० १७,८)।

(२) चाँदी, .६", २८.३ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कै०, फ० १६,२५

पुरोभाग—पूर्ववत्, अस्पष्ट।

पृष्ठभाग— लेख एक बजे, 'परमभगवतमहरजधरजश्रकुमरगुप्तमहेन्द्रदित्य', तारा अविद्यमान (फ० १७,९)।

---

१. आ० स० इ० ऍ० रि० १९२३-४ पृ० १२४।

दूसरा उपप्रकार
(लेख भागवत से आरम्भ)

(३) चाँदी, .६", २६.४ ग्रेन, वही फ० १६,२६

पुरोभाग—पूर्ववत्।

पृष्ठभाग—एक बजे लेख 'भगवतरजधरजश्रकुमरगुप्तमहेन्द्रदित्य' ; सिक्के का आकार विचित्र (फ० १७,१०)।

(४) चाँदी, .५५", ३१ ग्रेन, वही, फ० १६,३०

पुरोभाग—पूर्ववत्।

पृष्ठभाग—दो बजे लेख आरम्भ 'भगवतरजधरजश्रकुमरगुप्तमहन्द्रदत्य'। 'भागवत' अस्पष्ट, अंतिम अक्षर सीधी लकीर से व्यक्त (फ० १७,११)।

तीसरा वर्ग

इस वर्ग के सिक्के पहले वर्ग के समान हैं; किन्तु ये छोटे तथा मोटे (thick) हैं। फ० १७, १२ की फ० १७, १-२ से तुलना कीजिये। कुछ तो पहले वर्ग के सदृश बड़े आकार के भी हैं; फलक १७, १३ से फ० १७, ४ तुलना करें। चेहरे का रूप भली-भाँति बनाया गया है। नाक की बनावट तो पहले वर्ग से अधिक मिलती-जुलती है। देखिये फ० १७, ११ व १४। इस वर्ग के सिक्के दूसरे वर्ग से इस कारण भिन्न हैं कि इसके पुरोभाग पर यूनानी अक्षर वर्तमान हैं।

इस वर्ग के सिक्कों की बनावट तथा आकार त्रैकूटक वंश के सिक्कों से अधिक समान हैं। श्री ऍलन का सुझाव है कि ये सिक्के दक्षिण गुजरात में तैयार किये गये होंगे, जहाँ सम्भवतः गुप्तनरेश त्रैकूटक वंश को परास्त कर शासन करने लगे थे। इन सिक्कों का प्राप्ति-स्थान सुचारु रूप से ज्ञात नहीं है तथा गुप्तलेखों में त्रैकूटक के पराजय का वर्णन भी नहीं मिलता।

इस वर्ग के सिक्कों की तौल ३१ ग्रेन तथा आकार .५" है। कुछ सिक्के तौल में ३२ ग्रेन या और भारी ३४.७ ग्रेन हैं। कम-से-कम तौल २७.३ ग्रेन की है। सिक्के अव्यवस्थित आकार के हैं, उनमें से कुछ अण्डाकार तथा पंचकोन के भी हैं (फ० १७, १२ व १३)। वर्तुलाकार मुद्रालेख कभी १० या ११ बजे तो कभी ७ या ८ बजे प्रारम्भ होता है। इसके अंत में 'महेन्द्रादित्य' शब्द है। स्मिथ ने कहा था कि इस शब्द के अंत में षष्ठी का 'स्य' प्रत्यय ब्रिटिश संग्राहालय के तीन सिक्कों पर स्पष्ट है[1]। श्री ऍलन के सूचीपत्र में षष्ठयंत मुद्रालेख नहीं मिलता है और स्मिथ द्वारा प्रदर्शित सिक्के पर 'स्य' का पढ़ना सम्भव नहीं है[2]। अतएव यह संदेहपूर्ण है कि इस वर्ग में षष्ठी कारक 'स्य' वाला कोई सिक्का मौजूद है।

१. ज० ए० सो० १८८९ पृ० १२५।
२. वही, फ० ४, २।

इस वर्ग को दो उपप्रकारों में विभक्त किया गया है। पहले उपप्रकार में प्रथम वर्ग की पूरी लम्बी उपाधि, 'महाराजाधिराज' के साथ लेख मिलता है। दूसरे उपप्रकार में उपाधि का संक्षिप्त रूप 'राजाधिराज' ही पाया जाता है। कुछ मुद्राओं पर 'राजाधिराज' के बजाय 'रजधर' या 'रजध' ही गलती से उत्कीर्ण किया गया है।

फलकस्थित सिक्कों का वर्णन

पहला उपप्रकार[1]

('महाराजाधिराज' उपाधि सहित)

(१) चाँदी, .५", ३०, ६ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कॅ०, फ० १७, १

पुरोभाग—दाहिने राजा का अर्द्धचित्र, सामने तथा पीछे यूनानी अक्षर वर्तमान।

पृष्ठभाग—लेख सात बजे 'परमभगवतमहरजधिरजकुमरगुप्तमहन्द्रदत्य' सम्पूर्ण लेख स्पष्ट, अक्षर 'व' और त' स्थान की कमी से चिपटे हुए, बिन्दुसमूह (pellet) का अभाव (फ० १७, १२)।

(२) चाँदी, .५५", ३०-३ ग्रेन, वही, फ० १८, ४

पुरोभाग—पूर्ववत्, दहिनी ओर अधूरे व अस्पष्ट यूनानी अक्षरों के अवशेष।

पृष्ठभाग—लेख आठ बजे 'परमभगवतमहरजधरजश्रीकुमरगुप्त महन्द्रदत्य'। 'परम'का 'म'अक्षर 'प' के समान तथा 'श्र' 'म' की तरह दीख पड़ते हैं। खोदनेवाले की लापरवाही के कारण ऐसा हुआ है। 'व' सीधी लकीर है, केवल नीचे एक छोटा बिंदु है। 'ह' पूर्वी 'ह' की तरह। सम्भवतः स्थान की कमी से ऐसा दृश्य दिखलाई पड़ता है। (फ० १७, १३)।

दूसरा उपप्रकार[2]

('राजाधिराज' उपाधि के साथ)

(३) चाँदी, .५", ३३ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कॅ०, फ० १७, ६

पुरोभाग—पहले उपप्रकार के सदृश, ऊर्ध्वचित्र के सामने तथा पीछे यूनानी अक्षर वर्तमान।

पृष्ठभाग—लेख आठ बजे–'परमभगवतरजधरजश्रीकुमारगुप्त–महन्द्रगुप्त' (फ० १७, १४)।

(४) चाँदी, .५५", ३३ ग्रेन, वही, फ० १७, १२

पुरोभाग—पूर्ववत्, चित्र के पीछे यूनानी अक्षर।

पृष्ठभाग—तीन बजे लेख–'परमभगवतरजधरजश्रकुमरगुप्तमहन्द्रदत्य'। 'कु' सीधी लकीर की तरह, स्थान की कमी से (फ० १७, १५)।

---

१. ब्रि० म्यू० कै० फ० १७, १-७।

२. ब्रि० म्यू० कै० जी० डी, फ० १७, ८-२१।

(५) चाँदी, .५" २६.४ ग्रेन, वही, फ० १७, ३०

पुरोभाग—पूर्ववत्।

पृष्ठभाग—चार बजे लेख 'परमभगवतरजधरज [ज]श्रकुमरगुप्तमहन्द्रदत्य'; (राजाधिराज के अंतिम अक्षर 'ज' लुप्त) (फ० १७, १६)।

(६) चाँदी, .५" २४-४ ग्रेन, वही, फ० १७, २८

पुरोभाग—पूर्ववत् यूनानी अक्षर वर्तमान।

पृष्ठभाग--लेख तीन बजे, परमभगवतरजधरजश्रीकुमरगुप्तमहन्द्रदत्य'।
'कु' की 'उ' मात्रा तथा 'न्द्र' का नीचे का अर्धवर्तुल गरुड़ के दुबले-पतले शरीर से संलग्नप्राय होने के कारण क्षणमात्र त्रिशूल का आभास होता है (फ० १७,१७)।

चौथा वर्ग

[पृष्ठभाग पर त्रिशूल]

इस तरह का एक ही नमूना मिला है, इसलिए पहले उसका वर्णन दिया जाता है।

चाँदी, .६" तौल अज्ञात, ज० बॉ० ब्र० रॉ० ए० सो० भा ७ (१८६२) पृ० ३

पुरोभाग—दहिने राजा का अर्द्धचित्र, यूनानी अक्षरों का धुँधला अवशेष।

पृष्ठभाग—त्रिशूल, उसके बगल के दो कांटे के नीचे वर्तुल विभूषित चक्र के साथ वर्तुलाकार लेख, 'परमभगवतमहरजधरजश्रीकुमरगुप्तमहन्द्रदत्य' (फ० १७, २०)[१]

केवल इस उपप्रकार का एक सिक्का मिला है, जिसकी तौल अज्ञात है। 'मारगुप्त' का पाठ दस बजे निश्चित है तथा पिछले अक्षर की पूँछ यह बतलाती है कि वह सम्भवतः 'कु' था। अतएव निसंदेह वह सिक्का प्रथम कुमारगुप्त द्वारा प्रचलित किया गया था। पृष्ठभाग पर त्रिशूल स्पष्ट दिखलाई पड़ता है और यह तथाकथित बलभी मुद्राओं[२] के त्रिशूल से अधिक अस्पष्ट और सुन्दर है। श्री ऍलन ने इसे स्वीकार किया है कि मुद्रालेख में 'कुमारगुप्त' लिखा है, किन्तु इस प्रकार के सिक्के का अस्तित्व वे नहीं मानते[३]। उन्होंने इसे समझने में असमर्थता प्रकट की है कि इस प्रकार का एक ही नमूना कैसे सुरक्षित रह सका, जब कि इसी राजा के सैकड़ों अन्य प्रकार के सिक्के पाये जाते हैं। उनके मतानुसार इसके पृष्ठभाग पर गरुड़ की आकृति है, जो कुछ नमूनों में त्रिशूल के समान है। उनका अनुमान है कि सादृश्य अत्यधिक रूप में उस ड्रैफ्टमन ने दिखलाया, जिन्होंने न्यूटन का फलक (ज० बा ब्रा० रा० ए० सो० भा० ७) चित्र बनाया था।

---

१. ज० बा० ब्रा० रा० ए० सो० भा० ७ (१८६२) फ० पृ० ३ के सामने नं० ११।

२. ज० न्यू० सो० इ० भा० ६ पृ० १४ फ० २, ८।

३. ब्रि० म्यू० कै० गु० डा० भूमिका पृ० ९६।

इसमें संदेह नहीं है कि गरुड़ की आकृति भद्दे ढंग से बनाये जाने पर छोटे त्रिशूल के सदृश हो जाती है (फ० १६; ३, ६ : फ० १७, ६)। यदि इसके ऊपर 'गुप्तमहेन्द्र' अक्षर खुदे जाते हैं तो त्रिशूल वर्तुल युग्म से आभूषित भी दीखता है जैसा कि कनिंघम द्वारा प्रकाशित सिक्के पर स्पष्ट रूप से दीखता है (फ० १७ २१)।

यही हालत कुमारके दूसरे एक सिक्के के पृष्ठभाग पर वर्णित त्रिशूल की है, जिसे प्रिन्सेप ने ज० रॉ० ए० सो० १८३८ पृ० ३५६ फलक १२, १६ पर प्रदर्शित किया है। किन्तु न्यूटन की प्रकाशित मुद्रा का त्रिशूल बड़ा तथा स्पष्ट है। और कोई भी ड्राफ्टमन त्रिशूल के दो विभूषित वर्तुलों का यहाँ समावेश नहीं कर सकता, यदि वे मौलिक सिक्के पर वर्तमान न होते। न्यूटन के सिक्के के त्रिशूल के ठीक सिरे पर 'गुप्त महेन्द्र' उत्कीर्ण नहीं है, जो कनिंघम के सिक्के पर वर्तमान है और जो त्रिशूल की भ्रांति पैदा करता है। यहाँ यह कहना आवश्यक है कि न्यूटन का सिक्का उसके पास था और उसने मूल सिक्के से वर्णन लिखा है, रेखा-चित्र से नहीं। यदि रेखा खींचनेवाले ने गरुड़ को त्रिशूल समझा होता तो न्यूटन शीघ्र ही उस गलती का पता लगा लेता। उसने वर्णन किया है कि यह अपूर्व सिक्का क्षत्रप तथा भट्टारक सिक्कों के समान था, जिस भट्टारक ने पृष्ठभाग पर त्रिशूल के साथ बलभी शैली का सिक्का चलाया। यदि वह पृष्ठभाग पर त्रिशूल के उस सम्बन्ध में निश्चित मत नहीं रखता तो इस तरह दो समानता का निर्देश नहीं करता।

हमने अन्यत्र यह दिखाया है कि सम्भवतः ३६० ई० के समीप पृष्ठभाग में त्रिशूल के साथ बलभी प्रकार का सिक्का आरम्भ किया गया था, जिसे भट्टारक ने तृतीय रुद्र सिंह को परास्त कर ई० स० ३६० के लगभग शुरू किया था[१]। अतएव कुमारगुप्त के लिए यह सर्वथा सम्भव था कि वह भट्टारक सिक्के का अनुकरण करे। हो सकता है कि कुमारगुप्त के त्रिशूल प्रकार के सिक्के भविष्य में अधिक संख्या में प्राप्त हों।

पाँचवाँ वर्ग

(आ) मध्यदेश या गंगाघाटी की रजतमुद्राएँ

प्रथम कुमारगुप्त ने चाँदी के सिक्के गंगाकी घाटी या मध्यदेश में प्रचलन के लिए भी तैयार किये थे। पश्चिमी सिक्कों से इस प्रकार में विशेष अन्तर मिलता है। दोनों के आकार तथा तौल एक समान हैं। दोनों के पुरोभाग पर राजा का अर्द्धचित्र मिलता है तथा पृष्ठभाग में पक्षी के चारों ओर वर्तुलाकार मुद्रालेख है; किंतु इन दो प्रकारों में कुछ विशेष अन्तर भी है।

(१) मध्यदेश के अत्यधिक सिक्कों पर राजा का अर्द्धचित्र क्षत्रप सिक्कों के अनुकरण रूप में नहीं है (फ० १७, १-१४ व २२-२५)। उन्नत नाक की प्रधानता तथा लम्बी मूँछें लुप्त हो गई हैं। राजा की नाक चिपटी है, जो ललाट के समतल है। किंतु

१ ज० न्यू० सो० इ० या ६ पृ० १९।

सिर के पीछे केश क्षत्रप ढंग से गिरते हुए दिखलाये गये हैं। यह समझा जाता है कि मध्यदेशीय सिक्कों के चित्र पर सम्राट् की वास्तविक आकृति या चेहरा दीखता है। यह प्रथम कुमारगुप्त के सम्बन्ध में शायद यथार्थ होगा; किंतु यह स्वीकार करना पड़ेगा कि स्कन्दगुप्त के मध्यदेशीय सिक्कों का रूप प्रथम कुमारगुप्त के सदृश ही है (फ० १८,१६-२२)। कुमारगुप्त के समय में वास्तविक चित्र तैयार करने का जो प्रयत्न आरम्भ हुआ, वह बाद में त्याग दिया गया। कुछ दुष्प्राप्य सिक्कों के (फ० १७, २८) पुरोभाग पर क्षत्रप आकृति वर्तमान है और पृष्ठभाग में पूँछ फैलाये मोर का प्रयोग किया गया है।

(२) मध्यदेशीय सिक्कों पर यूनानी लेख के अर्थहीन अवशेष नहीं पाये जाते, जो प्रायः पश्चिम भारतीय सिक्कों पर, दोनों उपप्रकारों को छोड़कर, पाये गये हैं।

(३) पश्चिम भारतीय सिक्कों पर तिथि राजा के सिर के पीछे उत्कीर्ण रहती थी; किन्तु मध्यदेशीय सिक्कों पर सामने मिलती है। अंकचिह्न भी विभिन्न हैं (फ० १७,१ की फ० १७, २२-२३ से तुलना कीजिए।)

(४) पश्चिम भारतीय सिक्कों के पृष्ठभाग पर गरुड की आकृति की जगह मध्य-देशीय सिक्कों पर पंख फैलाये मोर का प्रयोग किया गया है। यदि गरुड के प्रदर्शन में गुप्तवंश के राज-चिह्न दिखलाने की भावना है तो मोर का सम्बन्ध कुमार या कार्तिकेय नामक देवता से हो सकता है, जिनका वाहन मोर था। इसी देवता के नाम पर मुद्रा-निर्माता कुमारगुप्त का नामकरण हुआ था।

(५) जहाँ तक मुद्रालेख का सम्बन्ध है, पश्चिम भारतीय सिक्कों पर गद्य में लेख मिलता है; किन्तु मध्यदेशीय सिक्कों पर छंदोबद्ध लेख है। पश्चिमी भारत के 'परमभागवत महाराजाधिराजश्रीकुमारगुप्तमहेन्द्रादित्य'[1] के बदले मध्यदेश में 'विजितावनिरवनिपतिः कुमारगुप्तो दिवं जयति' उत्कीर्ण है, जिसे सम्राट के धनुर्धारी प्रकार की स्वर्णमुद्रा से लिया गया है। राजा का नाम बदल कर यही लेख मध्यदेश में दो सौ वर्षों तक प्रचलित रहा। इसका स्कन्दगुप्त, बुधगुप्त, तोरमाण, सभी मौखरि राजा, प्रतापशील तथा हर्षवर्द्धन ने अनुकरण किया था।

(६) अक्षरों की शैली में कोई भिन्नता नहीं है। यह विचारणीय बात है कि जो मध्य-देशीय सिक्कों पर अक्षरों की मात्राएँ ध्यान-पूर्वक खुदी हुई हैं (फलक १७, २२-२५), वे पश्चिमी भारतीय प्रकार के ठप्पे पर नहीं मिलती हैं, यद्यपि उनके लिए पर्याप्त स्थान था। (फलक १७,३-४)।

---

1. स्कन्दगुप्त के सिक्के छोटे होने के कारण वेदी प्रकार के सिक्कों का लेख 'महाराजाधिराज' को हटाकर संक्षिप्त कर दिया गया है। कुमारगुप्त के सिक्कों के एक उपप्रकार में भी केवल 'राजाधिराज' मिलता है।

इस प्रकार के सिक्कों का औसत आकार .५५" से .६" तक है तथा तौल २६ से ३१ ग्रेन तक पाई जाती है। ब्रिटिश संग्रहालय के नं० ३६६ का सिक्का तौल में ३६.५ ग्रेन है, तथा नं०३६८ का केवल २५.६ ग्रेन। तौल के विचार से ये सिक्के अपवाद हैं।

सिक्कों पर की तिथियाँ गु० स० में १२१, १२४, १२८, १२६,१३०,१३५ उत्कीर्ण हैं, जो ई० स० ४४०, ४४३, ४४७, ४४८, ४४६ तथा ४५४ के बराबर हैं। इनसे पता चलता है कि अपने प्रांत में सम्राट् ने शासन के पिछले काल में रजत सिक्कों को आरम्भ किया था।

उत्तरप्रदेश में मध्यदेशीय प्रकार के सिक्के मिलते हैं। वे सहारनपुर, मथुरा, कानपुर बनारस तथा अयोध्या से प्राप्त हुए हैं। आश्चर्य है कि उस प्रकार के सिक्के बिहार प्रान्त में बहुत ही कम मिले हैं, जो गुप्त साम्राज्य का केन्द्र और राजधानी था। बंगाल से भी ये सिक्के नहीं मिले हैं, जहाँ पर अवनति के समय में भी गुप्तों का अधिराज्य था। चाँदी के सिक्के इन प्रांतों में क्यों नहीं पाये जाते हैं, यह कहना कठिन है।

मध्यदेशीय सिक्के पाँच उपप्रकारों में विभक्त किये जाते हैं। पहले उपप्रकार के पृष्ठभाग पर बाईं ओर एक अनिश्चित वस्तु (uncertain object) है,जो परम्परागत कमल का स्वरूप प्रकट करती हो। दूसरे उपप्रकार में यह वस्तु तीन बिन्दुओं से व्यक्त की गई है। तीसरे में वह स्थान खाली है। चौथा उपप्रकार पहले के सदृश है;किंतु इसमें एक विशेषता है कि वर्तुलाकार मुद्रालेख तथा बिन्दुसीमा के बीच किनारा (margin) है। पुरोभाग का अर्द्धचित्र क्षत्रप उपप्रकार का है। फलक पर प्रदर्शित सिक्कों के विभिन्न उपप्रकारों का वर्णन यहाँ किया जायगा।

मध्यदेशीय सिक्के

पहला उपप्रकार

(परम्परागत कमल के साथ)

चाँदी, .६५", ३१.४ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कै०, फ० ८,१

पुरोभाग - दाहिने राजा का अर्द्धचित्र, चिपटी नाक, मूँछ का अभाव यूनानी अक्षर की अनुपस्थिति, चेहरे के सामने तिथि १००, ३०,५

पृष्ठभाग—मोर खड़ा बाईं ओर देखता हुआ पंख फैलाये, कोई वस्तु, सम्भवत: कमल बाईं ओर, बिन्दु-सीमा कुछ भाग में, लेख बारह बजे 'विजितवनरवनपत (कुमारगु) प्तो दिवं जयत' (फ० १७,२२)।

चाँदी, .५५", ३१.३ ग्रेन, वही फ० २८,३

पुरोभाग—पूर्ववत्, तिथि अर्द्धस्पष्ट (१००) २०,२

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, लेख बारह बजे 'विजितवनिरवनिपति (कुमारगुप्त दिवं) जयत', कमल (?) दिखलाई पड़ता है (फ० १७, २३)।

दूसरा उपप्रकार[1]

(सिक्के पर तीन बिन्दु)

चाँदी, .५५", ३१.१ ग्रेन, वही, फ० १८,७

पुरोभाग—पूर्ववत्, तिथि अविद्यमान।

पृष्ठभाग—बारह बजे लेख 'वजतवनर-वनप (ति कुमा) रगुप्तो दिवं जयति' बाईं ओर नीचे सिक्के पर तीनबिन्दु (फ० १७,२४)।

तीसरा उपप्रकार[2]

(पृष्ठभाग पर चिह्न या बिंदुओं का अभाव)

चाँदी, .५५", ३२.१ ग्रेन, वही, फ० १८,१२

पुरोभाग—पूर्ववत, दाहिने तिथिसंख्या का अवशेष।

पृष्ठभाग—बारह बजे लेख–'वजतवनरवनपतकुमारगुप्तो दवं जयति' चिह्न या बिंदुओं का अभाव (फ० १७,२५)।

चौथा उपप्रकार

(वर्तुलाकार बिंदुसीमा तथा बीच खाली जगह)

चाँदी, .५५", २७.४ ग्रेन, वही, फ० १८,१५

पुरोभाग– दाहिने राजा का अर्द्धचित्र, क्षत्रप उपप्रकार की मूँछ।

पृष्ठभाग—पहले उपप्रकार की तरह लेख नौ बजे 'वजतवनरवनपतकुमारगुप्त दवंजयति' (फ० १७, २६)।

छठा वर्ग

(पश्चिमी ढंग के चाँदी के पानीवाले सिक्के)

कठियावाड़ से प्रथम कुमारगुप्त के अनेक ताम्बे के सिक्के मिले हैं, जिनपर बहुत भद्दी रीति का पुरोभाग में राजा का सिर बना है तथा पृष्ठभाग पर गरुड के साथ वर्तुलाकार मुद्रा-लेख उत्कीर्ण है। ये चाँदी के सिक्के से भी छोटे आकार के हैं। उनका व्यास .३५" से .४५" तक है। सब से अधिक तौल ३५.२ ग्रेन की है तथा सब से कम २२.६ ग्रेन की। औसत तौल २९ ग्रेन है। कुछ सिक्कों पर चाँदी का पानी अभी भी साफ मालूम पड़ता है। इस कारण

---

१. ब्रि० म्यू० कै० फ० १८, ६-७।

२. वही, फ० १८,९--१४।

हमें यह मानना पड़ेगा कि वे ताम्बे के सिक्के थे, जिनपर चाँदी का पानी चढ़ाया गया और चाँदी के सिक्के की तरह प्रचलित किये गये। कुमारगुप्त के शासनकाल के अंत में गुप्तसाम्राज्य पर अनेक हमले हुए और आपत्तियाँ आगईं, जिनसे संभवतःराजकोष खाली हो गया होगा। अतएव चाँदी के पानीवाले सिक्के चलाये गये। इनमें से दो हमने फलक में अंतर्भूत किया है, जिनका वर्णन नीचे दिया गया है।

ताम्बा चाँदी-पानीवाला, .४५", ३०.४ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कॅ०, फ० १८,१६

पुरोभाग—दाहिने राजा का भद्दा चित्र, आगे ग्रीक अक्षर H,O।

पृष्ठभाग—गरुड, लेख चार बजे 'परमभगवत रजधरज' (फ०१७, १८)।

ताम्बा चाँदी-पानीवाला .४५", २८.४ ग्रेन, वही, फ० १८,२३

पुरोभाग--राजा का अर्द्धचित्र, अधूरा।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, लेख चार बजे '[पर] म-भगवत रजधरज श्र कुमरगुप्त' (फ० १७, १६)।

मध्यदेश के चाँदी का पानीवाला सिक्का

मध्यदेश के चाँदी के पानीवाले सिक्के पश्चिम भारतीय सिक्के से कम संख्या में मिलते हैं। ब्रिटिश संग्रहालय में एक नमूना है नं० ४०२, जो चौड़ा तथा पतला है। तौल में २२.८ ग्रेन तथा आकार में .६" है। यह सिक्का वास्तविक रूप से मध्यदेश प्रकार का नहीं है; क्योंकि चित्र का रूप पश्चिम भारतीय है, यद्यपि पृष्ठभाग पर फैलाये पंखवाला मोर पाया जाता है। ऐसे दो सिक्के कन्नौज में मिले हैं। कलकत्ता-संग्रहालय में शायद उनमें से एक है[1]। दो सिक्के उन्नाव जिले के संचकोट स्थान में मिले हैं, जो लखनऊ-संग्रहालय में सुरक्षित हैं[2]। उनका प्रकाशन नहीं हुआ है। स्मिथ ने रायबरेली जिले के जैस स्थान से एक सिक्का पाया था, जिस पर चाँदी के पानी का अवशेष तक नहीं रहा[3]। काशी विश्वविद्यालय के संग्रह में एक ऐसा सिक्का है, जो लखनऊ से खरीदा गया था। इसलिए सम्भवतः उत्तरप्रदेश में प्राप्त हुआ होगा। पूरे पृष्ठभाग पर चाँदी का पानी है। पुरोभाग के ऊपर के हिस्से से वह धुल गया है।

फलकस्थित दो सिक्कों का वर्णन

ताम्बा चाँदी पानीवाला, .६",२२.८ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कॅ०, फ० १८,१४

पुरोभाग—राजा का भद्दा चित्र।

---

१. ज० रा० ए० सो० १८९३ पृ० १२८ सूचीपत्र में उन दो से एक का वर्णन है। दूसरे के विषय में कुछ पता नहीं है।

२. ज० ए० सो० बं० १८९४ पृ० १७३।

३. ज० रा० ए० सो० १८९३ पृ० १३६।

पृष्ठभाग—फैलाये पंखवाला मोर, लेख बारह बजे '[विजिता] वनरवनिपतिकुमार [गुप्त] दवजय [ति]' (फ० १७, २८)।

तम्बा चाँदी-पानीवाला .५५", २६.५ ग्रेन, काशीविश्वविद्या० संग्रह।

पुरोभाग—दाहिने राजा का चित्र, सामने तिथि १००,३० (?), ऊपरीभाग से चाँदी का पानी धुल गया है, जिससे रंग में काला पड़ गया है।

पृष्ठभाग—फैलाये पंखवाला मोर, वर्तुलाकार लेख '[वि] जितवनिरवनिपतिकुमरगुप्तो दव जय [ति]', (फ० १७, २७)।

क्या गुप्तों ने चाँदी ढंग के ताम्बे के सिक्के प्रचलित किये थे?

बलभी के समीप अत्यधिक संख्या में डा० बुलरने गुप्त ताम्बे का सिक्के एकत्र किये थे, जो चाँदी के सिक्कों के समान थे। उनका यह मत था कि वे वास्तविक ताम्बे के सिक्के थे। उन्हें गुप्तनरेश ने तैयार नहीं किया था; किंतु बाद में बलभी पर शासन करनेवाले राजाओं ने चलाया था[1]।

प्राचीनकाल में ताम्बे के सिक्कों का तैयार करना श्रमसाध्य तथा लाभरहित कार्य था। अतएव यह सम्भव नहीं कि काठियावाड़ के स्थानीय छोटे राजा ने इतनी अधिक संख्या में ताम्बे का सिक्का चलाया हो, अथवा किसी सराफ ने तैयार किया हो। इस कारण स्मिथ का विचार यथार्थ प्रकट होता है कि किसी बड़े राजा ने उन्हें तैयार किया और वे क़ानूनी सिक्के मान लिये गये[2]।

इसे स्वीकार करते हुए कि कुछ सिक्के मूलतः चाँदी के पानीवाले होंगे, स्मिथ ने कहा था कि ये प्रचुर संख्या में मिलनेवाले सिक्के मूलतः ताम्बे के थे, चाँदी पानीवाले नहीं; किंतु उनका आकार, तौल, चिह्नसमूह तथा लेख चाँदी के सिक्के से मिलते-जुलते हैं। श्री ऍलन इस विचार से सहमत नहीं हैं और उनके मतानुसार जो सिक्के आज तांबे के दीखते हैं, वे सब पहले चाँदी के पानीवाले थे, जो चाँदी की तरह चलाये गये थे[3]। हमारा भी यही विचार है, अतएव इन्हें पृथक वर्ग में रखकर वर्णन किया गया है।

प्राचीनभारत में यह रिवाज या प्रथा थी, कि सोने चाँदी तथा ताम्बे के सिक्के आकार, प्रकार, तौल तथा चिह्नसमूहों में परस्पर भिन्न हों। गुप्तनरेश इस परम्परा का पालन करते रहे। अतः यह सम्भव नहीं कि प्रथम कुमारगुप्त तथा स्कन्दगुप्त के समय में इस रीति को त्याग दिया गया हो। उनके लिए यह मूर्खता तथा अदूरदर्शिता का कार्य होता, यदि वे ताम्बे के सिक्कों का ऐसा एक नया प्रकार आरम्भ करते, जो चाँदी के सिक्कों के बिलकुल समान हो। आर्थिक समस्या के कारण उन्होंने चाँदी के सिक्कों की जगह चाँदीपानी के सिक्के

१. ज० रा० ए० सो० १८९३ पृ० १३८।
२. ज० रा० ए० सो० १८९३ पृ० १३९।
३. बि० न्यू० कै० भूमिका पृ० ९७।

आरम्भ किये थे। यदि ठीक उनके आकार के ताम्बे के भी सिक्के प्रचलित करते तो जनता में अशंका हो जाती कि चाँदीपानी के सिक्के भी सचमुच ताम्बे के हों।

गुजरात तथा काठियावाड़ में ऐसी भी प्रथा न थी कि ठीक चाँदी के आकार तथा ढंग के ताम्बे के भी सिक्के चलाये जायँ। बड़ी खोज के बाद स्मिथ को चष्टन का केवल एक ही ताम्बे का सिक्का मिला था, जो चाँदी के सिक्के के ढंग का रहा। किंतु यह असम्भव नहीं है कि जिसे स्मिथ आज ताम्बे का सिक्का कहते हैं, वह मूलतः चाँदी के पानीवाले सिक्का हो, जिनका पानी धुल गया है। चष्टन से कुछ साल पूर्व राज्य करनेवाला नहपाण ने अपने चाँदी के सिक्कों के सदृश पानीवाले सिक्के तैयार किये थे। तो यह सम्भव है कि चष्टन ने भी वैसा ही तैयार किया हो। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि उसे अपना राज्य गुजरात-काठियावाड़ में जमाने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। किंतु यद्यपि हम अनुमान भी करलें कि चष्टन ने चाँदी सिक्कों के ठीक अनुकरण पर ताम्बे के सिक्के चलाये हों, तथापि यह सम्भव नहीं कि गुप्तराजा ने उसका नकल किया था। चष्टन के तमाम उत्तराधिकारियों ने अपने ताम्बे के सिक्कों के लिए दूसरा आकार और चिह्नसमूह निश्चित किये थे, इसलिए यह मानना सम्भव नहीं कि कुमारगुप्त ने तीन सौ वर्ष पूर्व शासन करनेवाले नहपाण चष्टन का अनुकरण करके चाँदी पानीवाले सिक्के ठीक तांबे के समान तैयार किये थे, न कि उनसे भिन्न ढंग में, जैसा कि पिछले शकनरेशों ने अनेश शतकों तक अविच्छिन्न परंपरा में किया था। गुप्त सरकार यह जरूर चाहती होगी कि जनता को तनिक भी संदेह न हो कि चाँदी पानीवाले सिक्के सचमुच तांबे के हैं, इसलिए उसके द्वारा यह प्रमाद होना असंभव था कि तांबे के सिक्के भी प्रचलित हों, जो सर्व-प्रकार से चाँदी पानीवाले सिक्कों के अनुकरण में बने हों।

सर्व प्रमाण एवं परिस्थिति का विचार करके यह निर्णय करना उचित होगा कि छठे वर्ग के छोटे आकार के तथा भद्दी कारीगरी के सिक्के पहले चाँदी पानीवाले थे, न कि तांबेके, जैसा वे आज दीखते हैं।

प्रथम कुमारगुप्त की ताम्रमुद्राएँ

जैसा कहा गया है, प्रथम कुमारगुप्त के ताम्बे के सिक्कों पर विचार करते समय काठिया-वाड़ से अत्यधिक संख्या में प्राप्त छोटे सिक्कों की गणना छोड़ देनी होगी, जो आज ताम्बे के सिक्के प्रकट होते हैं। मूलतः वे चाँदी के पानीवाले सिक्के हैं। प्रथम कुमारगुप्त के सच्चे ताम्बे के सिक्के बहुत कम हैं। कलकत्ता-संग्रहालय में वेदीप्रकार का एक सिक्का, तथा सेंटपीटर्स वर्ग (लेनिनग्राड) संग्रहालय में दूसरा उसी तरह का सिक्का सुरक्षित है। ब्रिटिशसंग्रहालय में एक भी ताम्बे का सिक्का नहीं है। बम्बई के संग्रहालय में छत्रप्रकार का एक सिक्का है तथा धनुर्धारीप्रकार का बोदलियन-संग्रह में एक दूसरा सिक्का है, जिनमें राजा खड़ा है। इन प्रकारों का वर्णन निम्नलिखित है।

१. ज० रा० ए० सो० १८९३ पृ० १३७-४४।

पहला वर्ग

छत्र प्रकार[१]

यह सिक्का चन्द्रगुप्त के ताम्बे के सिक्कों के पहले-वर्ग से सर्वथा मिलता-जुलता है। पृष्ठभाग पर लेख एक पंक्ति के बदले दो पंक्तियों में लिखा गया हैं। 'म' तथा 'ह' अक्षर पूर्वी ढंग के हैं। केवल एक ही सिक्का अभी तक ज्ञात है, जो बम्बई संग्रहालय में सुरक्षित है।

ताम्बा. .१", ८४ ग्रेन, बम्बई-संग्रहालय।

पुरोभाग—राजा प्रभामंडलरहित, बायें तीन-चौथाई खड़ा, छत्रधारी सेवक पीछे अस्पष्ट, दस बजे छत्र का डंडा तथा ऊपर का भाग दिखाई पड़ता है।

पृष्ठभाग—ऊपरी आधे में गरुड़, निचले आधे भाग में लेख दो पंक्तियों में, पहली पंक्ति 'महाराज श्र कुमा' दूसरी पंक्ति' र गुप्त'; अंतिम अक्षर अंशत: स्पष्ट (फ० १८,१)।

दूसरा वर्ग

धनुर्धारी प्रकार[२]

बम्बई संग्रहालय के एक ही नमूना से इस प्रकार का ज्ञान हमें हुआ है। यह बहुत अस्पष्ट है; किन्तु बाहरी रेखा से प्रकट होता है कि राजा बायें हाथ में धनुष तथा दाहिने में बाण पकड़े हुए है।

ताम्बा, .६", ५८ ग्रेन, बम्बई संग्रहालय।

पुरोभाग—अस्पष्ट, राजा बाईं ओर खड़ा है, बायें हाथ में धनुष तथा दाहिने में बाण हैं, लेख अविद्यमान।

पृष्ठभाग—ऊपरी आधे भाग में गरुड़ अस्पष्ट, निचले भाग में लेख, एक पंक्ति में–'श्र कुमार गु (प्तः)' (फ० १८,२)।

तीसरा वर्ग

खड़ा राजा[३]

बोदलियन संग्रह में ऐसा अकेला सिक्का है, जिसे अयोध्या से ट्रेगर महोदय ने पाया था। 'मा' की 'आ' मात्रा एक लम्बवत् लकीर से दिखलाई गई है, जैसी आजकल देवनागरी में दिखाई जाती है।

ताम्बा, .७", तौल अप्रकाशित, बोदलियन संग्रह।

---

१. ज०न्यू० सो० भा० ११ पृ० ५६।
२. ज० न्यू० सो० इ० भा० ११ पृ० ५६।
३. न्यू० क्रा० १८९१ फ० २,१५;ब्रि० म्यू० कै० गु०डा०पृ० ११३;ज० रा० ए० सो० १८९३ पृ० १४३।

पुरोभाग—राजा खड़ा, कमरबंध तथा आभूषण पहने कुल्हे पर बायाँ हाथ, दाहिने हाथ से बेदी पर आहुति दे रहा है।

पृष्ठभाग—ऊपरी भाग में गरुड खड़ा सामने देखता हुआ, पंख फैलाए, निचले आधे में लेख, 'कुमारगुप्त' (फ॰ १८, ३)।

चौथा वर्ग

वेदी प्रकार

इस तरह के केवल तीन सिक्के मिले हैं। पहला कलकत्ता संग्रहालय में, दूसरा सेंट-पीटर्सवर्ग संग्रहालय में और तीसरा सिक्का वह है, जिसे स्मिथ ने हूण सिक्का के नाम से प्रकाशित किया है[१]। उस पर उसने गलती से 'श्रीकु' के स्थान पर 'श्री-तो' लेख पढ़ा था।

पुरोभाग पर उत्कीर्ण वस्तु को हमने वेदी बताया है; किंतु वह गरुड की हीन आकृति भी मानी जा सकती है। क्योंकि भद्दी कारीगरी का गरुड वेदी के सदृश मालूम पड़ता है। स्मिथ का कथन है कि पृष्ठभाग पर देवी तिपाई पर पैर अड़ा कर बैठी है। श्रीॲलन का मत है कि वह घुटने टेके सिंह की पीठ पर बैठी है। यह चिह्न-समूह इतना भद्दा तथा आकार रहित है कि कोई अनुमान ठीक नहीं उतरता। लेनिनग्राड संग्रहालय के सिक्के पर देवी बायें हाथ में कोई वस्तु लिये दिखलाई गई है जो नालयुक्त कमल हो सकती है।

गुप्तवंश में दो कुमारगुप्त हो गये हैं, जिनके शासन काल में सतरह वर्षों का अन्तर है। अतएव यह ठीक कहना कठिन है कि चौथे प्रकार का सिक्का प्रथम या दूसरे कुमार गुप्त में किसके द्वारा चलाया गया था। उसे प्रथम कुमार का मानने के लिए कुछ प्रमाण उपस्थित किये जा सकते हैं। (१) कुमारगुप्त राजा की स्वर्णमुद्रा पर शासक का संक्षिप्त नाम 'कु' मिलता है, जैसा इस प्रकार के सिक्के पर उत्कीर्ण है। (२) प्रथम तथा दूसरे कुमारगुप्त की मृत्यु के बीचवाले समय में स्कन्दगुप्त, पुरगुप्त तथा नरसिंहगुप्त शासन करते रहे; किंतु उन्होंने ताम्बे का कोई सिक्का नहीं चलाया था। अतएव यह सोचना सम्भव नहीं है कि द्वितीय कुमारगुप्त ने थोड़े तथा संकटमयकाल में ताम्बे के सिक्कों को पुनः प्रचलित करने का प्रयास किया हो। वह अधिक प्रिय भी न था। (३) सिक्के के केवल भद्दे होने के कारण हम उनको द्वितीय कुमारगुप्त के नहीं मान सकते। यह ज्ञात है कि प्रथम कुमारगुप्त के अंतिम समय में साम्राज्य पर आक्रमण हो रहा था और पश्चिम भारत के टकसालों में चाँदी के पानी-वाले सिक्के तैयार हो रहे थे, जो कारीगरी में बिलकुल भद्दे हैं। किंतु इन सिक्कों को द्वितीय कुमारगुप्त के मानने के लिए भी कुछ प्रमाण उपस्थित किये जा सकते हैं।

(१) द्वितीय कुमारगुप्त ने अपनी स्वर्णमुद्राओं पर नाम का आदि अक्षर ही प्रयोग किया था, जैसा विवादपूर्ण ताम्बे के सिक्कों पर पाया जाता है। (२) उनमें से एक सिक्का हूणसिक्कों

---

१. ज॰ रा॰ ए॰ सो॰ १९०७ पृ॰ ९७; ब्रि॰ म्यू॰ कै॰ फ॰ १८, २५-२६; इ॰ म्यू॰ कै॰ भा॰ १ पृ॰ १२१, फ॰ १८, २।

के साथ पंजाब में पाया गया था। इससे यह सुझाव रखा जाता है कि द्वितीय कुमारगुप्त ने इन्हें प्रचलित किया, प्रथम कुमारगुप्त ने नहीं। (३) स्कन्दगुप्त के चाँदी के सिक्कों पर वेदीनुमा विचित्र आकृति सर्वप्रथम देखी गई। अतः उनके अनुकरण पर तैयार होनेवाला सिक्का पिछले समय का हो सकता है, पहले का नहीं। इसलिए उनका सम्बन्ध द्वितीय कुमारगुप्त से मानना चाहिए, प्रथम से नहीं।

वर्तमान परिस्थिति में इस प्रश्न का हल निकालना कठिन है। हमें यह अधिक संभवनीय मालूम होता है कि ये सिक्के प्रथम कुमारगुप्त-द्वारा निकाले गये थे। स्कन्दगुप्त के चाँदी के सिक्के प्रथम कुमारगुप्त के ताम्बे सिक्कों की वेदीनुमा आकृति की नकल पर तैयार किये गये होंगे। दोनों कुमारगुप्त के शासन में सोलह या सतरह वर्षों का अन्तर था। अतः यह सम्भव है कि प्रथम कुमार के सिक्के पंजाब तक चले गये, जबकि युवराज स्कन्द ने हूणों को अपने राज्य से बाहर (पंजाब में) हटा दिया था। फलक में प्रकाशित सिक्कों का वर्णन निम्नलिखित है।

(१) ताम्बा, .३५", तौल अज्ञात, कलकत्तासंग्राहालय

पुरोभाग—बिन्दुविभूषित वर्तुल में वेदी के ऊपर के लेख, 'श्री कु' नीचे।

पृष्ठभाग—अस्पष्ट आसन पर देवी बैठी, बायें हाथ में लंबे नाल का कमल, दाहिने में कोई वस्तु अस्पष्ट (फ० १८, ४)।

(२) ताम्बा .६५", तौल अज्ञात, सेंटपीटर्सवर्ग संग्रहालय

पुरोभाग—पूर्ववत्, वेदी ऊपर में कटी हुई।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, बायें हाथ की वस्तु सीमा से बाहर, दाहिने हाथ में स्यात् नालयुक्त कमल पुष्प लिये है (फ० १८, ५)।

दसवाँ अध्याय

स्कन्दगुप्त की मुद्राएँ

(अ) स्वर्ण मुद्राएँ

गुप्तसम्राट् समुद्रगुप्त, द्वितीय चन्द्रगुप्त तथा कुमारगुप्त के सोने के सिक्के सुन्दर तथा अनेक आश्चर्यमयी विविधता से तैयार किये गये थे। स्कन्दगुप्त के शासनकाल के आरम्भ से ही नाना भाँति की स्वर्णमुद्राओं के तैयार करने की लिप्सा समाप्तप्राय हो गई। उसने निश्चित रूप से तीन प्रकार अथवा सम्भवतः चार प्रकार के सिक्कों का निर्माण कराया था; किन्तु उनमें कोई भी नवीन नहीं कहा जा सकता। उसके उत्तराधिकारियों ने तो केवल एक ही प्रकार में अपने को सीमित रखा, क्योंकि अधिकतर राजा थोड़े समय के लिए शासक हुए थे अथवा विकट परिस्थिति में राज्य करते रहे। स्कन्दगुप्त को अपने वंश की राज्यलक्ष्मी को बचाने तथा प्रतिष्ठा को सुरक्षित रखने के लिए प्रारम्भिक दिनों में अनावृत पृथिवी पर शयन करना पड़ा था, जैसा कि उसके लेखों में कहा गया है। वह राज्यवंश की मर्यादा पुनःस्थापित करने में सफलीभूत रहा। किन्तु वह शासन की समस्याओं में इतना व्यस्त था कि उसे मुद्रा सम्बन्धी बातों पर विशेष विचार करने का समय तक न मिल सका। स्कंदगुप्त के राज्काल में स्वर्णमुद्राओं की तौल पूर्ववत् बढ़ती रही। उसके पिता कुमारगुप्त के अधिकतर सिक्के १२७ ग्रेन तौल के थे, यद्यपि उसने कुछ १३० ग्रेन के भी निकाले थे। स्कन्दगुप्त के समय अधिकतर मुद्राएँ १३० या १३२ ग्रेन की निकलने लगीं। किन्तु धनुर्धारी प्रकार के एक उपप्रकार में उसने ८० रत्ती या १४४ ग्रेन का तौलमान स्वीकृत किया। मालूम होता है कि स्मृतियों में जो 'सुवर्ण' मुद्रा का ८० रत्तियों का मान दिया है, उसको प्रचार में लाने की स्कंदगुप्त की संभवतः इच्छा थी। किंतु केवल एक ही उपप्रकार में यह तौल मान क्यों प्रचलित किया गया, यह समझना कठिन है। कनिंघम ने बताया था कि ८० रत्तियाँ तौल के सिक्कों में हीनधातुमिश्रण बहुत बढ़ाया गया है; किंतु हाल में ब्रिटिश म्यूजियम में के स्कंदगुप्त की आठ सुवर्णमुद्राओं का जो धातुविश्लेषण किया गया था, उससे यह सिद्ध हुआ है कि अधिक तौल के सिक्कों में भी उसी प्रमाण में मिश्रधातु है, जिस प्रमाण में कम तौल के सिक्कों में गुप्त साम्राज्य के प्रारंभ से रहती थी।

१. ज० बा० रा० सो० ३४, पृ० १२४।

(अ) धनुर्धारी प्रकार

स्कन्दगुप्त का लोकप्रिय सिक्का धनुर्धारी प्रकार का था, जैसा कि उसके पितामह के समय में भी था; परन्तु उसकी मुद्राओं में उस प्रकार की अनेक विविधता नहीं पाई जाती है, जो द्वितीय चन्द्रगुप्त की मुद्राओं में थी। राजा एक ही प्रकार से खड़ा है, एक ही प्रकार से धनुष पकड़ता है, उसका नाम भी एक ही जगह उत्कीर्ण किया गया है। राजा लम्बा कोट तथा पायजामा पहने हुए है, धोती नहीं। वह सदा बायें देखता है तथा बायें हाथ से धनुष के सिरे को पकड़ता है। दाहिने हाथ में बाण लिये हुए है। उसका नाम 'स्कन्द' बायें हाथ के नीचे लम्बवत् लिखा है; धनुष तथा प्रत्यंचा के बीच कभी भी वह अंकित नहीं मिलता। तौल को ध्यान में रखकर धनुर्धारी प्रकार को दो उपप्रकारों में बाँट सकते हैं। पहले उपप्रकार के सिक्कों की तौल १३२ ग्रेन है और दूसरे उपप्रकार की तौल १४४ ग्रेन के बराबर। पहला दूसरे से आकार में जरूर छोटा मालूम पड़ता है।

इन सिक्कों पर अंकित वर्तुलाकार मुद्रालेख पूरी तरह अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है। पहले उपप्रकार (फ० १४, ८) में 'जयति महीतलम्—सुधन्वी' लिखा है।[१] दूसरे उपप्रकार में लेख सम्भवतः 'परहितकारी राजा जयति दिवं श्री क्रमादित्यः' है[२] (राजा क्रमादित्य, दूसरे की भलाई करनेवाला, स्वर्ग की प्राप्ति करता है)। उपगीति छंद। यहाँ यह कहना आवश्यक है कि राजा शब्द किसी पर साफ नहीं है (फ० १४, ६-११)। एक मुद्रा पर 'परहितकारी' के बाद कुछ संयुक्ताक्षर दीखता है (फ० १४, ६)। स्मिथ ने कहा है कि बारस्टो के संग्रह में एक सिक्के के मुद्रालेख में 'विक्रम' शब्द अंतर्भूत था[३]। उसके कहने के अनुसार इस सिक्के पर वर्तुलाकार मुद्रालेख 'परम विक्रम श्रीस्कन्दगुप्तदेव' है। इस मुद्रा का चित्र प्रकाशित न होने के कारण ऐसा लेख था या नहीं, यह कहना कठिन है। पहले उपप्रकार में पृष्ठभाग पर 'श्रीस्कन्दगुप्तः' तथा दूसरे पर 'क्रमादित्यः' लेख उत्कीर्ण है। १४४ ग्रेनवाला सिक्का आकार में भी पहले से बड़ा है। स्कन्दगुप्त के धनुर्धारी प्रकार के सिक्कों पर राजा धोती पहने नहीं है, कोट तथा पायजामा पहने हुए है। इससे अधिक इस प्रकार के सिक्के का विवेचन अनावश्यक है। उसका वर्णन निम्नलिखित है—

फलकस्थित मुद्राएँ

पहला उपप्रकार[४]

(१३२ ग्रेन तौल, पृष्ठभाग पर 'श्रीस्कन्दगुप्त')

(१) सोना, .७५", १३०.२ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कॅ० गु० डा०, फ० १६, २ पुरोभाग; फ० १६, ५ पृष्ठभाग।

---

१. अक्षर 'न्वी' राजा के सिर तथा गरुड के बीच लिखा है। व्याकरण दृष्ट्या वह 'न्वा' होना चाहिए था।

२. ज० रॉ० ए० सो० १८९३ पृ० १२५। ३. वही।

४. ब्रि० म्यू० कॅ० फ० १९, १–५; ज० रॉ० ए० सो० १८८९।

पुरोभाग—स्कन्दगुप्त बायें खड़ा है, अनावृत सिर, कोट, पायजामा पहने, जूते, हार, कुण्डल आदि धारण किये हुए है, बायें हाथ में धनुष, प्रत्यंचा भीतर, दाहिने हाथ में बाण, पीछे गरुडध्वज फीत सहित, बायें हाथ के नीचे 'स्कन्द', वर्तुलाकार मुद्रालेख एक बजे 'जयत (महीतल)'; दस बजे, 'सुधन्वी'।

पृष्ठभाग—लक्ष्मी प्रभामण्डलयुक्त, सामने कमल पर बैठी, दाहिने हाथ में पाश, बायें में कमल जाँघ पर स्थित, बाईं ओर चिह्न, लेख दाहिने 'श्री स्कन्दगुप्त' (फ० १४, ७)।

दूसरा उपप्रकार[1]

(तौल १४४ ग्रेन, पृष्ठभाग पर 'क्रमादित्य')

(२) सोना, .८५", १४२.८ ग्रेग, ब्रि० म्यू० कै०, फ० १८, ११

पुरोभाग—पूर्ववत् वर्तुलाकार मुद्रालेख, एक बजे 'परमात', बाद में अक्षर जीह्वामूलीय के सदृश्य है। 'क' इससे लगा है, दूसरा अक्षर 'प्र' या 'बु' प्रकट होता है, बायें अधूरा लेख।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, लेख 'क्रमादित्य' (फ० १४, ८)।

(३) सोना, .८", तौल अज्ञात, ब्रि० म्यू० कै०, फ० १६, १४

पुरोभाग—पूर्ववत्, पहले के पाँच अक्षर 'परहतक' पढ़े जा सकते हैं, जो 'परहितकारी' के रूप हैं।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, सीमा से बाहर पाश, लेख 'क्रमादित्य', इसमें 'द' 'म' या 'ज' के सदृश प्रकट होता है (फ० १४, ६)।

(४) सोना, .६", १३८.७ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कॅ० गु० डा०, फ० १६, १३

पुरोभाग—पूर्ववत्, एक बजे से वर्तुलाकार लेख 'परहितकारी', बाद के दो अक्षर अधूरे, किंतु उनसे 'राजा' शब्द प्रकट नहीं होता।

पृष्ठभाग—पूर्ववत् (फ० १४, १०)।

(आ) राजा और लक्ष्मी प्रकार[2]

इस प्रकार के नामकरण में ही गहरा मतभेद है। पुरोभाग पर लेख सुवाच्य नहीं है तथा देवी के हाथवाली वस्तु भी अस्पष्ट है। इसलिए इस प्रकार के नामकरण के कारण दो विभिन्न मत हो गये हैं। सर्वप्रथम स्मिथ ने चन्द्रगुप्त-कुमारदेवी के समान इसे राजा-रानी प्रकार का नाम दिया था[3]। पीछे श्री ऍलन ने इस प्रकार को राजा और लक्ष्मीवाला सिक्का बतलाया[4]। हाल ही में श्रीजगन्नाथ ने स्मिथ की बातों की ही पुष्टि की

१. ब्रि० म्यू० कॅ० फ० १९,१० १५ ; ज० रा० ए० सो० १८८९, फ० ३, ७।
२. फलक १४ पर अनवधानता से इस प्रकार का नाम राजा-रानी दिया गया है।
३. ज० रा० ए० सो० १८८९ पृ० ११०; ज० ए० सो० बं० १८८४ पृ० १९९।
४. ब्रि० म्यू० कै० पृ० ९८

है [1]। विभिन्न मतों की ऐसी स्थिति में किसी के पक्ष में निर्णय देना कठिन है; किन्तु यह अधिक संभव है कि पुरोभाग पर की स्त्री रानी की अपेक्षा लक्ष्मी हो। यह सत्य है कि वह प्रभामंडलयुक्त नहीं है; किन्तु लक्ष्मी गुप्तसिक्कों पर प्रभा-रहित भी दिखलाई गई है। (फ० ४, १३ ; ५, १-२)।

यदि इस प्रकार के पुरोभाग में राजा-रानी की आकृतियाँ होतीं तो प्रथम चन्द्रगुप्त की तरह इस ओर दोनों का नाम उत्कीर्ण रहता; किंतु यहाँ ऐसा नहीं है। यह सत्य है कि स्मिथ के मतानुसार राजा के सिर के समीप 'स्क' अक्षर तथा रानी के सिर के पास 'प्रिया' लिखा हुआ है, जो क्रमशः 'स्कन्द' तथा रानी के नाम के लिए प्रयुक्त किये गये हैं [2]। किंतु पहला अक्षर 'न्व' है और वह सम्भवतः पूरे शब्द 'सुधन्वी' का खण्डमात्र है, उसे स्कन्द नाम का पहला अक्षर नहीं माना जा सकता। किसी भी सिक्के पर रानी के सिरे के पास 'प्रिथा' निश्चित रूप से नहीं पढ़ा जा सकता। इस प्रसंग में यह कहा जा सकता है कि प्रथम चन्द्रगुप्त अथवा कुमारगुप्त के राजा-रानी प्रकार में राजा सदा दाहिने है तथा रानी बाईं ओर है और राजा रानी को भेंट दे रहा है। इस सिक्के पर राजा बाईं ओर खड़ा है और रानी ही राजा को कोई वस्तु भेंट कर रही है, जिसे वह उत्कंठा तथा ध्यान से देख रहा है। ग्रहीता दाता से हीन ही समझा जाता है। जैसा द्वितीय चन्द्रगुप्त के चक्रविक्रम प्रकार में दिखलाया गया है। इस प्रकार के सिक्कों में स्त्री अधिक उच्च श्रेणी की दिखलाई गई है ; इस लिए उसको लक्ष्मी समझना अधिक उचित होगा।

इस मत पर यह आक्षेप किया जा सकता है कि जब पृष्ठभाग पर लक्ष्मी उत्कीर्ण की गई है तब पुरोभाग पर उसकी स्थिति व्यर्थ-सी प्रकट होती है। इस तर्क में कुछ बल है; किन्तु पुरोभाग पर लक्ष्मी को चित्रित करने के लिए कुछ विशेष कारण भी हम उपस्थित कर सकते हैं। इस प्रकार के पुरोभाग पर सम्भवतः लक्ष्मी द्वारा स्कन्दगुप्त के स्वयंवर का दृश्य दिखाया गया है, जिसका वर्णन भीतरी ग्राम में प्राप्त लेख में पाया जाता है। उच्चकुलीन ललनाएँ प्रायः हाथ में नील कमल रखती थीं; किंतु लक्ष्मी भी हाथ में कमल सदा रखती थी। अतः पुरोभाग की स्त्री को लक्ष्मी समझना उचित होगा। पुरोभाग की लक्ष्मी राजा को कुछ भेंट कर रही है, जिसे वह उत्कंठा तथा ध्यान से देख रहा है। गरुड़ध्वज बीच में है तथा राजा हाथ में धनुष-बाण लिये हुए है। इससे युद्धक्षेत्र की परिस्थिति का संकेत मिलता है। निर्माणकर्त्ता देवी जयलक्ष्मी को युद्धक्षेत्र में अवतरित होनेवाले दृश्य का प्रदर्शन कराना चाहता था और यह भी दिखलाने की इच्छा रखता था कि वह राजा को विजय का कुछ प्रतीक शायद मुकुट भेंट कर रही है।

---

१. ज० न्यू० सो० इ० भा० ८ पृ० ४८-५१।

२. प्रथम कुमारगुप्त के राजा-रानी प्रकार में राजारानी के नाम थे; किंतु वे अंशतः सीमा के बाहर रहने से पढ़े नहीं जा सकते।

यह रहस्य अच्छे सिक्कों के मिलने से ही समझा जा सकता है, जिसमें लेख साफ पढ़ा जाय तथा देवी की हाथवाली वस्तु स्पष्ट दीख पड़े।

अब सिक्के का विवरण प्रस्तुत किया जायगा।

पुरोभाग--राजा बाईं ओर खड़ा है, अनावृत सिर, कुरल (घुँघराले) केश, दाहिनी ओर देखता हुआ, छोटी धोती तथा आभूषण पहने हुए, बायें हाथ से धनुष के बीच का भाग पकड़े हुए दाहिने कंधे पर स्थित, बाण लिये हुए, दाहिनी ओर लक्ष्मी, प्रभामंडल-रहित, आभूषण पहने हुई, उसके पीछे बायें हाथ में लम्बे नालयुक्त कमल, दाहिने हाथ में कोई अनिश्चित वस्तु पकड़े हुई है, जिसे राजा ध्यान से देख रहा है, राजा तथा देवी के बीच गरुडध्वज, प्रत्यंचा के समानान्तर; वर्तुलाकार लेख अस्पष्ट, 'जयति' से आरम्भ तथा राजा के सिर के सामने 'न्व' से समाप्त, शायद 'जयति महीतलम् सुधन्वी' या जैसा धनुर्धारी प्रकार के उपप्रकार पहले में था।

पृष्ठभाग—लक्ष्मी प्रभामंडलयुक्त, कमलासन पर बैठी, सामने देखती हुई, दाहिने हाथ में पाश जाँघ पर स्थित। बायें हाथ में कमल, चिह्न बायें, लेख 'श्री स्कन्दगुप्त'।

फलकस्थित सिक्कों का वर्णन[1]

(१) सोना, .७५", तौल अज्ञात, ब्रि० म्यू० कॅ० गु० डा०, फ० १६, ६

पुरोभाग—पूर्ववत्, राजा को भेंट में देनेवाली वस्तु अनिश्चित, वह वस्तु पट्टबंध का किनारा हो सकती है। वर्तलाकार लेख अस्पष्ट, अक्षरों के कुछ अवशेष, रानी के चेहरे के सामने 'य'; राजा तथा गरुड़ के मध्य 'न्वी'।

पृष्ठभाग—जैसा ऊपर वर्णन किया गया है, लेख 'श्री स्कन्दगुप्त' (फ० १४, १२)।

(२) सोना, .७५", १२८.८ ग्रेन, वही, फ० १६, ६

पुरोभाग—पूर्ववत् देवी के सिरे पर 'जय', अस्पष्ट।

पृष्ठभाग—पूर्ववत् (फ० १४, १३)।

(इ) छत्र प्रकार

बयाना-निधि से ही पहले पहल स्कंदगुप्त के छत्र प्रकार का केवल एक सिक्का मिला है। उससे पहले यह प्रकार अज्ञात था। निधि में इस प्रकार की केवल एक ही मुद्रा मिली है; किंतु संभव है कि ऐसी अनेक मुद्राएँ निधि में एकत्र हुई होंगी। कारण यह है कि इस निधि के जो दो सौ के आस-पास सिक्के गला दिये गये थे, उनमें इस प्रकार के अधिक सिक्के होना सर्वथा संभवनीय था। निधि गाड़ने के समय स्कन्दगुप्त राजा था, उसके सिक्के बर्तन के

---

१. फ० १४ पर इस प्रकार का नाम 'राजारानी' अनवधानता के कारण छापा गया है। हम ऊपर बता चुके हैं कि 'राजा और लक्ष्मी' यह नामकरण अधिक उचित होगा।

ऊपरी भाग में रहना स्वाभाविक था। इसलिए गाड़े गये सिक्कों में उसके कुछ छत्रप्रकार के और भी सिक्के होंगे।

पुरोभाग पर वर्तुलाकार मुद्रालेख अपूर्ण है तथा राजा का नाम नहीं मिलता। किंतु पृष्ठभाग का लेख 'क्रमादित्य', जो स्कंदगुप्त का विरुद था, बतलाता है कि स्कन्दगुप्त ने इसे तैयार कराया होगा। 'क्रमादित्य' से पहले खाली जगह है; अतएव यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि पृष्ठभाग का लेख 'विक्रमादित्य' रहा होगा और उस आधार पर सिक्के का निर्माता द्वितीय चन्द्रगुप्त माना जाय। प्रथम कुमारगुप्त का विरुद कभी भी 'क्रमादित्य' नहीं था; अतएव वह इसका निर्माता नहीं कहा जा सकता। पीछे हम देख चुके हैं कि धनुर्धारी प्रकार के सिक्कों पर स्कन्दगुप्त के लिए 'क्रमादित्य' विरुद का प्रयोग मिलता है; अतएव यह बहुत सम्भव है कि छत्र प्रकार का सिक्का स्कन्दगुप्त-द्वारा तैयार किया गया था। इस प्रसंग में यह कहा जा सकता है कि यह सिक्का घटोत्कच ने तैयार कराया, जो स्कन्दगुप्त का भाई था। क्योंकि जो अकेला धनुर्धारी प्रकार का सिक्का सेंटपीटर्सवर्ग-संग्रहालय में सुरक्षित है, उसमें एक ओर 'घटो' तथा पृष्ठभाग पर की उपाधि 'क्रमादित्य' उत्कीर्ण है। अभी तक इसके लिए कोई प्रमाण नहीं मिला है कि घटोत्कच ने अपने भाई स्कंदगुप्त से झगड़ा करके ई० सन् ४५४-५ के लगभग राज्य पर अधिकार किया था और मुद्राएँ निकाली थीं। यदि सचमुच वह राजाधिराज बना हो तो स्कंदगुप्त की मृत्यु के पश्चात् होगा। अत: उसके सिक्कों की उपस्थिति इस निधि में असंभव सी है। अंत में यह कहना अधिक युक्तिसंगत होगा कि इस छत्र के सिक्के का निर्माता स्कन्दगुप्त ही होगा, न कि घटोत्कचगुप्त[१]।

सिक्के का वर्णन निम्नलिखित है—

सोना, ·८", १३० ग्रेन, बयाना-निधि

पुरोभाग—राजा प्रभामंडलयुक्त, बायें खड़ा, हार तथा भुजबंध पहने हुए, दाहिने हाथ से यज्ञ में आहुति दे रहा है; किन्तु बेदी नीचे दिखलाई नहीं पड़ती, बायाँ हाथ कमर पर लटकती हुई तलवार की मूँठ पर रखे हुए है, वामन सेवक पीछे खड़ा है, जो छत्र पकड़े हुए है, वर्तुलाकार मुद्रामें लेख अस्पष्ट, 'विजितवन' से आरम्भ, अधूरा।

पृष्ठभाग—प्रभामण्डलयुक्त, देवी खड़ी है, बायें देख रही है, हार तथा भुजबंध पहने है, हाथ में पाश, बायाँ हाथ नीचे लटकता हुआ, किन्तु लम्बे नालयुक्त कमल लिये हुए है, उसी ओर चिह्न, लेख दाहिनी ओर 'क्रमादित्य' (फ० १४,१३)।

(ई) अश्वारोही प्रकार

बोडेलियन संग्रह में एक अश्वारोही प्रकार का ही सिक्का सुरक्षित है, जिसकी तौल १४०.५ ग्रेन है। उस पर 'क्रमादित्य' का विरुद उत्कीर्ण है। स्मिथ ने 'क्रमाजित' पढ़ा था।

१. ज० न्यू० सो० इ० भा० १४, ९९-१०८।

परन्तु यह शब्द कोई अर्थ नहीं रखता। तीसरा अक्षर यद्यपि स्पष्ट नहीं है; तथापि 'द' प्रकट होता है 'ज' नहीं (फ० १४, १५)। स्मिथ ने इस सिक्के को द्वितीय चन्द्रगुप्त का माना है। लेकिन उस राजा की उपाधि 'विक्रम' या 'विक्रमादित्य' थी, न कि 'क्रमादित्य'। चन्द्रगुप्त के १४० ग्रेनवाले सिक्के धनुर्धारी प्रकार में पाये गये हैं; किन्तु वे उसके ही थे, ऐसा निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। 'क्रमादित्य' स्कन्दगुप्त का विरुद था, अतएव इस सिक्के को उसीसे तैयार किया जाना मानना उचित होगा। यद्यपि घटोत्कच की भी यही उपाधि थी, तथापि उपरिनिर्दिष्ट कारणों से यह सिक्का उसका मानना असंभव है। दुर्भाग्यवश इस सिक्के के पुरोभाग का लेख पढ़ा नहीं जा सका है। अन्य अच्छे सिक्कों की प्राप्ति से पहले इसका किसी राजा से अंतिम रूप से निश्चित संबंध स्थिर करना कठिन है। श्रीॲलन ने कोई निश्चित राय नहीं दी है। अपनी सूची-पुस्तक की भूमिका में उन्होंने इसकी संभावना मान ली है कि यह सिक्का स्कंदगुप्त का ही है; किन्तु सूचीपत्र में इस राजा के अन्य सिक्कों के वर्णन में इस सिक्के की गणना नहीं की गई है।

इसका विवरण निम्नलिखित है—

(१) सोना, .८", १४०.५ ग्रेन, बोडेलियन संग्रह,

पुरोभाग—राजा अनावृत सिर, बायें घोड़े पर सवार, हथियार रहित, कमरबंध पीछे उड़ रही है, लेख अस्पष्ट, अधूरा।

पृष्ठभाग—मोढ़े पर देवी बैठी हुई, दाहिने हाथ में पाश, बायें में नालयुक्त कमल, अधूरा चिह्न, अधूरा लेख दाहिने 'क्रमादित' (फ० १४, १४)।

स्कन्दगुप्त की रजतमुद्राएँ

स्कन्दगुप्त गुप्तवंश का अंतिम सम्राट् था, जिसने मध्यदेश तथा पश्चिमीभारत प्रकार के चाँदी के सिक्के तैयार कराये थे। गिरनार-प्रशस्ति के आधार पर यह ज्ञात है कि उसका अधिकार कठियावाड़ पर रहा और वहाँ का शासन राज्यपाल के द्वारा होता रहा। अतएव यह स्वाभाविक है कि उसके पश्चिम भारतीय प्रकार के रजत सिक्के अत्यधिक संख्या में हमें मिलते हैं। उसने पिता तथा पितामह के पहले वर्गवाले सिक्के तैयार कराये थे, जिन पर यूनानी अक्षरों के अवशेष वर्तमान हैं; किंतु कुमारगुप्त के दूसरे तथा तीसरे वर्ग की तरह हमलोगों स्कंदगुप्त सिक्के नहीं मिलते[1]। श्री ॲलन ने इस स्थिति को इस तरह समझाया है कि सम्भवतः वे जिले, जहाँ इस वर्ग के सिक्के प्रचलित किये गये थे, स्कन्दगुप्त के शासनाधिकार से बाहर चले गये। इस सुझाव में असम्भव बात नहीं है; परन्तु इस निर्णय पर पहुँचने के लिए और अधिक प्रमाणों की आवश्यकता है। सर्वप्रथम हम यह नहीं जानते कि इन दोनों वर्गों के सिक्के कहाँ प्रचलित रहे। पहले वर्ग के सिक्कों से इन सिक्कों

१. दूसरे वर्ग में यूनानी अक्षर नहीं हैं। पृष्ठभाग पर बिन्दु-समूह भी अज्ञात है। तीसरे वर्ग के सिक्के छोटे किन्तु मोटे हैं और त्रैकूटक सिक्कों से मिलते-जुलते हैं।

में बहुत कम विभिन्नता है। सम्भवतः दूसरे वर्ग को इस कारण बंद कर दिया गया हो कि पश्चिमी भारत में प्रथम वर्ग के सिक्के (यूनानी अक्षरों के साथ) अधिक प्रचलित थे। इस सिलसिले में यह भी कहा जा सकता है कि स्कन्दगुप्त के दो नये सिक्कों के कारण उन दोनों वर्गों को बंद कर दिया गया। नये सिक्के 'नन्दी' तथा 'वेदी' प्रकार के हैं। विभिन्न सिक्कों का प्राप्तिस्थान अज्ञात होने के कारण किसी अन्तिम निर्णय पर पहुँचना कठिन है कि अमुक सीमा तक स्कन्दगुप्त का राज्य पश्चिमी भारत में विस्तृत था।

स्कन्दगुप्त के मध्यदेश प्रकार के सिक्कों में सभी विशेषताएँ हैं, जो कुमारगुप्त के मध्य देश प्रकार में हम देख चुके हैं। पुरोभाग पर राजा के अर्द्धचित्र में क्षत्रप प्रभाव विद्यमान नहीं है तथा पृष्ठभागपर पंखयुक्त मोर की आकृति है, जिसे कुमारगुप्त ने आरम्भ किया था। चेहरे के सामने गुप्तसम्वत् में तिथि उल्लिखित है।

उन सिक्कों का वर्णन निम्नलिखित है। पहले प्रत्येक प्रकार का साधारण विवरण दिया जायगा और बाद में विशिष्ट सिक्कों का वर्णन रहेगा।

पश्चिम भारत के चाँदी सिक्के[1]

पहला वर्ग

(पृष्ठभाग पर गरुड)

पुरोभाग—दाहिने राजा का अर्द्धचित्र, जैसा चन्द्रगुप्त तथा कुमारगुप्त के पहले वर्ग पर है, सिर के पीछे 'वर्षे', तिथि का अवशेष के साथ, यूनानी अक्षर चेहरे के सामने।

पृष्ठभाग—बिंदु विभूषित वर्तुल में गरुड खड़ा, टेढ़ी लहराकार लकीर के ऊपर, नीचे यूनानी अक्षर A या O या J ; दाहिनी ओर सातबिन्दुओं का समूह, दो बजे वर्तुलाकार लेख आरम्भ 'परमभागवतमहाराजाधिराजश्रीस्कन्दगुप्तक्रमादित्य', कुछ सिक्कों पर लेख अधूरा, 'महराजधि' या 'महर' महाराजाधिराज के बदले उत्कीर्ण है। एक सिक्के पर 'म' के लिए तीन बिन्दुओं का समूह।

इस प्रकार के सिक्कों का आकार .५" से .५५" तक मिलता है और तौल में २२ से ३३ ग्रेन हैं। औसत तौल ३० ग्रेन है। इन पर निश्चित तिथि पढ़ी नहीं गई है। सैकड़े के लिए चिह्न है; किन्तु इकाई के लिए चिह्न स्पष्ट नहीं।

फलकस्थित सिक्कों का वर्णन

(१) चाँदी, '५५", २७ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कॅ०, फ० २०,३

पुरोभाग—दाहिने राजा का अर्द्धचित्र, यूनानी अक्षर सिक्के के बाहर, सिर के पीछे वर्षे १००।

---

१. ब्रि० म्यू० कॅ० जी० डी० फ० २०, ३–८।

पृष्ठभाग—सामान्य वर्णन के समान, लेख तीन बजे आरम्भ, प्रायः पूर्ण, जैसा ऊपर दिया गया है। 'क्रम' टूटा हुआ (फ० १८,६)।

(२) चाँदी, '५५", ३१'६ ग्रेन, वही, फ० २०,५

पुरोभाग—चेहरे के सामने O,H,O यूनानी अक्षर, तिथि अविद्यमान।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, 'स्कन्दगुप्तक्रमादित्य' स्पष्ट (फ० १८, ७)।

(३) चाँदी, '५", ३१'२ ग्रेन, वही, फ० २०, ८

पुरोभाग—यूनानी अक्षर तथा तिथि अविद्यमान।

पृष्ठभाग—लेख अधूरा 'परम भागवत-महरज- स्कन्दगुप्त क्रमादित्य' (फ० १८, ८)।

दूसरा वर्ग

नन्दीप्रकार

पुरोभाग—दाहिने राजा का अर्द्धचित्र, यूनानी अक्षर अथवा तिथि अविद्यमान।

पृष्ठभाग—नन्दी, दाहिने घुटने पर बैठा हुआ, वर्तुलाकार लेख अधूरा और दोषपूर्ण, संभवतः वह 'परमभागवतमहाराजाधिराजश्रीस्कुन्दगुप्तक्रमादित्यः' था।

इस सिक्के का आकार .५" से .६" तक मिलता है। तौल में २० से २६ ग्रेन तक के सिक्के मिले हैं; किन्तु औसत तौल २५ ग्रेन है। चाँदी में मिलावट है। 'महाराजधिराज' की उपाधि 'राजाधिराज' या 'महारज' या केवल 'म' में संक्षिप्त कर दी गई है।

इसका पुरोभाग कुमारगुप्त के दूसरे वर्ग के सिक्के के समान है;क्योंकि दोनों पर यूनानी अक्षरों का अभाव है। सम्भवतः इस सिक्के को उस वर्ग के बदले तैयार किया गया था। पीछे वलभी के राजाओं ने इस नन्दी चिह्न को अपनाया। इस कारण श्री ॲलन का कथन है कि ये सिक्के खम्भा की खाड़ी के समीप प्रचलित थे। किंतु तीसरे-चौथे सदी में के पद्मावती के नाग राजाओं का चिह्न भी नन्दी रहा। और छठी सदी में कलचूरी राजा कृष्णराज के चाँदी के सिक्कों पर नन्दी को स्थान दिया गया था। स्कंदगुप्त के इस प्रकार के सिक्के मालवा में प्रचलित रहे होंगे। कुमारगुप्त के दूसरे वर्ग के सिक्कों का प्रचलन भी हमने इसी भूभाग में माना है। इस तरह के सिक्कों की बनावट भद्दी है; लेकिन वेदी प्रकार की तरह अत्यंत भद्दी नहीं है।

प्रदर्शित सिक्के इस प्रकार हैं—

(४) चाँदी, .५", १५५.६ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कॅ०, फ० २०, ६

पुरोभाग—पूर्ववत्, चेहरा कटा हुआ, तिथि का अभाव।

पृष्ठभाग—दाहिने नन्दी, एक बजे लेख 'श्र स्कंदगुप्तक्रमद' (फ० १८,६)।

(५) चाँदी, ·६", २४·६ ग्रेन, वही, फ० २०, १२

पुरोभाग— राजा का अर्द्धचित्र, यूनानी अक्षर या तिथि का अभाव ।

पृष्ठभाग—लेख पाँच बजे 'परमभागवतमहारस्कंदगुप्तक्रमदत्य','भगवत' अस्पष्ट (फ० १८,१०)

तृतीय वर्ग

वेदी प्रकार

इस प्रकार के सिक्कों का वर्णन निम्नलिखित है—

पुरोभाग—दाहिने राजा का अर्द्धचित्र, यूनानी अक्षरों के अवशेष ।

पृष्ठभाग—मध्यमें वेदी, ऊपर तीन लपटें उठ रही हैं, वर्तुलाकार लेख कभी-कभी अधूरा, 'परम भागवत श्री विक्रमादित्य स्कन्दगुप्तः' ।

सर्व उपप्रकारों के सिक्के अत्यंत बेढब हैं। वे न तो गोलाकार हैं, न अण्डाकार हैं या न वर्गाकार हैं। वे तो धातु के केवल छोटे टुकड़े हैं, जिन पर चिह्न छाप दिये गये हैं । किसी भी सिक्के पर पूरा लेख मौजूद नहीं है। लेख के अक्षर उभरे हुए और सरलता से पढ़े जा सकते हैं, यद्यपि वे लापरवाही से खुदे हुए हैं। वे आकार में .५" से .५५" तक हैं तथा उन की औसत तौल २८ ग्रेन है। वर्तुलाकार मुद्रा-लेख अक्सर दोषपूर्ण और अपूर्ण हैं; यह विशेषता तीसरे उपप्रकार में विशेष रूप में दिखाई देती है।

पृष्ठभाग का चिह्न वेदी बतलाया गया है, जिसे स्मिथ ने पक्षी की भद्दी आकृति माना है। इसमें सन्देह नहीं कि किसी-किसी सिक्के पर गरुड वेदी सा प्रकट होता है; किन्तु यही चित्र बारबार एक ही ढंग से खुदा गया है, जिससे उसको वेदी कहना अधिक उचित मालूम पड़ता है। ऍलन ने ऐसा ही कहा है। सम्भवतः यह वेदी-चिह्न सोने के सिक्कों से लिया गया है । समुद्रगुप्त के ध्वजधारी तथा द्वितीय चन्द्रगुप्त के छत्रप्रकार के सिक्कों पर पुरोभाग में यह वेदी चित्रित है।

यह भी कहा गया है कि तुलसी (वृन्दावन) का चित्र है। निसंदेह यह मत मान्य हो सकता है; किंतु यह स्वीकार करना पड़ेगा कि वेदी के ऊपर तीन काँटे-सी आकृति अग्नि की तीन लपट से अधिक मिलती है । वह तुलसी पौधे की शाखाओं के सदृश नहीं है। उस वस्तु का सिरा तथा आधार काफी चौड़े हैं तथा उसका लम्बवत् भाग अधिक सकरा (तंग) है, जिससे इसे वृन्दावन कहना न्याय-संगत नहीं है। इसकी कला बहुत भद्दी है; इसलिए तुलसी (वृन्दावन) के सम्भावित चित्र का विचार त्यागा नहीं जा सकता। विशेषतया जब यह स्मरण हो आता है कि पुरोभाग का लेख सम्राट् को वैष्णवधर्मावलम्बी घोषित करता है। इस संप्रदाय में तुलसी पौधे को विशेष महत्व दिया जाता है।

वेदीप्रकार के सिक्के तीन विभिन्न उपप्रकारों में विभक्त किये जाते हैं। पहले उपप्रकार में राजा का विरुद 'विक्रमादित्य' है, दूसरे में 'क्रमादित्य' और तीसरे उपप्रकार में कोई भी उपाधि उल्लिखित नहीं है।

स्कन्दगुप्त के रजत सिक्कों में वेदीप्रकार अत्यन्त साधारण रूप से प्रचलित माना जाता है। गरुड तथा नन्दी प्रकार उससे अधिक दुष्प्राप्य हैं। उन सिक्कों का विवरण निम्नलिखित है—

पहला उपप्रकार

('विक्रमादित्य' विरुद)

(६) चाँदी, .५", २६.४ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कै० जी० डी०, फ० २०, १५

पुरोभाग—अर्द्धचित्र भद्दा, सामने कटा, हुआ यूनानी अक्षरों की अनुपस्थिति।

पृष्ठभाग—वेदी पूरी, लेख नौ बजे आरम्भ 'त श्र वक्रमदत्य स्कन्द' (फ० १८, ११)।

दूसरा उपप्रकार

('क्रमादित्य' विरुद के साथ सामान्य वर्णन)

पुरोभाग—दाहिने राजा का अर्द्धचित्र, कुछ सिक्कों पर यूनानी अक्षरों के अवशेष।

पृष्ठभाग—वेदी, वर्तुलाकार मुद्रा-लेख बाईं ओर, छ, सात या दस बजे, 'परम भागवत श्री विक्रमादित्य स्कन्दगुप्तः'।

इस तरह के सिक्के बनावट में अत्यन्त भद्दे तथा अव्यवस्थित आकार के हैं, जैसा पहले वर्ग में पाया जाता है। कई सिक्कों पर अर्द्धचित्र का रूप मुश्किल से मनुष्य का आकार माना जा सकता है। उसकी औसत तौल २६ से ३२ ग्रेन तक है तथा आकार .४" है; परन्तु कभी .५५" के भी सिक्के मिले हैं। अधिक सिक्कों पर 'क्रमादित्य' का बिरुद इतने व्यवस्थित रूप में लिखा गया है कि हम इसे 'विक्रमादित्य' का संक्षिप्त रूप नहीं मान सकते, जो स्थान की कमी के कारण बनाया गया था। यही बिरुद स्कन्दगुप्त के सोने के सिक्कों पर भी मिलता है। इस कारण यह मानना पड़ेगा कि इस राजा ने 'क्रमादित्य' तथा 'विक्रमादित्य' के दोनों बिरुदों का प्रयोग किया था।

फलक पर प्रदर्शित सिक्कों का वर्णन

(७) चाँदी, .५", ३१.४ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कै० गु०डा०, फ० २०,२२

पुरोभाग—सामने राजा का चेहरा कटा हुआ, यूनानी अक्षर अनुपस्थित।

पृष्ठभाग—मध्य में वेदी, लेख 'परम भगवत स्कंदगुप्त क्रमदित्य' (फ० १८,१३)।

(८) चाँदी, .५", २८.४ ग्रेन, वही, फ० २०, २३

पुरोभाग—अर्द्धचित्र प्रायः सम्पूर्ण, यूनानी अक्षरों का अभाव।

पृष्ठभाग—लेख आठ बजे 'परम भगवत स्कन्दगुप्त क्रमदत्य'; अन्तिम अक्षर कुछ कटे हुए; सिक्के का आकार बेढब (फ० १८,१४)।

(९) चाँदी, .५", २९.६ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कॅ० जी० डी०, फ० २०, २९।

पुरोभाग—अर्द्धचित्र के सामने और सिरे यूनानी अक्षर H, D, D, U, V,

पृष्ठभाग—पाँच बजे लेख 'परम भगवत श्र स्कन्दगुप्त क्रमदत्य', 'अंतिम' अक्षर कुछ अस्पष्ट (फ० १८, १५)।

तीसरा उपप्रकार

(किसी 'आदित्य' विरुद से रहित)

(१०) चाँदी, .४", २४.७ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कै०, गु० डा० फ० २१, ८

पुरोभाग—राजा का अधूरा चेहरा।

पृष्ठभाग—मुद्रालेख अपूर्ण, बारह बजे आरम्भ, 'पर-श्र-स्कन्दगुप्त क्रमादित्य' (फ० १८,१६)।

(११) चाँदी, .४", ३०.५ ग्रेन, वही, फ० २१,१२

पुरोभाग—सामने अर्द्धचित्र कटा हुआ, पीछे यूनानी अक्षर O, I,

पृष्ठभाग—वेदी पूरी, लेख 'परम स्कन्दगुप्त' (फ० १८, १७)।

चौथा वर्ग

मध्यदेश प्रकार

इस प्रकार के सिक्के के पृष्ठभाग पर फैलाये पंखवाले मोर की आकृति है, जिसे प्रथम कुमारगुप्त सर्वप्रथम प्रचार में लाया था। पुरोभाग पर राजा का रूप इसी वर्ग के सिक्के पर अंकित उसके पिता के सदृश है। उसकी नाक चिपटी है तथा मूँछ का अभाव है। इस प्रकार के सिक्के आकार में बड़े हैं तथा पश्चिम भारत में प्रचलित सिक्कों से सुन्दर ढंग के बने हैं। उनकी औसत तौल ३० से ३२ ग्रेन तक पाई जाती है, यद्यपि कोई ३६.७ ग्रेन बराबर भारी है और कुछ २६.५ ग्रेन के समान हलके हैं। चेहरे के सामने तिथि उत्कीर्ण है। अभी तक जो तिथियाँ पढ़ी गई हैं, वे १४४, १४५, १४६ तथा १४८ हैं और जो क्रमशः ४६३,४६४, ४६५ तथा ४६७ ईसवी सन् की होती हैं। इस प्रकार में दो उपप्रकार पाये जाते हैं। पहले 'विजितावनिरवनिपतिर्जयति दिवं स्कन्दगुप्तोयम्' यह मुद्रालेख है, दूसरे में इस लेख के अन्तिम भाग में थोड़ा फर्क किया गया है। दूसरे के अंतिम भाग में 'श्रीस्कन्दगुप्तो दिवं जयति' है।

फलक पर प्रदर्शित सिक्के

पहला उपप्रकार

(१२) चाँदी, .६", ३२.१ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कॅ० गु० डा०, फ० २१,१४

पुरोभाग—राजा का अर्द्धचित्र दाहिने, सामने अंक में तिथि १००, ४०,४ लम्बवत् अंकित।

पृष्ठभाग—फैलाये पंखवाला मोर, लेख ग्यारह बजे 'वजितावनिरवनिपत [जयत दिवं स्क] न्दगुप्तोऽयम्' (फ० १८, १६)।

(१३) चाँदी, .६", ३४.३ ग्रेन, वही, फ० २१

पुरोभाग—पूर्ववत्, तिथि १००,४०,८।

पृष्ठभाग—बारह बजे लेख 'वजतवनरवनपतिर्जयतदव स्कन्दगुप्तय' (फ० १८, २०)।

दूसरा उपप्रकार

(लेख 'दिवं जयति' से समाप्त)

(१४) चाँदी, .५५", .३१.२ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कॅ० गु० डा०, फ० २१,२०

पुरोभाग—पूरा अर्द्धचित्र, तिथि अधूरी, १००,४०।

पृष्ठभाग—लेख अस्पष्ट, नौ बजे 'दिवं जयत' (फ० १८, २१)।

(१५) चाँदी, '५५", ३३'५ ग्रेन, वही, फ० २१,२१

पुरोभाग—आँखें प्रमुख रूप से व्यक्त, नाक कुछ टेढ़ी, तिथि अधूरी, १००, ४०।

पृष्ठभाग—बारह बजे लेख 'विजतवनरवनपत स्कन्दगुप्तो दिवं जयति' ; एक से पाँच बजे के बीच में अक्षर कटे और अस्पष्ट (फ० १८, २२)।

इस सिक्के की तथा अगले सिक्के की बनावट अन्तिम सिक्के से भिन्न है।

(१६) चाँदी, '५५",३६ ग्रेन, वही, फ० २१,२२।

पुरोभाग—पूर्ववत्, तिथि सीमा से बाहर।

पृष्ठभाग—बारह बजे लेख 'व [जतव] नरवन [पत] स्कन्दगुप्तदवजयत' (फ० १८,२३)।

चैत्य प्रकार (?)

कनिंघम ने एक सिक्का प्रकाशित किया है, जिसका वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया है—

पुरोभाग—दाहिने राजा का सिर, मूँछ के साथ।

पृष्ठभाग—चैत्य चिह्न, लेख गुप्तलिपि में, अक्षर अत्यन्त समीप में उत्कीर्ण हैं 'महाराजा कुमारगुप्तपरममहादित्यमहाराजा स्कन्दगुप्त' (?)

'न्यूटन महोदय ने इसी तरह का एक सिक्का प्रकाशित किया था (ज० बॉ० ब्रॅ० रॉ० ए० सो० भा० ७ पृ० १२ चित्र १३)। इसके बारे में उनका कथन है कि 'महाराजा' की उपाधि इसे गुप्तमुद्राओं से संबंधित करती है; किंतु उसमें पिता का नाम सौराष्ट्र के क्षत्रप सिक्कों से सम्बन्ध जोड़ता है। न्यूटन ने राजा का नाम 'रुद्र' या 'नन्द' पढ़ा था। मेरे विचार से वह 'स्कन्दगुप्त' है। अक्षर इतने घने और समीप हैं कि उनका कुछ भाग ही सिक्के पर खोदा जा सकता है। उसे देवगुप्त पढ़ना चाहिए था; किंतु दूसरे अक्षर में दोनों

ओर पूँछ की तरह रेखा लटकी है,जो उसे 'न्द्र' बतलाती है। सम्भवतः वह नाम तृतीय चन्द्र-गुप्त का होगा, जो स्वभावतः कुमारगुप्त के पुत्र का नाम हो सकता है। क्योंकि हिन्दू समाज में पौत्र का नाम पितामह के नाम पर रखा जाता है।'[१]

कनिंघम के मत की आलोचना करते हुए स्मिथ कहते हैं कि जो शब्द रुद्र, नन्द, स्कन्द या चन्द्र पढ़ा जा सकता है, वह वास्तव में पढ़ा गया नहीं माना जा सकता। फ्लीट ने प्रत्येक अक्षर को संदेहात्मक माना है।

कनिंघम भारतीय मुद्राशास्त्र के एक बड़े पंडित थे, जिसके पढ़े हुए लेख को योंही हम अप्रामाणिक नहीं कह सकते। किन्तु उन्होंने जो-कुछ पढ़ा था, उसको उन्होंने स्वयं ही ठीक नहीं माना। कनिंघम तथा न्यूटन के प्रकाशित सिक्कों के लेख को ध्यानपूर्वक देखने से, मैं इसी निर्णय पर पहुँचा हूँ कि कुमारगुप्त के पुत्र किसी गुप्त राजा ने यह सिक्का तैयार नहीं किया; बल्कि ये सिक्के त्रैकूटक वंश के राजा दह्लसेन के हैं। इस राजा के सिक्कों पर लेख—'महाराजेन्द्रदत्त पुत्र परम वैष्णव श्री महाराजदह्लसेनस्य' पढ़ा गया है। न्यूटन ने इस मुद्रालेख को 'महाराजेन्द्र पुत्रस्य' पढ़ने का प्रस्ताव पहले रखा था। सिक्के का चित्र देखने से यह साफ हो जाता है कि उनके आगे 'दत्त' शब्द है। कनिंघम के सिक्के पर चैत्य की आधार पंक्ति 'न्द्रदत्त' अक्षरों के ठीक नीचे है और वह 'न्द्र' के निचले भाग को काट रही है। अगले दो अक्षर 'दत्त' हैं, उसमें संदेह नहीं है। कनिंघम या न्यूटन ने वास्तविक रूप से इस सिक्के पर यहाँ स्कन्दगुप्त नहीं पढ़ा था। इस स्थान पर लेख के अक्षर दह्लसेन के लिए खोदे गये हैं। कनिंघम के सिक्कों पर लेख अस्पष्ट है। इसलिए वह शब्द 'रुद्र' या 'नन्द' या 'स्कन्द' हो, ऐसा उन्होंने कहा है। कनिंघम का पाठ 'महादित्य' भी अनुमान से पढ़ा गया है। ये सब अक्षर सीमा के बाहर हैं। इस विवेचन से प्रकट होता है कि कुमारगुप्त के किसी पुत्र ने यह सिक्का तैयार नहीं कराया था, जिसके पृष्ठभाग पर क्षत्रप शैली का अनुकरण किया गया हो। स्कन्द नाम इनमें से किसी सिक्के पर बिलकुल नहीं पढ़ा गया। इस कारण यह माना नहीं जा सकता कि स्कन्दगुप्त ने पृष्ठभाग पर चैत्यवाला सिक्का बनवाया था। यह सिक्का त्रैकूटक राजा का है।

ये दो सिक्के फलक १८ पर प्रकाशित किये गये हैं, जिनका वर्णन निम्नलिखित है।

(१६) चाँदी, .६", तौल अज्ञात, ज० बा० ब्रा० रा० ए० सो० भा० ७ पृ० १२

पुरोभाग—क्षत्रप शैली का राजा का अर्द्धचित्र, दाहिने गर्दन पर कॉलर स्पष्ट, चेहरे पर साफ मूँछ।

पृष्ठभाग—मध्य में तीन मेहराबवाला चैत्य है, जो चित्र में मनुष्य के चेहरे के सदृश दीखता है; छः बजे लेख 'महरजन्द्रदत्तपुत्रपरमवष्णव श्र महरजदह्लसन'। इन अक्षरों में 'महरजन्द्रदत्त पुत्र' साफ है। 'परम' अंशतः पढ़ा जाता है। 'वैष्णव श्र' कटा

---

१. क० आ० स० रि० भा० ९ पृ० २४ फ० ५.८।
२. ज० ब० ब्र० रा० ए० सो० भा० ७ पृ० १२।

हुआ है। एक लकीर से 'द' दिखया गया है, जो अस्पष्ट है, 'त' भी एक लकीर से व्यक्त किया गया है (फ० १८, २४)।

(१७) चाँदी, .६", तौल अज्ञात, क० आ० स० रि० भा ६, फ० ५, ८

पुरोभाग – दाहिने क्षत्रप शैली के राजा के चित्र, यूनानी अक्षर विद्यमान।

पृष्ठभाग—बारह बजे लेख 'महरजन्द्रदत्त पुत्र परम वष्णव श्र महरजदहूसेन'। इन अक्षरों में 'न्द्र' नीचे कटा है, और 'द' लकीर के समान है। 'पर' बड़े अक्षरों में पाँच बजे दीखते हैं, 'वैष्णव' अधूरा, अन्य अक्षर काफी साफ है (फ० १८, २५)।

ग्यारहवाँ अध्याय

स्कन्दगुप्त के उत्तराधिकारी

(अ) पुरुगुप्त तथा घटोत्कचगुप्त

स्कन्दगुप्त के भाई का नाम पुरुगुप्त था; किन्तु यह निश्चित नहीं है कि उसने किस समय शासन किया।

पुरुगुप्त का नाम उसके वंशज द्वितीय कुमारगुप्त [1] तथा विष्णुगुप्त [2] की मुहर से मालूम पड़ता है। इन मुहरों में वंशवृक्ष का वर्णन करते समय प्रथम कुमारगुप्त का नाम लिया गया है। उसके बाद तुरंत पुरुगुप्त का नाम आता है, जो महाराजाधिराज कहा गया है और उसके भ्राता स्कन्द्रगुप्त का नाम छोड़ दिया गया है। सबल प्रमाणों के अभाव में यह प्रतिपादन करना सम्भव है कि (१) स्कन्दगुप्त तथा पुरुगुप्त एक ही व्यक्ति थे। (२) पुरुगुप्त स्कन्दगुप्त का सौतेला भाई था, जिसने ४५५ में गद्दी के लिए विद्रोह किया था; परन्तु असफल रहा। (३) अथवा वह स्कन्द के बाद गद्दी पर बैठा; क्योंकि स्कन्दगुप्त के कोई पुत्र न था। यह सम्भव नहीं है कि इन तमाम विभिन्न मतों का यहाँ विचार किया जाय। और यह आवश्यक भी नहीं है। यह सम्भव नहीं कि स्कन्द तथा पुरु दोनों एक ही व्यक्ति हों। इस तरह के दो व्यक्तिगत नाम किसी गुप्त राजा के सिक्के पर नहीं मिलते। द्वितीय चन्द्रगुप्त के दो नाम थे, चन्द्रगुप्त तथा देवगुप्त; किंतु मुद्राओं पर एक ही चन्द्रगुप्त आता है। दोनों मुहरों में पुरुगुप्त को 'महाराजाधिराज' की उपाधि दी गई है। इसलिए यह अनुमान किया जा सकता है कि स्कन्द्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात् उसने थोड़े समय—एक या दो वर्षों तक—राज्य किया था। उसने स्कन्दगुप्त के राज्यारोहण के समय राज्याधिकार के लिए कलह नहीं किया होगा। इस समय विचारणीय विषय यह है कि क्या उसने कोई सिक्का निकाला था।

कुछ साल से पहले तक सब विद्वान् मानते थे कि पुरुगुप्त ने धनुर्धारी प्रकार का सोने का सिक्का निकाला, जिस पर विक्रम का विरुद लिखा था। इस तरह के एक उपप्रकार के सिक्कों में पुरोभाग पर राजा का नाम अंकित नहीं हैं; किन्तु पृष्ठभाग में लेख 'श्री विक्रम' है। दूसरे उपप्रकार के अकेले सिक्के पर पृष्ठभाग में 'श्री विक्रम' लेख के अतिरिक्त पुरोभाग पर राजा के बायें हाथ के नीचे नाम लिखा है; जिसे श्री ॲलन ने 'पुर' पढ़ा है। [3] इसलिए यह सुझाव विद्वानों ने

---

१. ज० रा० ए० सो० बं० १८८९ पृ० ८४-१०५।

२. ज० न्यू० सो० इ० भा ३ पृ० १०२।

३. ब्रि० म्यू० कै० जी० डी० पृ० १३४।

मान लिया था कि सभी भारी तौल के, अर्थात् १४४ ग्रेन के, सिक्के जिनपर 'श्रीविक्रम' विरुद उत्कीर्ण हैं, पुरुगुप्त के मानने चाहिए।

श्री एस० के० सरस्वती ने सबसे पहले श्री ॲलन द्वारा पढ़े गये 'पुर' शब्द पर आपत्ति उठाई थी। उनका यह दावा था कि बायें हाथ के नीचे लम्बवत् लेख 'बुध' है, इस कारण ये सिक्के बुधगुप्त के मानने चाहिए।[1]

बहुत दिनों तक यह प्रश्न हल न हो सका था। क्योंकि जो एक ही मुद्रा १९४८ ई०तक इस प्रकार की प्रकाशित हुई थी, उसपर पहला अक्षर 'पु' या 'बु' पढ़ा जा सकता था।[2] दूसरा अक्षर अस्पष्ट 'र' या गलत आकार का 'ध' के समान दीखता था। ठप्पा लगाते समय मुद्रा के हिलने से 'र' 'ध' के समान हो जाता है। १९४८ ई०में इस प्रकार के दो नये सिक्कों का पता लगा, जिनमें बायें हाथ के नीचे का लेख स्पष्ट रूपसे 'बुध' प्रकट होता है। पृष्ठभाग का लेख 'श्री विक्रम' है, इसलिए यह निश्चित है कि जिस विक्रम-बिरुदधारी राजा ने इन सिक्कों को प्रचलित किया, वह 'बुधगुप्त' था, पुरगुप्त नहीं। यह भी अधिक सम्भव है कि धनुर्धारी प्रकार के भारी सिक्के, जिनका पृष्ठलेख 'श्री विक्रम' है, उसी राजा के द्वारा बनायें होंगे। इस कारण यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि पुरुगुप्त स्कन्दगुप्त से पृथक् राजा था और उसने महाराजाधिराज के रूप में स्कन्द से पहले या बाद में शासन किया, तोभी उसके नाम के सिक्के अभी तक प्रकाश में नहीं आये हैं। यह सम्भव है कि 'प्रकाशादित्य' विरुदवाले सिक्के उसी पुरगुप्त के हों। इसका विवरण आगे दिया जायगा।

घटोत्कच

गु० सँ० ११६ (४३५ ई०) का तुमैन लेख से घटोत्कच गुप्त का पता लगता[3] है, जो प्रथम कुमारगुप्त का पुत्र या भाई था। वह मालवा में गुप्तसम्राट् का सामंत प्रांताधिप था। सेण्टपीटर्सबर्ग संग्रहालय में जो धनुर्धारी प्रकार का एक सिक्का सुरक्षित है, और जिस पर राजा के बायें हाथ के नीचे 'घटो' लिखा है, उसे इस घटोत्कचगुप्त से संबंधित किया जा सकता है। इस अकेले सिक्के का विवरण निम्नलिखित है।

(१) सोना, .८", तौल अज्ञात, सेंटपीटर्सबर्ग (लेनिनग्राड) संग्रहालय, ब्रि० म्यू० कॅ०, फ० २४, ३

पुरोभाग—राजा प्रभामंडलयुक्त, बायें खड़ा, बायें हाथ में धनुष, प्रत्यंचा भीतर, दाहिने में बाण, उसके पीछे गरुडध्वज, बायें हाथ के नीचे लेख 'घटो', वर्तुलाकार मुद्रालेख का कुछ अंश दृश्यमान, किंतु अत्यंत अस्पष्ट।

---

१. इ० आ० भा० १ पृ० ६९२।

२. यदि अक्षर के शिरोमात्रा को युक्त मान लिया जाय तो इसे 'पु' पढ़ सकते हैं। किन्तु ऊपर की मात्रा को अक्षर का एक भाग मान लें, तो वह 'बु' होगा।

३. इ० आ० भा० २६, पृ० ११५।

पृष्ठभाग—लक्ष्मी, प्रभामंडलयुक्त, कमलासन पर बैठी हुई, बायें हाथ में लम्बी नालयुक्त कमल, दाहिने में पाश, चिह्न बायें, लेख दाहिने 'क्रमादित्य' (फ० १४, १५)।

इस राजा का केवल एक ही सिक्का है और वह किसने निकाला था, यह निश्चित करना कठिन है। डा० ब्लॉख का मत सर्वथा अमान्य है कि यह सिक्का प्रथम चन्द्रगुप्त के पिता ने निकाला था। गुप्त सिक्कों में समुद्रगुप्त के समय तक धनुर्धारी प्रकार का समावेश भी नहीं हुआ था। यह सम्भव नहीं है कि घटोत्कच ने सिक्के का प्रचलन आरम्भ किया था, चूँकि वह एक छोटा शासक रहा। इस सिक्के का संबंध तुमैन लेख के घटोत्कचगुप्त से हो सकता है, अथवा वैशाली मुहर के घटोत्कचगुप्त से या तीसरे किसी घटोत्कचगुप्त से, जिसने पाँचवीं सदी के अंत में राज्य किया होगा।

श्री ॲलन ने अंतिम मत को स्वीकार किया है[1]। चूँकि घटोत्कच के सिक्के के पृष्ठभाग पर देवी के पैर मुड़ने की शैली द्वितीय कुमारगुप्त की मुद्रा के सदृश है (फ० १४, १६ तथा फ० १५, ४-५)। नये अनुसंधान से पता चलता है कि द्वितीय कुमारगुप्त ईसवी सन् ५३० से ५४० तक राज्य नहीं करता रहा, जैसा श्री ॲलन ने माना था[2]। बल्कि पचास वर्ष पहले ई० सन् ४७२ से ४७७ तक उसने शासन किया। देवी के पैर मोड़ने की शैली इस सिक्के को ४७० ईसवी सन् के समीप रखने में बाधक नहीं हो सकती। यह सम्भव है कि घटोत्कचगुप्त मालवा का राज्यपाल था और वह दस-पंद्रह वर्षों तक पिता के बाद शासन करता रहा। स्कन्दगुप्त की मृत्यु के पश्चात् संकट के समय उसके भाई घटोत्कचगुप्त ने स्वतंत्रता घोषित कर दी हो तथा सिक्के का संचालन किया हो। सन् ४७० ई० के समय काफी वृद्ध होने के कारण अधिक समय तक वह शासन न कर सका। इसलिए उसके सिक्के बहुत थोड़े उपलब्ध हैं। ४७० ईसवी के समीप तैयार होने के कारण स्वभावतः देवी के पैर मुड़ने की शैली द्वितीय कुमारगुप्त के सिक्कों से मिलती है। उसने ४७२ ई० के करीब राज्य करना शुरू किया था।

अतएव यह सेण्टपीटर्सवर्ग सिक्के के घटोत्कचगुप्त तथा तुमैन के लेख के घटोत्कच का एकीकरण प्रस्तावित किया जा सकता है। इस मत में भी कठिनाई है; क्योंकि हमें यह मानना पड़ेगा कि दोनों भ्राता एक ही विरुद 'क्रमदित्य' रखते थे। ऐसी बात पहले अज्ञात थी। इस सिलसिले में यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि तुमैन के लेख के द्वारा शासक सम्राट् प्रथम कुमारगुप्त तथा मालवा के राज्यपाल घटोत्कचगुप्त में कोई संबंध निश्चित नहीं होता। चूँकि लेख त्रुटिपूर्ण है। घटोत्कचगुप्त पुत्र की अपेक्षा कुमारगुप्त का भाई भी हो सकता है। यदि ऐसा हो तो वह वैशाली मुहर में उल्लिखित चंद्रगुप्त का पुत्र घटोत्कचगुप्त होगा। यदि इस मत को मान लिया जाय तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि सम्भव नहीं जान पड़ता कि कुमारगुप्त

---

१. ब्रि० म्यू० कै० गु० डा० पृ० १०४।

२. उस समनता में देवी पैरों को कुछ उठाये हुए हैं। किन्तु यह कहा जा सकता है कि द्वितीय कुमारगुप्त के सिक्कों में यह एक-सा लक्षण नहीं है (फ० १५, ६)।

का भाई उसके बाद पन्द्रह वर्षों तक जीवित रहा और उसने यादवी (आपसी झगड़े) के समय (ई० सन् ४६८ से ४७२ तक) में सिक्का निकाला। यह सुझाव रखा जा सकता है कि सन् ४५५ ई० में उसने अपने भतीजे स्कन्द से गद्दी के लिए कलह किया हो तथा सिक्के निकाले हों। थोड़े समय में स्कन्दगुप्त ने अपना प्रभाव स्थिर कर लिया। इस कारण उसके विरोधी चाचा के सिक्के अधिक नहीं निकल सके।

आजतक जो प्रमाण मिले हैं, वे इतने थोड़े और अनिश्चयात्मक हैं कि यह स्थिर करना सम्भव नहीं कि इस सिक्के का निर्माता कौन घटोत्कच था। इसकी तौल भी अज्ञात है। यदि तौल ज्ञात होती तो उसे निर्माता का काल निश्चित करने में कुछ सहायता मिल सकती। इस रहस्य का समुचित उत्तर पाने के लिए तबतक हमें नये शिलालेख या मुद्राओं की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

नये अनुसंधान द्वारा निश्चयात्मक रूप से यह ज्ञात है कि पुरुगुप्त के दो पुत्र थे— नरसिंहगुप्त तथा बुधगुप्त। नरसिंहगुप्त ज्येष्ठ होने के कारण पिता का उत्तराधिकारी हुआ। उसका शासनकाल थोड़ा था; क्योंकि उसका पुत्र द्वितीय कुमारगुप्त ईसवी सन् ४७३ में गद्दी पर बैठा। कुमार का भी राज्य थोड़े समय के लिए रहा; क्योंकि उसका चाचा बुधगुप्त ४७६ ई०से ४९५ ई० तक शासन करता रहा। कुमारगुप्त का पुत्र विष्णुगुप्त भी शासक हुआ। यह कहना कठिन है कि क्या वह बुधगुप्त की मृत्यु के पश्चात् ही महाराजाधिराज बना अथवा साम्राज्य के किसी छोटे प्रांत पर बुधगुप्त के समकालीन ही वह राज्य करता रहा। इन सब प्रश्नों की चर्चा भूमिका में की गई है। अब पुरुगुप्त के उत्तराधिकारियों के सिक्कों का वर्णन प्रस्तुत किया जायगा।

(ब) नरसिंह गुप्त

नरसिंह गुप्त बालादित्य ईसवी सन् ४६८ से ४७२ ई० तक शासन करता रहा। इसे उस समनामधारी व्यक्ति से पृथक् करना होगा, जिसे युआनचांग ने ५३२ ईसवी के समीप मिहिरकुल को परास्त करनेवाला राजा बताया है। यद्यपि वह थोड़े समय तक संकट-काल में राज्य करता रहा, तथापि उसके सिक्के कम नहीं हैं। अभी तक उसके ५० सिक्कों का पता लगा है[१]। अधिकतर सिक्के कालीघाट निधि में से पाये गये हैं। नरसिंहगुप्त के शासनकाल में संकट का अनुमान मिश्रितधातु के सिक्कों से किया जाता है, जिसे राजा ने तैयार किया था। आंतरिक यादवी (वैमनस्य) से खजाना खाली हो गया था; जिस कारण मिश्रित धातु का प्रयोग करना अनिवार्य हो उठा। किंतु इसके कुछ सिक्के शुद्ध सोने के भी मिले हैं। सभी सिक्के १४४ ग्रेन सुवर्ण तौल के मिलते हैं और कुछ तो १४६ ग्रेन तौल के हैं। इनका आकार .८" से ९५" तक है।

---

१. ज० रा० ए० सो० १८८९, पृ० ११७-२।

नरसिंहगुप्त ने केवल धनुर्धारी प्रकार के सिक्के निकाले थे, जो दो उपप्रकारों में विभक्त किये जाते हैं। पहले उपप्रकार का सिक्का थोड़ा-अधिक शुद्ध सोने का है और उसके पुरोभाग पर वर्तुलाकार लेख मिलता है। दूसरे उपप्रकार में मिश्रितधातु के सिक्के हैं। उनकी बनावट भद्दी है तथा वर्तुलाकार लेख अनुत्कीर्ण है।

यह सम्भव है कि दूसरे उपप्रकार के सिक्के को मिहिरकुल का विरोधी बालादित्य ने तैयार किया था और पहले उपप्रकार के सिक्कों को पुरुगुप्त के पुत्र तथा उत्तराधिकारी नरसिंह गुप्त ने। उसका शासनकाल चार वर्षों का रहा, अतएव सम्भव नहीं कि उसने अधिक सिक्के तैयार किये हों। कालीघाटनिधि के तमाम सिक्के मिहिरकुल के विरोधी द्वितीय नरसिंह गुप्त के माने जा सकते हैं। यह महत्त्वपूर्ण बात है कि इस निधि में पहले उपप्रकार का एक भी सिक्का नहीं पाया गया है। वर्त्तमान स्थिति में यह कहना कठिन है कि उपर्युक्त मत अधिक उचित है अथवा यही ठीक होगा कि हम उन सब सिक्कों को पुरगुप्त के पुत्र नरसिंह गुप्त के मानें, जिनमें बाँह के नीचे 'नर' लिखा है।

नरसिंह गुप्त के समय से राजा के पैरों के बीच एक अक्षर लिखने की रीति चलाई गई थी। ऐसे अक्षर पिछले कुषाण सिक्कों पर मिलते हैं, जिन्हें पहले गुप्त सम्राटों ने त्याग दिया था। नरसिंह गुप्त ने इसका समावेश क्यों किया अथवा इसका तात्पर्य क्या था, यह सब अज्ञात है। इस राजा के सिक्के पर 'मु' या 'भ्र' अक्षर पाया जाता है।

अब नरसिंह गुप्त के सिक्कों का वर्णन किया जायगा, जो फलक में प्रदर्शित किये गये हैं।

धनुर्धारी प्रकार

पहला उपप्रकार[1]

[पुरोभाग पर वर्तुलाकार लेख]

(१) सोना, .६", १४४;५ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कॅ०, फ० २२, ७

पुरोभाग—राजा प्रभामंडलयुक्त, बायें खड़ा, बायें हाथ में धनुष तथा दाहिने में बाण, धोती, कमरबंध तथा आभूषण पहने, बाईं ओर गरुडध्वज, बायें हाथ के नीचे लेख 'नर'[2], वर्तुलाकार मुद्रालेख अस्पष्ट, अधूरा[3]; पैरों के बीच 'भ्र' या 'गु'।

पृष्ठभाग—कमलासन पर बैठी लक्ष्मी, सामने दाहिने हाथ में पाश तथा बायें में कमल, बिन्दुविभूषित वर्तुल, बायें चिह्न, लेख 'बालादित्य' कुछ अस्पष्ट। (फ० १५,१)।

---

१. ब्रि० म्यू० कॅ० फ० २२, ७-९।

२. अभी तक प्रत्यंचा के बाहर कोई शब्द 'सिंह' या 'गुप्त' लिखा हुआ नहीं मिला है।

३. श्री ॲलन का कथन है कि इस सिक्के के बाईं ओर 'नरसिंहगुप्त' पढ़ा जाता है। जो सिक्का इस सूची से प्रदर्शित किया गया है, उसपर गरुड़ के नीचे 'स' पढ़ा जाता है। पीछे के दो अक्षर 'नर' नहीं, 'नप' सदृश हैं।

दूसरा उपप्रकार

[पुरोभाग पर वर्तुलाकार मुद्रालेख अविद्यमान]

(२) सोना, .८", १४४.८ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कॅ०, फ० २२, ११

पुरोभाग—पूर्ववत् भद्दी बनावट तथा वर्तुलाकार लेख का अभाव।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, 'बालादित्य' अधिक स्पष्ट (फँ० १५, २)।

(इ) द्वितीय कुमारगुप्त के सिक्के

नरसिंहगुप्त के बाद उसका पुत्र द्वितीय कुमारगुप्त गद्दी पर बैठा। सारनाथ के लेख से पता चलता है कि वह ४७३ ई० सन् में राज्य[1] करता रहा; किन्तु उसके बाद उसका चाचा बुधगुप्त ४७६ ई० में उत्तराधिकारी हुआ[2]। यदि हम यह मानें कि वह बुधगुप्त के साथ गुप्त साम्राज्य के किसी भाग में राज्य नहीं करता था तो उसका शासनकाल स्वल्प होगा। किंतु उसके सिक्के अधिक संख्या में मिलते हैं और उनमें पुरोभाग पर कुछ विभिन्नता पाई जाती है। किसी में राजा के पैरों के बीच में 'ज' लिखा है तो किसी में 'जो' या 'गो'। मुद्राओं के आधार पर यह प्रकट होता है कि कुमारगुप्त चार वर्षों से अधिक काल तक शासन करता रहा। अतएव यह सबसे अच्छी कल्पना होगी कि वह बुधगुप्त के सामंत के रूप में गुप्तसाम्राज्य के छोटे भाग पर ४७६ ई० के बाद भी शासन करता रहा। तत्पश्चात् उनका पुत्र विष्णुगुप्त उत्तराधिकारी हुआ। पिता-पुत्र दोनों बंगाल में शासन करते थे; क्योंकि उसके सिक्कों में प्राय: सभी कालीघाटनिधि से मिले हैं। पहले वर्ग का शुद्ध सोने का सिक्का द्वितीय कुमारगुप्त का है, जब वह गुप्तसाम्राज्य का स्वामी था। दूसरे वर्ग के मिश्रितधातु के सिक्के पिछले समय में प्रचलित किये गये थे, जब वह मामूली सामंत शासक हो गया।

कुछ प्रमाणों से यह भी संभवनीय प्रतीत होता है कि तीसरा कुमारगुप्त छठी सदी के मध्य में मगध का राजा था। गु० स० २२४ (५४३ ई०) के दामोदरपुर ताम्रपत्र में (जिसमें राजा का नाम अधूरे ढंग से मिलता है) कुमारगुप्त का नाम पढ़ा जाता है, जिसे अन्य विद्वानों ने बुधगुप्त या विष्णुगुप्त पढ़ा है। यदि ईसवी सन् ५४० से ५५० के बीच तृतीय कुमारगुप्त का राज्यकाल मान लिया जाय तो यह मानना असम्भव न होगा कि उसने दूसरे वर्ग के सिक्के तैयार कराये। अधिक प्रमाणों से ही इस प्रश्न का हल हो जायगा।

मगध के पिछले गुप्तवंशी नरेशों में कुमारगुप्त का नाम आता है, जो छठी सदी के मध्य में शासन करता था। जिन मुद्राओं की चर्चा हम कर रहे हैं, उनमें से कोई भी उसका नहीं है। इस वंश के अन्य किसी राजा के सोने के सिक्के इन मुद्राओं के सदृश ज्ञात नहीं हुए हैं।

---

१. आर० स० इ० ए० १९०४-५, पृ० १२४५।

२. इ० आ० भा० १५, पृ० १४२ या १७, पृ० १९५३; सरकार-सेलक्ट इन्सक्रुपशन पृ० ३३७।

द्वितीय कुमारगुप्त के सिक्के सोने के हैं तथा धनुर्धारी प्रकार के मिले हैं। धनुष पकड़ने के ढंग के कारण उसमें विभिन्नता नहीं है। राजा के पैरों के बीच अक्षर की उपस्थिति या अभाव से भिन्नता आती है। पहले वर्ग के सिक्के विशुद्ध सोने के हैं तथा पैरों के बीच-अक्षर का अभाव है। वर्तुलाकार लेख के कुछ अस्पष्ट अक्षर मुद्रा पर अंतर्भूत हो पाये हैं। पृष्ठभाग पर केवल 'क्रमादित्य' लिखा है, न कि 'श्री क्रमादित्य'। दूसरा वर्ग मिश्रितधातु का है तथा पैरों के मध्य अक्षर वर्तमान हैं। वर्तुलाकार मुद्रालेख के कुछ अवशेष मिलते हैं, जिनसे यह प्रतीत होता है कि वह 'महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्तः क्रमादित्य' था। पृष्ठभाग पर 'श्री क्रमादित्य' (केवल क्रमादित्य नहीं) लिखा है। पहले उपप्रकार में अक्षर 'ग', दूसरे में 'ज' या 'जो' मौजूद है। इन अक्षरों का कुछ आशय होगा; किन्तु उसका अभी तक पता नहीं लग सका। सम्भवतः ये स्थानीय राज्यपाल के नाम के आदि अक्षर हों।[1] द्वितीय कुमारगुप्त के धनुर्धारी प्रकार के सिक्के प्रथम कुमारगुप्त के दूसरे वर्ग से पृथक् किया जा सकता है। दोनों पर बायें हाथ के नीचे 'कु' लिखा है; किन्तु तौल में विशिष्ट अन्तर है। प्रथम कुमारगुप्त के सिक्के तौल में १२४ ग्रेन हैं; जहाँ कि द्वितीय कुमारगुप्त का बीस ग्रेन अधिक भारी है। पहले पर पृष्ठभाग का विरुद 'महेन्द्र' है; किन्तु दूसरे पर 'क्रमादित्य' लिखा है। स्मिथ का मत है कि विशुद्ध सोने का सिक्का प्रथम कुमारगुप्त ने तैयार करवाया था।[2] परन्तु 'क्रमादित्य' की उपाधि उस सिद्धान्त का विरोधी है। प्रथम कुमारगुप्त का विरुद सदा 'महेन्द्र' या महेन्द्रादित्य' रहा, 'क्रमादित्य' कभी नहीं।

इस ग्रंथ में प्रदर्शित राजा के सिक्कों का वर्णन निम्नलिखित है।

पहला वर्ग[3]

(विशुद्ध सोना, पैरों के बीच अक्षर का अभाव)

(१) सोना, .८", १४३ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कॅ०, फ० २२, १४

पुरोभाग---राजा प्रभामंडलयुक्त, सिर अनावृत, बाल कुरल (घुँघराले); बायें खड़ा, बायें हाथ में धनुष और दाहिने में बाण, बाँह के पीछे गरुड़ध्वज, बायें हाथ के नीचे 'कु', ऊपर अर्द्धचन्द्र, किनारे पर लेख सीमा से बाहर, अंतिम 'प्त' अक्षर के अवशेष दिखलाई पड़ते हैं, पैरों के बीच अक्षर का अभाव।

पृष्ठभाग —कमलासन पर बैठी लक्ष्मी, सामने देखती हुई, बायें हाथ में कमल, दाहिने में पाश, बाईं ओर चिह्न, लेख 'क्रमादित्य' (फ० १५, ३)।

---

१. यह सुझाव रखा जा सकता है कि 'गो' से गोपराज का आद्यक्षर है जो ५१० ई० हूण युद्ध में मारा गया था। उसका स्वामी भानुगुप्त था, इसलिए यह विशेष संभवनीय नहीं है कि गोपराज द्वितीय कुमारगुप्त का समकालीन व्यक्ति हो, चूँकि द्वितीय कुमारगुप्त ४८५-४९० ई० तक राज्य करता रहा।

२. ज० रा० ए० सो० १८८९, पृ० ९७।

३. ब्रि० म्यू० क० फ० २२, १३ १४।

दूसरा वर्ग

पहला उपप्रकार

(पैरों के बीच 'गो' अक्षर)

(२) सोना, .७५", १४८.२ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कॅ०, फ० २३, २

पुरोभाग—पहले वर्ग के समान, पैरों के बीच 'गो' अक्षर, लेख, 'महाराजधिराज श्री कु' के कुछ अस्पष्ट अवशेष।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, लेख 'श्री विक्रमादित्यः' क्रमादित्य नहीं, बाईं ओर चिह्न (फ० १५, ४)।

(३) सोना, .७५", १४८.१ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कॅ०, फ० २२, १५

पुरोभाग—पूर्ववत्, वर्तुलाकार मुद्रालेख अविद्यमान, धनुष के सिरे पर चक्रनुमा वस्तु।

पृष्ठभाग—पूर्ववत् (फ० १५, ५)।

दूसरा उपप्रकार

(पैरों के बीच 'ज' या 'जो' अक्षर)

(४) सोना, .८", १४८.७ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कॅ०, फ० २२, ५

पुरोभाग—पहले उपप्रकार की तरह, पैरों के बीच 'जो', वर्तुलाकार लेख का अभाव।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, बाईं ओर चिह्न, लेख 'श्री क्रमादित्य' (फ० १५, ६)।

(५) सोना, .८", १४७.५ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कॅ०, फ० २३, ४

पुरोभाग—पूर्ववत्, वर्तुलाकार लेख 'राजाधिराज, पैरों के बीच 'जो'।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, चिह्न अस्पष्ट, लेख 'श्री क्रमदत्य' (फ० १५, ७)।

(ई) बुधगुप्त की स्वर्णमुद्राएँ

इसमें सन्देह नहीं कि बुधगुप्त (ई० स० ४७६-४९५) के शासनकाल में गुप्त साम्राज्य की प्रतिष्ठा पुनः वापस आ गई। यद्यपि इस का लम्बा शासनकाल था, तथापि इसके सोने तथा चाँदी के सिक्के कम मिलते हैं। पहले राजा के चाँदी के ही सिक्के प्राप्त थे। इस कारण यह समझा जाता था कि इसने सोने के सिक्के नहीं निकाले। लेखक ने एक समय यह सुझाव रखा था कि प्रकाशादित्य के सिक्के बुधगुप्त के हैं। क्योंकि यह सम्भव नहीं कि एक सम्राट्, जिसने चाँदी का सिक्का तैयार कराया था, सोने के सिक्के प्रचलित करने से विमुख रहेगा। सरस्वती महोदय का कथन था कि ब्रिटिश म्यूजियम के सूचीपत्र फलक २१, २३ पर प्रदर्शित सोने का सिक्का बुधगुप्त का ही है[१], क्योंकि बाँह के नीचे का लेख 'बुध' है, 'पुर' नहीं। इस सिक्के

१. इंडियन कलचर भा० १, पृ० ६९२।

का लेख अस्पष्ट है, इसलिए विवादग्रस्त शब्द के पाठ के सम्बन्ध में कोई निश्चित विचार नहीं रखा जा सकता। यदि ऊपर की समतलरेखा उस अक्षर का भाग समझी जायगी तो वह 'बु' पढ़ी जायगी अथवा यदि उसे शिरोमात्रा मानेंगे तो वह 'पु' मालूम पड़ता है। यदि हम मानेंगे कि ठप्पा मारते समय साँचा हिल गया हो तो नीचे का अक्षर 'र' लिया जायगा, नहीं तो वह गन्दे आकार का 'ध' है।

सन् १९४८ ई० में दो नये सिक्कों की प्राप्ति से यह स्पष्ट हो गया कि यह लेख 'बुध' है, 'पुर' नहीं। ये दोनों सिक्के काशीविश्वविद्यालय के संग्रह में सुरक्षित हैं। पहले में साफ 'बुध' लिखा हुआ है। अतएव सरस्वती का कथन यथार्थ हो जाता है कि बायें हाथ के नीचे राजा का नाम 'बुध' पढ़ना चाहिए, 'पुर नहीं।

बुधगुप्त के सभी सिक्कों पर 'श्री विक्रम' का विरुद पाया जाता है। धनुर्धारी प्रकार के कुछ ऐसे सिक्के हैं, जिनके पृष्ठभाग पर यही विरुद खुदा है; किन्तु पुरोभाग में निर्माणकर्त्ता राजा का नाम नहीं मिलता। वे भी बुधगुप्त के सिक्के माने जा सकते हैं। आकार, प्रकार तथा तौल में वे एक-से हैं। अतः यह सम्भव है कि बुधगुप्त ने इन सिक्कों को भी तैयार किया था। प्रथम कुमारगुप्त के धनुर्धारी सिक्कों में यह अवस्था पाई जाती है, जिसमें राजा का नाम 'कुमार' अथवा अक्षर 'कु' भी पुरोभाग पर नहीं मिलता, केवल उस का विरुद पृष्ठभाग में पाया जाता है। व्याघ्रनिहन्ता प्रकार के एक उपप्रकार में 'कु' विद्यमान है और दूसरे में अविद्यमान; किंतु यह भी अशक्य नहीं है कि ये बुधगुप्त नामरहित और पृष्ठभाग पर 'विक्रम' विरुदसहित सिक्के किसी दूसरे अज्ञात गुप्त नरेश के हैं, जो पाँचवी सदी में राज्य करता रहा हो। इन्हीं सिक्कों का सम्बन्ध एक समय द्वितीय चन्द्रगुप्त से स्थिर किया गया था; क्योंकि पृष्ठभाग पर उल्लिखित 'विक्रम' की उपाधि उस राजा की विरुद थी। लेकिन इन सिक्कों के १४२ ग्रेन का भारी तौल उस मत के विरुद्ध जाता है। इन सभी कारणों से यह कल्पना करना सर्वोत्तम होगा कि भारी तौल के धनुर्धारी प्रकार के सिक्के, जिनके पृष्ठभाग पर 'विक्रम' का विरुद है, बुधगुप्त के चलाये हुए हैं। उसकी यह उपाधि निश्चित रूप से ज्ञात है।

बुधगुप्त ने केवल धनुर्धारी प्रकार के ही सिक्के निकाले, जिनमें विभिन्नता का अभाव है। राजा बायें देख रहा है। धनुष का सिरा पकड़े हुए है। पहले वर्ग में राजा के बायें हाथ के नीचे 'बुध' लिखा है; किन्तु दूसरे वर्ग में यह अनुपस्थित है। पुरोभाग में कोई लेख है; किन्तु उसका पढ़ना सम्भव न हो सका है। यह अधूरा तथा अस्पष्ट है। प्रारम्भिक अक्षर 'परह' प्रकट होता है; जो 'परहितकारी' लेख का आरम्भ हो। फलक पर पदर्शित सिक्कों का वर्णन निम्नलिखित है।

पहला वर्ग

(पुरोभाग में 'बुध' नाम सहित)

(१) सोना, .८", १४४.५ ग्रेन, काशीविश्वविद्यालय-संग्रह

पुरोभाग—राजा प्रभामण्डलयुक्त, बायें खड़ा, धोती तथा आभूषण पहने, बायें हाथ में धनुष, प्रत्यंचा बाहर, दाहिने हाथ में बाण, दाहिने हाथ के पीछे गरुड़ध्वज, बायें हाथ के नीचे 'बुध' लम्बवत्, कुछ अस्पष्ट; वर्तुलाकार लेख एक बजे आरम्भ, 'पर......'

पृष्ठभाग—लक्ष्मी प्रभामण्डलयुक्त, कमल पर बैठी हुई, बायें हाथ में कमल तथा दाहिने में पाश, बायें चिह्न, लेख दाहिने अस्पष्ट 'श्री विक्रम' (फ०१५, ८)।

(२) सोना, .८", तौल अज्ञात, भारतकलाभवन, बनारस

पुरोभाग—पूर्ववत्, बाँह के नीचे 'बुध' स्पष्ट, वर्तुलाकार लेख अविद्यमान।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, कमलासन सीमा से बाहर, लेख अस्पष्ट (फ० १५, ९)।

(३) सोना, .९५", तौल अज्ञात, ब्रि० म्यू० कॅ०, फ० २१, २३

पुरोभाग—राजा प्रभामंडलयुक्त, बायें खड़ा, बायें हाथ से धनुष का सिरा पकड़ा हुआ। दाहिने में बाण, राजा के सामने गरुडध्वज, बायें हाथ के नीचे 'बुध', अंतिम अक्षर अस्पष्ट, टप्पा मारते समय साँचा हिल गया होगा।

पृष्ठभाग—लक्ष्मी कमल पर बैठी, सामने देखती हुई, दाहिने हाथ में पाश, बायें में कमल, चिह्न अधूरा, लेख 'श्री विक्रमः' अस्पष्ट (फ० १५, १०)।

दूसरा वर्ग

(पुरोभाग में नाम अनुत्कीर्ण)

(४) सोना, .९", १४२.७ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कॅ०, फ० २१, २४

पुरोभाग—पूर्ववत्, वर्तुलाकार लेख 'पर...'; बायें हाथ के नीचे कोई लेख नहीं।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, लेख स्पष्ट 'श्री विक्रमः' (फ० १५, ११)।

(उ) बुधगुप्त की रजतमुद्राएँ

बुधगुप्त से पूर्व पुरगुप्त, नरसिंहगुप्त तथा द्वितीय कुमारगुप्त के समय जो चाँदी के सिक्के रुके हुए थे, वे इसके समय में निकलने लगे। किंतु बुधगुप्त ने मध्यदेश प्रकार के ही सिक्के तैयार किये। उसके पश्चिमी प्रकार के सिक्के अभी तक प्रकाश में नहीं आये हैं। सम्भवतः पश्चिमी प्रान्तों पर गुप्त अधिकार समाप्त हो गया था। यह सत्य है कि जब पाँचवीं सदी में बलभी राजा द्रोणसिंह सिंहासनारूढ़ हुआ था तब उसी प्रसंग में यह वर्णन

किया गया है कि वह समस्त पृथिवी के स्वामी द्वारा अभिषिक्त किया गया था, जो स्वयं उसी कार्य के निमित्त आया था। सम्भवतः जिस पृथिवी के स्वामी या सम्राट् का उल्लेख यह हुआ है, वह बुधगुप्त होगा। उस समय बुधगुप्त के लिए निमंत्रण का कारण गुप्त सम्राटों की प्रतिष्ठा थी, जिसे पश्चिमी भारत के उस क्षेत्र में वे उपभोग करते रहे। किंतु उस समय गुप्तोंका अधिराज्य मालवा, गुजरात, कठियावाड आदि पश्चिमी प्रांतों पर था, यह निश्चय पूर्वक कहना कठिन है। स्कंदगुप्त के पश्चिमी भारत ढंग के चाँदी सिक्कों का अभाव अर्थपूर्ण मालूम होता है। यदि उसका राज्य पश्चिम हिन्दुस्तान पर होता तो पश्चिमी प्रकार के सिक्के भी अवश्य निकलते।

बुधगुप्त का मध्यदेश प्रकार प्रथम कुमारगुप्त या स्कन्दगुप्त के मध्यदेश प्रकार के चाँदी सिक्कों के समान है। चेहरे का रूप एक-सा है। सामने अंक में तिथि उल्लिखित है। यूनानी अक्षरों का अवशेष नहीं है। पृष्ठभाग पर पंख फैलाये मोर का चिह्न मिलता है। लेख—'विजितावनिरवनिपतिः श्री बुधगुप्तो दिवं जयति' उत्कीर्ण है। औसत आकार .५५" तथा तौल ३३ ग्रेन है। एक सिक्का ३६.५ ग्रेन है। अभी तक बुधगुप्त के केवल छः सिक्के मिले हैं। सन् १८३५ ई० में कनिंघम को काशी में पाँच सिक्के मिले थे और छठा उसे बाद में 'सारनाथ' से प्राप्त हुआ। बनारस में प्राप्त सिक्कों की तिथि १७५ है। छठे पर १८० पढ़ा गया है; किन्तु ८० का चिह्न संदेहात्मक है।[1]

फलक पर प्रदर्शित सिक्के

(१) चाँदी, .५५", ३८.३ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कॅ०, फ० २४, १३

पुरोभाग—दाहिने राजा का अर्द्धचित्र, तिथि सामने,अंक चिह्न लम्बवत्, १००, ७०, ५

पृष्ठभाग—पंख प्रसारित मोर, बाईं ओर गर्दन, वर्तुलाकार मुद्रा-लेख अस्पष्ट, बारह बजे 'विजितवनरवनपतः श्र बुधगुप्तो' 'दिवं' 'जयत' 'बुधगुप्त' स्पष्ट, सात बजे (फ० १८, २६)।

(२) चाँदी, .५५", ३३.६ ग्रेन, वही, फ०२४, १४

पुरोभाग—पूर्ववत्, तिथि सीमा से बाहर।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, लेख अस्पष्ट, दाहिने कुछ साफ 'वजतवनरवनपत श्र बुधगुप्तो दिव जयति' (फ० १८, २७)।

(३). चाँदी, .५५, तौल अज्ञात, क० आ० स० रि० भा० ६ फ० ५, १३

पुरोभाग—पूर्ववत, तिथि साफ, १००, ७०, ५।

पृष्ठभाग—पूर्ववत् (फ० १८, २७)।

---

१ इ० आ० भा० १८, पृ० २२७।

(४) चाँदी, .५५", ३३·८ ग्रेन' ब्रि० म्यू० कॅ० गु० डा० फ० २४, १५,

पुरोभाग—राजा का रूप कुछ अंशों में क्षत्रप सिक्कों के सदृश।

पृष्ठभाग—लेख—'पत-श्री बुद्धगुप्तो दव ज (यति)' (फ० १८, २६)।

(ऊ) विष्णुगुप्त की स्वर्णमुद्राएँ

द्वितीय कुमारगुप्त के पुत्र विष्णुगुप्त [1] ने धनुर्धारी प्रकार के सोने के सिक्के प्रचलित किये थे। लगभग ई० सन् ४९६ में बुधगुप्त की मृत्यु के पश्चात् वह गद्दी पर आया होगा अथवा अपने पिता की मृत्यु के बाद लगभग ई० सन् ४६० में। अधिकतर कालीघाट निधि से उसके सिक्के मिले हैं; किन्तु कटक जिले में एक स्थानीय नरेश प्रसन्न [2] के ४७ सिक्कों के साथ विष्णुगुप्त का भी एक सिक्का मिला है। सिक्कों के प्राप्तिस्थान से पता चलता है कि उसका राज्य दक्षिण-पूर्व बंगाल में ही सीमित था।

विष्णुगुप्त के सिक्के तौल में १४७ से १५१ ग्रेन तक हैं; किन्तु उनका आकार छोटा है, जो .८.७५" से .८" तक पाया जाता है। राजा के पैरों के बीच 'रू' अक्षर खुदा है। वह प्रकाशादित्य के सिक्के पर मिलता है। राजा के बायें हाथ के नीचे 'विष्णु' लिखा है; किन्तु पुरोभाग पर कोई वर्तुलाकार मुद्रा-लेख नहीं। पृष्ठभाग में राजा की विरुद 'श्री चन्द्रादित्य' है। फलक पर प्रदर्शित सिक्कों का वर्णन इस प्रकार है—

धनुर्धारी प्रकार

(१) सोना, .८," १४६ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कॅ०, फ० २३, ६

पुरोभाग—राजा बायें खड़ा, प्रभामंडलयुक्त, धनुष-बाण पकड़े हुए, बायें गरुड़ध्वज, राजा के बायें हाथ के नीचे अर्द्धचन्द्र, उसके नीचे लंबवत् लेख 'विष्णु', वर्तुलाकार मुद्रा-लेख अविद्यमान।

पृष्ठभाग—कमलासन पर देवी बैठी, सामने देखती हुई, दाहिने हाथ में पाश तथा बायें में कमल, चिह्न बायें, लेख 'श्री चन्द्रादित्य' (फ० १५, १२)।

(ऋ) वैन्यगुप्त की स्वर्णमुद्राएँ

गुणैधर ताम्रपत्र से [3] पहले पहल वैन्यगुप्त नामधारी गुप्तनरेश का पता लगा, जो दक्षिणी बंगाल में ईसवी सन् ५०७ के समीप राज्य करता था। नालंदा में इस राजा की एक मुहर मिली है। अतः यह स्पष्ट है कि दक्षिण बंगाल में बुधगुप्त का उत्तराधिकारी वैन्यगुप्त था। पूर्वी मालवा में भानुगुप्त नामक दूसरे गुप्तनरेश के राज्य का पता सन् ५१० ई० में चलता है।

---

१. ज० न्यू० सो० इ० भा० ३, पृ० १०३;

२. आ० स० इ० ए० रि० पृ० २३० ; ९२६।

३. इं० हि० क्वा० १९३० पृ० ४५।

वह वैन्यगुप्त का समकालीन हो या उसका उत्तराधिकारी । भानुगुप्त का कोई भी सिक्का नहीं मिलता है। वैन्यगुप्त के सिक्के हमारे संग्रहालयों में सुरक्षित थे; परन्तु भ्रमवश सभी विद्वान उसे तृतीय चन्द्रगुप्त के सिक्के मानते थे । रॅपसन ने इन सिक्कों की बाईं बाँह के नीचे 'चन्द्र' पढ़ा था ; किंतु वह इस पाठ के बारे में निश्चित नहीं था। उसने यह भी माना था कि जिस पहले अक्षर को वह 'च' मानता था, वह अक्षर 'व' के समान भी दीखता था, और दूसरा अक्षर 'न्द्र' 'त्य' के समान[1], जो 'न्य' मुश्किल से पृथक् किया जा सकता है। किंतु श्री ऍलन का यह दावा था कि ब्रिटिश संग्रहालय-सूची फलक २३,७ और ८ पर सिक्के का लेख 'चन्द्र' पढ़ना ही अधिक उपयुक्त है । इसलिए उन्होंने इन सिक्कों को राजा तृतीय चन्द्रगुप्त का माना, यद्यपि उसके अस्तित्व के लिए[2] कोई भी अन्य प्रमाण उपलब्ध नहीं था ।

जब गुणैधर ताम्रपत्र से गुप्तराजा वैन्यगुप्त का अस्तित्व सिद्ध हुआ तब डा० डी० सी० गांगुली ने यह बतलाया कि इन सिक्कों का निर्माता वैन्यगुप्त ही है[3] । जब वैन्यगुप्त के नाम का पता लग गया, तब बाँईं बाँह के नीचे के लेख का पढ़ना सरल हो गया । जिसको पहले हमलोग अर्द्धचन्द्र समझते थे, वह 'ऐ' की मात्रा सिद्ध हुई और 'च' स्पष्ट रूप से 'व' सिद्ध हुआ । नीचे के अक्षर के 'न्य' होने के विषय में कोई कठिनाई नहीं थी । अतः अब सब विद्वान् मानते हैं कि ये सिक्के वैन्यगुप्त के निकाले हुए थे, न कि किसी तृतीय चन्द्रगुप्त के ।

वैन्यगुप्त ने, जिसका विरुद 'द्वादशादित्य' था, सोने के सिक्के निकाले थे । वे केवल धनुर्धारी प्रकार के हैं । राजा के पैरों के बीच 'भ' लिखा है । भानुगुप्त इस राजा का समकालीन शासक था । यह असंभव नहीं है कि वह वैन्यगुप्त का मालवा का राज्यपाल था और इसी कारण वैन्यगुप्त ने उसके नाम के आदि अक्षर को सिक्के पर खुदवाने की आज्ञा दे रखी थी। अन्य सिक्कों की प्राप्ति तथा अधिक अनुसंधान से ये बातें स्पष्ट होंगी ।

वैन्यगुप्त का सिक्का निम्नलिखित रूप से वर्णित किया जाता है—

(१) सोना, .८", १४४.७ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कॅ०, फ० २३,८

पुरोभाग—राजा धोती, हार, भुजबंध तथा कमरबंध पहने बायें खड़ा है, केश-गुच्छ कंधे पर लटक रहे हैं, बायें हाथ में धनुष, दाहिने में बाण, सामने गरुडध्वज, वर्तुलाकार मुद्रालेख अस्पष्ट ।

पृष्ठभाग—कमल पर बैठी देवी, सामने, सिर पर प्रचुर केश, बाँयें हाथ में लम्बी-सी नालयुक्त कमल, दाहिने में पाश, चिह्न अंशतः दृश्य ।

---

१. न्यू० क्रा० १८९१, पृ० ५७ ।
२. ब्रि० म्यू० कै० फ० ३ और ४ ।
३. इ० हि० क्वा० १९३४, पृ० १९५ ।

(ऋ) प्रकाशादित्य की स्वर्णमुद्राएँ

अबतक हमने उन गुप्तनरेशों के विषय में लिखा है जो मुद्रा के अतिरिक्त अन्य साधनों से भी ज्ञात हैं; किन्तु कुछ ऐसे भी राजा हैं जिनका नाम केवल उनके सिक्कों से ही ज्ञात होता है। वे पाँचवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध या छठी सदी के पूर्वार्द्ध में शासन करते थे।

इन शासकों में प्रकाशादित्य का नाम सर्वप्रथम उल्लेखनीय है। उसने सोने के सिक्के चलाये थे। उसका प्रकार मौलिक तथा आकर्षक है। पुरोभाग पर अश्वारोही राजा सिंह का शिकार कर रहा है। अतः इसे आश्वारोही-सिंह-निहन्ता प्रकार कह सकते हैं। इससे प्रथम कुमारगुप्त के गैंड़ा मारनेवाले प्रकार की याद आती है, जहाँ राजा घोड़े की पीठ से उस जानवर को मार रहा है। इन मुद्राओं में पुरोभाग पर गरुडध्वज का स्थान दाहिनी ओर है, न कि बाईं ओर, जैसा प्रायः होता था। गरुडध्वज घोड़े के सिर पर दिखलाई देता है, कभी राजा सिंह के ऊपर झुका हुआ है और कभी सीधा है। किसी में तलवार सिंह के मुख में घुसी प्रकट होती है [फलक १५, १४]। इस प्रकार के सभी सिक्के सुवर्ण तौल अर्थात् ८० रत्ती के हैं। ब्रिटिश संग्रहालय का सूचीपत्र न० ५५६ वाला केवल एक सिक्का तौल में १३६ ग्रेन है। शायद यह घिसा हुआ है। प्रकाशादित्य का सिक्का विशुद्ध सोने का है, मिश्रित धातु का नहीं।

वर्तमान परिस्थिति में यह प्रकाशादित्य कौन था, यह निश्चय पूर्वक कहना कठिन है। पूर्वभारत में उसके सिक्के नहीं मिले हैं; किन्तु उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग में जैसे भरसार, कन्नौज, हरदोई, शाहजहाँपुर तथा रामपुर आदि स्थानों में वे पाये गये हैं। इससे पता चलता है कि वह कोई पिछले शासकों में न था, जिनका राज्य पूर्वी भारत में सीमित रहा। भरसार निधि में स्कन्दगुप्त तथा प्रकाशादित्य आखिर के राजा हैं, जो बतलाता है कि उसने स्कन्दगुप्त के बाद शासन किया हो; यद्यपि वह उसका उत्तराधिकारी न रहा हो। उसके सिक्के में विशेष मौलिकता, गरुडध्वज का स्थान, पृष्ठभाग पर विचित्र चिह्न, धातु की शुद्धता आदि बतलाते हैं कि प्रकाशादित्य का स्थान नरसिंहगुप्त, कुमारगुप्त, बुधगुप्त तथा विष्णुगुप्त से पहले स्थिर करना होगा। कारण यह है कि इन राजाओं के समय में गुप्त सम्राटों के सिक्के केवल धनुर्धारी प्रकार में सीमित हो गये थे तथा अधिक मिश्रित धातु के बनने लगे थे। पुरोभाग के चिह्नसमूह का मुख्य विषय घोड़े के पृष्ठ से सिंह का शिकार करना, प्रथम कुमारगुप्त के गैंड़ा मारनेवाले प्रकार की याद दिलाता है। अतएव यह सम्भव है कि दोनों राजा आसपास समय में राज्य करते हों। प्रकाशादित्य के सिक्के के पृष्ठभाग पर देवी के पैर इस तरह से मुड़े हैं कि वे समतल तकिया के समान दीखते हैं। यही शैली स्कंदगुप्त के कुछ सिक्कों पर (फ० १४, १०) तथा नरसिंहगुप्त की मुद्रा पर भी दिखाई गई है (फ० १५, २)। इन कारणों से यह प्रकट होता है कि प्रकाशादित्य इन राजाओं से पूर्व काल में नहीं हटाया जा सकता।

---

१. ब्रि० म्यू० कॅ० फ० २०, १-२ ; फ० २२, १०-१२।

उपर्युक्त सभी प्रमाणों से यह संकेत मिलता है कि प्रकाशादित्य का समीकरण पुरगुप्त से हो सकता है, जो स्कन्दगुप्त का भाई था और सन् ४६७ ईसवी से ४६८ ई० तक शासन करता रहा। वह अपने पिता प्रथम कुमारगुप्त के पर्याप्त समीप काल में था, इसलिए उसके सिक्कों में खड्गनिहन्ता प्रकार का अनुकरण अस्वाभाविक न था। देवी के मुड़े पैर की शैली स्कन्दगुप्त की मुद्रा के समान है और वही शैली पुरगुप्त के पुत्र नरसिंहगुप्त ने जारी रखी। पाँचवीं सदी के उत्तरार्द्ध में कोई ऐसा गुप्त शासक नहीं हुआ, जिसने सोने के सिक्के नहीं चलाये। इस कारण प्रकाशादित्य की स्वर्ण-मुद्रा भीतरी ग्राम में प्राप्त मुहर में उल्लिखित पुरगुप्त की है, ऐसा मानना अनुचित न होगा। पुरगुप्त अविभाजित साम्राज्य पर शासन कर रहा था; अतएव काशी से रामपुर तक उसके सिक्के प्राप्त हुए हैं। पुरगुप्त की शासन-अवधि थोड़ी थी और प्रकाशादित्य के सिक्के भी अधिक नहीं मिले हैं।

पुरगुप्त ही प्रकाशादित्य था,[१] यह एक केवल सम्भावित मत है, जिसे नये प्रमाणों के आधार पर स्वीकार या त्याग किया जा सकता है।

इतने विचार-विनिमय के बाद उसके सिक्कों का सामान्य वर्णन आवश्यक नहीं है। उसके दो फलकस्थित सिक्कों का विवरण निम्नलिखित है—

अश्वारोही-सिंहनिहन्ता प्रकार

(१) सोना, .८″, १४५.८ ग्रेन, कलकत्ता-संग्रहालय।

पुरोभाग—राजा दाहिने घोड़े पर सवार, टोपी पहने, कूदते हुए सिंह को तलवार से मारने के लिए नीचे झुका हुआ, सिंह आधा प्रदर्शित, धनुष राजा की पीठ के पीछे, प्रत्यंचा दाहिने कंधे पर, गरुडध्वज दाहिनी ओर घोड़े के सिर से ऊपरी भाग में, इस सिक्के पर अदृश्य, वर्तुलाकार लेख 'विजित्य वसुधां दिवं जयति' (पृथिवी को जीतकर, स्वर्ग जीतता है) घोड़े के नीचे 'रु'[२]।

पृष्ठभाग—लक्ष्मी, प्रभा-मंडलयुक्त, कमल पर बैठी सामने देखती हुई, दाहिने हाथ में पाश, बायें घुटने पर स्थित बायें हाथ में कमल, घुटने बाईं ओर, विशिष्ट चिह्न, जो किसी

---

१. ब्रिटिश संग्रहालय की सूची में पृ० १३५ पर ॲलन ने इस समीकरण का सुझाव दिया है; किन्तु पृष्ठ १०३ में इस प्रश्न को योंही छोड़ दिया है; क्योंकि पृष्ठभाग पर 'विक्रम' विरुदवाले भारी तौल के धनुर्धारी प्रकार के सिक्के श्री ॲलन ने पुरगुप्त के माने हैं।

२. 'रु' अक्षर के आधार पर सिक्के की तिथि पीछे जा सकती है; क्योंकि यह अक्षर विष्णुगुप्त के सिक्के पर मिलता है, जिसने ४९० के समीप राज्य किया। किंतु यह भी सम्भव है कि प्रकाशादित्य (पुरगुप्त) ने प्रथम इस अक्षर का समावेश किया, जिसका पीछे से विष्णुगुप्त ने अनुकरण किया हो। जबतक पुरोभाग के इन अक्षरों का अर्थ समझ में नहीं आता, तबतक हम अपना निर्णय नहीं दे सकते।

भी अन्य राजा के सिक्के पर अविद्यमान है, लेख 'श्री प्रकाशादित्यः' (फ० १५,१४)।

(२) सोना, .७५", १४६.२ ग्रेन, ब्रि० म्यू० कॅ०, फ० २२, ३

पुरोभाग--पूर्ववत्, सिंह की पूँछ ऊपर उठी, राजा झुका नहीं, घोड़े के नीचे अक्षर अस्पष्ट[१], लेख पूर्ववत्, दाहिनी ओर गरुडध्वज साफ दीख पड़ता है।

पृष्ठभाग—पूर्ववत्, चिह्न पूरा, लेख 'श्रीप्रकाशादित्य' (फ० १५, १५)।

गुप्तवंश की मुद्रा-सूची में श्री ॲलन ने जय (गुप्त) हरि (गुप्त), वीरसेन, नरेन्द्रादित्य तथा शशांक के सिक्कों को भी सम्मिलित किया है। इनमें कोई गुप्तवंश से सम्बन्धित नहीं था। अतएव इस स्थान पर उनके सम्बन्ध में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। इनके सिक्कों का विवेचन इस ग्रंथावली का अगले भाग में किया जायगा।

१. ब्रि० म्यू० कै० फ० २२, १६; ज० ए० सो० बं० १८५२ फ० १२,९ : ज० रा० ए० सो० १८८९, फ० ३, १०; इ० म्यू० कै० फ० १६, १०।

बारहवाँ अध्याय

गुप्तमुद्राओं से सम्यक् परिचय होने से पहले उनके चिह्न, धातु तथा तौल, लिपि और निधि सम्बन्धी बातों का विवेचन समुचित रूप से सम्भव न था और न बोधगम्य भी हो पाता। अतएव उन विषयों का वर्णन यहाँ, इस अन्तिम अध्याय में अभी, हम करेंगे।

चिह्न (Symbol)

गुप्त मुद्राओं[1] के पृष्ठभाग पर बायें और ऊपरी भाग में प्रायः रेखा के नीचे वर्तुल, चतुष्कोण इत्यादि विभिन्न आकार की जो आकृतियाँ मिलती हैं, उन्हें हम 'चिह्न' शब्द से संबोधित करेंगे। इनके ऊपर प्रायः रेखाएँ या विन्दु भी पाये जाते हैं। स्मिथ ऐसे विद्वान् ने उस आकृति को एक मिश्रित अक्षर (monogram) माना है, जो कई अक्षरों के मेल से बनाया गया है। इस निश्चिय का कारण यह है कि इस प्रकार की जितनी आकृतियाँ भारतीय-यूनानी (Indo-greek) तथा भारतीय-शक (Indo-Scythion) सिक्कों पर मिलती हैं, वे स्पष्टतया यूनानी या खरोष्ठी अक्षरों के मिश्रित रूप हैं। किंतु गुप्त सिक्कों के चिह्नों को अक्षरों का मिश्रित स्वरूप बतलाना असम्भव है। अतः उन आकृतियों को चिह्न शब्द से ही व्यक्त किया जायगा।

इन चिह्नों का चित्रपट हमने फ० २७ पर दिया है। उसमें प्रत्येक चिह्न का अलग-अलग नंबर दिया है। इस प्रकरण में उन नंबरों से अलग-अलग चिह्न सूचित किये गये हैं। चिह्न नं ४१ का अर्थ यह होगा फ० २७ पर का ४१ नंबर द्वारा निर्दिष्ट चिह्न। पाठक को निर्दिष्ट चिह्न का प्रत्यक्ष स्वरूप जानने के लिए फ० २७ देखना पड़ेगा।

आरम्भ में ही यह कह देना आवश्यक है कि ये चिह्न स्वर्ण-मुद्राओं पर ही अंकित किये गये हैं; चाँदी तथा ताम्बे की मुद्राओं पर कभी दिखलाई नहीं पड़ते। साधारणतया एक मुद्रा पर एक चिह्न रहता है; किंतु प्रथम चन्द्रगुप्त तथा समुद्रगुप्त की दस प्रतिशत मुद्राओं पर द्वितीय चिह्न भी दृष्टिगोचर होता है। द्वितीय चन्द्रगुप्त के धनुर्धारी प्रकार के कुछ विरल उपप्रकारों पर यह प्रथा जारी रही; परन्तु बाद में वह लुप्त हो गई। चिह्न का स्थान अक्सर पृष्ठभाग के ऊपरी बायें कोने में रहता है। जब दूसरा उपस्थित होता है, तब उसे ऊपर के दाहिने कोने में अङ्कित पाते हैं। यदि देवी के हाथ में स्थित वस्तु चिह्न के स्थान को ढँक लेती है, तो उसे मुद्रा के मध्य में स्थानान्तरित कर देते थे। ऐसा काच मुद्रा (फ० ४,१-४) में तथा, प्रथम कुमारगुप्त के 'अप्रतिघ' प्रकार में (फ० १४,१-३) पाते हैं। प्रथम कुमारगुप्त के खड्गनिहन्ता प्रकार में चिह्न को (फ० १३,३-५) ऊपरी दाहिने कोने में

---

१ **स्मिथ महोदय के कथनानुसार बोदलियन संग्रह की मुद्रा नं० ६८८, जो समुद्रगुप्त का दण्डधारी प्रकार माना गया है, के पृष्ठभाग पर चिह्न ४१ तथा पुरोभाग पर चिह्न १४ अंकित है, [ज० रॉ० ए० सो० १८८९ पृ० ३०]। यह अकेला ही गुप्त सिक्का है जिसके पुरोभाग पर चिह्न वर्तमान है और जो खोदनेवालों की गलती के कारण आ गया होगा।**

स्थानान्तरित करने का कार्य आकस्मिक प्रतीत होता है । कई स्थानों में तो चिह्न को बिलकुल दिखलाया नहीं गया है; क्योंकि उचित स्थान पर उसे अंकित करना सम्भव नहीं था । उदाहरण के लिए समुद्रगुप्त के अश्वमेध और व्याघ्रनिहन्ता प्रकारों में (फ० ३,६-८, १३-१४) सूची का तथा चन्द्रध्वज का ऊपरी भाग चिह्न के स्थान पर घुस गया है। अतः उन सिक्कों पर से चिह्न को हटा दिया है। देवी के हाथ में स्थित कमल या अंगूर-गुच्छ के कारण उचित स्थान पर चिह्न को अंकित करना कठिन हो गया, जैसा द्वितीय चन्द्रगुप्त की पर्यङ्क प्रकार की मुद्रा के पहले उपप्रकार में (फ० ६,१); प्रथम कुमारगुप्त के राजा-रानी (फ० १४,४) और गजारोही प्रकारों में (फ० १२;१४,१५) तथा उसके अश्वारोही प्रकार की बहुसंख्यक मुद्राओं में (फ० १०-११); इसलिए इन प्रकारों में चिह्न नहीं खुदा गया है। समुद्रगुप्त के वीणा-प्रकार सिक्के के पहले उपप्रकार में भी चिह्न अनुत्कीर्ण है (फ० ३, १५-१६)। ऐसी ही स्थिति द्वितीय चन्द्रगुप्त के अश्वारोही प्रकार की मुद्राओं में दिखलाई पड़ती है (फ० ८, ३-५) । इन मुद्राओं पर चिह्न का स्थान रिक्त है; किन्तु उसे नहीं खुदा गया है। इसका शायद यही कारण हो सकता है कि कुछ कलाकार चिह्न को पसंद नहीं करते थे।

किंतु आरम्भ में गुप्त कलाकार चिह्नों की प्रथा से बहुत आकर्षित हुए थे, और उन्होंने उनके अनेक प्रकार अपनी मुद्राओं पर अंकित किये हैं । धीरे-धीरे इन प्रकारों की संख्या घटने लगी और स्कन्दगुप्त और उनके उत्तराधिकारियों की मुद्राओं पर केवल चार चिह्न फ० २७, नं० ४१, ५६, ५७ व ६१ पाये जाते हैं (फ० १४ व १५)।

बयाना निधि की मुद्रा-सूची में हमने चिह्नों की समस्या का गंभीर तथा विस्तृत विवेचन किया है । उस अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि इन चिह्नों का कोई विशेष अर्थ नहीं है। पूर्वकालीन कुछ राजाओं के विशिष्ट व्यक्तिगत चिह्न थे। उदाहरण के लिए गोंडोफरनिस के सिक्के का चिह्न उसका निजी चिह्न था और कुषाण राजाओं के कुछ चिह्नों को हम कुछ हदतक व्यक्तिगत समझ सकते हैं। किंतु गुप्त मुद्राओं के कोई भी चिह्न शासक से सम्बन्धित नहीं हैं। प्रारम्भिक काल में गुप्त सम्राटों की मुद्राओं पर अनेक चिह्न खुदे हैं और उनमें से अनेक उत्तराधिकारियों ने भी अपनी मुद्राओं पर जारी रखा है। इस अवस्था में यह सिद्धान्त मान्य होना कठिन है कि चिह्नों का विशिष्ट टकसाल अधिकारी से या राजा से सम्बद्ध था । चिह्न नं० २३, नं० ५७ और नं० ६५ बहुतेरे शासन-काल की मुद्राओं पर पाये गये हैं। यदि वे विशिष्ट टकसाल हाकिम के हों, तो यह मानना पड़ेगा कि उनकी आयु सौ से अधिक थी । यह सम्भव है कि कुछ विरले चिह्न—जैसे नं० १३, नं० १५, नं ३६ जो किसी अकेले या दुष्प्राप्य मुद्रा पर अंकित हैं—किसी विशिष्ट कलाकार से संबद्ध हों। यदि ऐसा हो, तो भी उन कलाकारों के नाम नहीं ज्ञात हो सकते हैं। विशिष्ट चिह्न का अमुक टकसाल नगर से सम्बद्ध रहा, यह मत भी सिद्ध नहीं किया जा सकता। गुप्त सिक्कों में कम-से-कम अस्सी चिह्न हैं; परन्तु यह कहना सम्भव नहीं कि उस काल में अस्सी टकसाल

थे। स्मिथ ने यह सुझाव रखा कि इन चिह्नों का कोई धार्मिक संकेत था, किंतु यह भी सिद्ध करना मुश्किल है। प्रायः प्रथम चन्द्रगुप्त तथा द्वितीय चंद्रगुप्त की मुद्राओं पर क्रमशः दुर्गा तथा लक्ष्मी की आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं; किंतु उनपर कोई भी शैव अथवा वैष्णव चिह्न नहीं पाया जाता। कार्तिकेय प्रकार की मुद्रा उस देवता के समादर में प्रचलित की गई थी; परन्तु उसपर भी शैव चिह्न का अभाव है।

चिह्नों को मंगलचिह्न भी हम नहीं मान सकते; क्योंकि जनश्रुति या साहित्य में उनका उल्लेख नहीं मिलता। यहाँ यह कहना समुचित है कि स्वस्तिक, कमल अथवा शंख के सदृश पवित्र चिह्न गुप्तमुद्राओं पर प्रायः अंकित नहीं मिलते।

इस सिलसिले में यह भी एक सुझाव [२] रखा गया है कि चिह्न से विशिष्ट दिन में टकसाल-द्वारा निकाली गई समस्त मुद्राओं की संख्या दिखाई जाती थी। चिह्नों की प्रत्येक रेखा शायद २० संख्या को निर्दिष्ट करती थी, शून्य एक को, इत्यादि-इत्यादि। यदि यह कल्पना सत्य हो तो द्वितीय चंद्रगुप्त के धनुर्धारी प्रकार में अनेक पेचीदा चिह्न होने चाहिए; परन्तु ऐसा नहीं है। चक्रविक्रम प्रकार के चिह्न में पाँच लकीरें हैं, इसलिए इस प्रकार के १०० सिक्के बनाये थे, यह मानना पड़ेगा। पर क्या कारण है कि अभी तक इस प्रकार की एक ही मुद्रा प्राप्त हुई है? यह भी मानना ठीक नहीं कि चिह्न कुछ गूढ़ ढंग से निर्माण-तिथि का बोध कराते हैं। गुप्त चाँदी के सिक्कों की निर्माण-तिथि प्रचलित अंकों द्वारा ही व्यक्त की गई है, न कि गूढ़ चिह्नों द्वारा; सुवर्ण मुद्राओं पर ही यह प्रथा क्यों छोड़ी गई, यह कहना कठिन है। सुवर्ण मुद्राओं पर तिथि देने का भी रिवाज कुशाण या गुप्त काल में था, इसके लिए कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

गुप्त टकसालवालों ने जिस कुशाण प्रकार का अनुकरण किया, उसपर चार काँटेवाला चिह्न प्रायः रहता था। वे उसे एक शोभाचिह्न समझने लगे और विविधता और वैचित्र्य के सहारे वे उसको अधिकाधिक चमत्कारपूर्ण बनाने लगे। इस तरह से गुप्त मुद्राओं पर चिह्नों की इतनी विविधता उत्पन्न हुई है। इस सिद्धान्त की सत्यता फ० २० पर नीचे दिये हुए चिह्नों की विविधता से प्रतीत होगी।

नं० १, नं० २, नं० ३, नं० ४, नं० ५, नं० ६

नं० ११, नं० १२, नं० १३, नं० १४

नं० १६, नं० २०, नं० २१, नं० २२

प्रथम चन्द्रगुप्त ने थोड़े समय तक मुद्रा प्रचलित की, उसपर भी आठ चिह्न दिखलाई पड़ते हैं। समुद्रगुप्त की मुद्राओं पर विभिन्न २५ चिह्न मिले हैं। द्वितीय चन्द्रगुप्त के समय उसकी संख्या ४० हो गई।

प्रारम्भिक समय में गुप्तसम्राटों ने कई प्रकार, उपप्रकार तथा ढंग की स्वर्णमुद्रा तैयार कराई; किन्तु किसी विशिष्ट प्रकार से किसी विशिष्ट चिह्न का सम्बन्ध प्रकट नहीं होता।

१. ज० रा० ए० सो० १८८९ पृ० ३३।

२. ज० न्यू० सो० इ० भा० ११ पृ० १११।

समुद्रगुप्त के धनुर्धारी प्रकार में, जिसके बहुत ही कम सिक्के मिले हैं, दो विभिन्न चिह्न न० २५ तथा ७५ पाये जाते हैं। द्वितीय चन्द्रगुप्त के धनुर्धारी वर्ग के द्वितीय उपवर्ग प्रकार में केवल १७ मुद्राएँ मिली हैं; किंतु उनपर पाँच विभिन्न चिह्न पाये जाते हैं। उस राजा के पर्यङ्क प्रकार में केवल पाँच सिक्के मिले हैं; किंतु उनपर दो विभिन्न चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं। इस संबंध में केवल एक ही अपवाद हम पाते हैं। समुद्रगुप्त के दण्डधारी प्रकार के चिह्न तीसरे उपप्रकार में चिह्न नं० ६५ से कोई दूसरा चिह्न नहीं पाया गया है।

प्रथम कुमारगुप्त के शासनकाल में चिह्न में विविधता लाने की प्रवृत्ति कम होने लगी। उसकी धनुर्धारी सिक्कों की संख्या अधिक होते हुए भी उनपर केवल छः चिह्न पाये जाते हैं।

अश्वारोही प्रकार के सात उपप्रकारों में केवल एक पर ही चिह्न दिखलाई पड़ता है, जिसकी शकल समानान्तर चतुर्भुज है। इस राजा के सिंहनिहंता प्रकार के सिक्के में दूसरे वर्ग के प्रथम उपप्रकार में, जिसपर 'साक्षादिव नरसिंहः' मुद्रालेख है, एक ही तरह का चिह्न नं० ५७ पाया जाता है। प्रथम कुमारगुप्त के दुष्प्राप्य प्रकारों की मुद्राओं पर प्रायः विशिष्ट प्रकार का चिह्न दृष्टिगोचर होता है। खड्गधारी प्रकार में नं० ६५ वाला चिह्न तथा खड्गनिहन्ता में नं० २३ का चिह्न वर्तमान है। परन्तु इनमें से कोई भी चिह्न केवल उसी प्रकार से सम्बन्धित नहीं कहा जा सकता। चिह्न नं० ६५ केवल खड्गधारी सिक्के पर ही नहीं, बल्कि छत्रधारी और अप्रतिघ प्रकारों में भी मिलता है। स्कन्दगुप्त की मुद्राओं पर न० ४१ तथा नं० ५७ वाले चिह्न पाये जाते हैं। घटोत्कचगुप्त, बुधगुप्त और द्वितीय कुमारगुप्त के सिक्कों पर केवल चिह्न नं० ४१ पाया गया है। नरसिंहगुप्त की मुद्राओं पर इस चिह्न के अतिरिक्त तत्सदृश चिह्न नं० ६५ चिह्न भी उत्कीर्ण हुआ है। प्रकाशादित्य के सिक्के पर एक अनोखा तथा नवीन चिह्न नं० ५६ मिलता है।

साधारणतया गुप्त मुद्राओं की बाईं ओर ऊपर एक चिह्न मिलता है। इस नियम के अपवाद नीचे दिये जा रहे हैं।

(१) समुद्रगुप्त के दण्डधारी प्रकार का सिक्का, जो बोदलियन संग्रह से मिला है; इसके पुरोभाग पर भी एक चिह्न उत्कीर्ण है। पृष्ठभाग का चिह्न यथास्थान मौजूद है।

(२) निम्न-निर्दिष्ट सिक्के पर दो चिह्न मिलते हैं, एक बाईं ओर और दूसरा दाहिनी ओर।

क. प्रथम चन्द्रगुप्त की कुछ मुद्राओं पर (फ० १, ८)।

ख. समुद्रगुप्त के दण्डधारी सिक्कों में १५% पर।

ग. द्वितीय चन्द्रगुप्त के धनुर्धारी प्रकार, वर्ग प्रथम, दूसरा उपप्रकार (फ० ४; १०)।

घ. प्रथम कुमारगुप्त के अश्वारोही प्रकार के चौथे उपप्रकार के कुछ सिक्के (फ० ११, १२-१३)।

(३) नीचे लिखे मुद्राप्रकारों में पृष्ठभाग पर अपेक्षित स्थान पर कोई चिह्न नहीं है। उसके स्थान पर कुछ दूसरा पदार्थ आ गया है।

क. समुद्रगुप्त—अश्वमेध प्रकार (फ० ३, ६-८)।

ख. वही—व्याघ्रनिहन्ता प्रकार (फ० ३,१३-१४)।

ग. द्वितीय चन्द्रगुप्त—धनुर्धारी प्रकार, दूसरा वर्ग, चौथा उपप्रकार (फ० ५,७)।

घ. वही—पर्यङ्कप्रकार, पहला उपप्रकार (फ० ३, १५-१६)।

च. वही—राजारानी प्रकार–रानी का सिर चिह्न के स्थान पर (फ० ६, ६)।

छ. वही—सिंहनिहन्ता प्रकार के कुछ सिक्के (फ० ६, ८-१३)।

ज. अर्द्ध दीनार (फ० ५,१३)।

झ. प्रथम कुमारगुप्त–सिंहनिहन्ता प्रकार पहला वर्ग, प्रथम उपप्रकार (फ० १२, १)।

ट. वही—धनुर्धारी प्रकार—तृतीय वर्ग, तीसरा उपप्रकार (फ० १०, ४)।

ठ. वही—अश्वारोही प्रकार-प्रथम वर्ग-पहला से चौथा उपप्रकार, द्वितीय वर्ग पहला उपप्रकार (फ० १०,११-१५; ११,१-८)।

ड. वही—अश्वमेध प्रकार (फ० १३, ७-१०)।

ढ. वही—राजारानी प्रकार (फ० १४, ४)।

त. वही—गजारोही प्रकार (फ० १२, १४-१५)।

थ. वही—गजारोही-सिंहनिहन्ता प्रकार (फ० १२, १-२)।

द. वही—वीणा प्रकार (फ० १४, ५)।

(४) निम्नलिखित सिक्कों पर चिह्न का स्थान रिक्त होते हुए भी वह अनुपस्थित है।

क. समुद्रगुप्त—वीणा प्रकार, पहला उपप्रकार (फ० ३, १५-१६)।

ख. द्वितीय चन्द्रगुप्त—छत्रधारी प्रकार, दूसरा उपप्रकार (फ० ८, १०)।

ग. वही—अश्वारोही प्रकार, द्वितीय वर्ग कुछ सिक्के (फ० ८, ३,५)।

घ. वही—सिंहनिहन्ता प्रकार कुछ सिक्के (फ० ६; ८, १३-१४; फ० ७,४?)।

च. प्रथम कुमारगुप्त–अश्वारोही प्रकार,प्रथम वर्ग चौथा उपप्रकार(फ० १०,१४-१५)।

छ. वही—कार्तिकेय प्रकार (फ० १३, ११-१२)।

(५) निम्नलिखित मुद्राओं पर चिह्न कोने से हटाकर मध्य में रखा गया है।

क. काच—पहला उपप्रकार (फ० ४, १-४)।

ख. प्रथम कुमारगुप्त—सिंहनिहन्ता प्रकार, चौथा उपप्रकार (फ० १२, ६)।

ग. वही—अप्रतिरथ प्रकार (फ० १५, १-३)।

घ. बुधगुप्त—एक सिक्का (फ० १५, ८)।

तौल-मान

पिछले पृष्ठों में गुप्तसम्राटों द्वारा निकाले गये विभिन्न प्रकार तथा उपप्रकार की मुद्राओं का वर्णन करते समय सिक्कों की तौल के विषय में साधारण विवेचन किया गया है। यहाँ उसी विषय का विशेष विवरण किया जा रहा है, ताकि उसका समुचित ज्ञान हो जाय।

पाठक को यह जानकर आश्चर्य तो हुआ होगा कि एक प्रकार के सिक्के के विभिन्न उपप्रकारों में तौल में एकता नहीं है। उदाहरणार्थ, समुद्रगुप्त के अश्वमेध सिक्के, जो बिलकुल घिसे नहीं हैं, तौल में कभी ११२, कभी ११६ तो कभी १२१ ग्रेन होते हैं। द्वितीय चन्द्रगुप्त के धनुर्धारी प्रकार में कुछ सिक्के १२७ ग्रेन, कुछ १२४ ग्रेन और कुछ १२१ ग्रेन के हैं। तौल का क्रम उत्तरोत्तर शासनकाल में बढ़ता ही गया। आधुनिक काल में ऐसी अवस्था दिखलाई नहीं पड़ती। पिछले सौ वर्षों में रुपये की तौल बढ़ी नहीं है, यद्यपि पाँच विभिन्न शासक भारत में राज्य करते रहे। सभी सिक्के, जिन्हें राज्य से तैयार कराये जाते हैं, तौल में बिलकुल अभिन्न होते हैं। कोई दो रुपया अथवा पौंड तौल में भिन्न नहीं हो सकता। टकसाल के अधिकारिगण इस विषय में सतर्क रहते हैं कि टकसाल से निकले सिक्के उचित तौल के अनुसार हों। तौल में अधिक या कम का सिक्का शीघ्र गला दिया जाता है। पुराने समय में भारतीय या यूनान या रोम टकसाल के अधिकारी इतने सूक्ष्म रूप से प्रचलित सिक्कों की तौल के विषय में विचार नहीं करते रहे। कुषाण या गुप्त शासकों की बिना घिसी स्वर्णमुद्राएँ तौल में ११८ से १२२ ग्रेन तक विभिन्नता दिखलाती हैं। जूलियस सीजर की स्वर्णमुद्राओं का तौलमान १२१ से १२५ ग्रेन तक बदलता रहता है। यूनानी चाँदी के ड्रॅम की सैद्धान्तिक तौल ६७.२ ग्रेन थी ; किन्तु प्रत्यक्ष व्यवहार में उनकी तौल ५५ से ६१ ग्रेन तक ही रहती है, जैसा डिमिट्रियस तथा यूक्रेटाइडिस के सिक्कों में देखी गई है।

वर्त्तमान ढंग के वैज्ञानिक तौल-माप के अभाव में यह आसान न था कि टकसाल से एक ही तौल के समान सिक्के तैयार किये जायँ। इसलिए एक या दो ग्रेन की कमी को नगण्य समझा गया। स्वर्णमुद्रा विरले समय पर विनिमय में दी जाती थी ; अतएव यह असम्भव नहीं कि उस समय प्रत्येक सिक्कों को ग्रहीता तौलता रहा, ताकि वह उसकी तौल का ज्ञान कर सके। यहाँ यह कहना पड़ता है कि पिछली सदी तक गाँव का सुनार पटवारी को विभिन्न प्रकार के रुपये या छोटे सिक्कों की तौल सम्बन्धी ज्ञान कराता था, जिनको पटवारी रैयत से भूमिकर के रूप में प्राप्त करता था।

यह कहा जा चुका है कि गुप्त स्वर्ण-मुद्राएँ कुषाण सिक्के के नमूने से कितनी प्रभावित थीं। तौल में भी वही बात है। 'सुवर्ण' नाम की प्राचीन भारतीयमुद्रा तौल में ८० रत्ती अर्थात् १४४ ग्रेन के बराबर थी। गुप्तमुद्राओं का संचलन शुरू करने के समय प्रथम चन्द्रगुप्त ने ८० रत्तियों की प्राचीन तौल नहीं अपनाई। उसने चिरपरिचित १२० ग्रेन की कुषाण तौल ही पसंद की, जो रोम की सुवर्णमुद्रा ऑरियस से तौल से संबद्ध थी। प्रथम

चन्द्रगुप्त के सभी अच्छी हालत के सिक्के १२० या १२१ ग्रेन तौल में मिलते हैं। समुद्रगुप्त के भी बहुसंख्यक सिक्के इसी तौलमाप के अनुसार तैयार किये गये थे।

हमने इस ग्रंथ में अनेक जगह १२१, १२४ तथा १२७ ग्रेन के विभिन्न परिमाणों का उल्लेख किया है, जिनके अनुसार द्वितीय चन्द्रगुप्त तथा प्रथम कुमारगुप्त के शासनकाल में सिक्के निकाले जाते थे। यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि क्या उस समय तौल के ये तीन विभिन्न परिमाण थे अथवा यह भिन्नता 'काकतालीय न्याय' से प्राप्त हुई, या टकसाल के अधिकारियों की लापरवाही से उत्पन्न हो गई। मालूम पड़ता है कि इस समय सचमुच तौल के ये तीन विभिन्न परिमाण थे। चूँकि मुद्राओं के कुछ उपप्रकार केवल १२१ ग्रेन की तौल के, कुछ १२४ ग्रेन की तौल के और कुछ १२७ ग्रेन की तौल के दिखाई देते हैं। उदाहरण के लिए, यह देखिए कि द्वितीय चन्द्रगुप्त के धनुर्धारी प्रकार में सभी सिक्के, जिनपर देवी सिंहासन पर बैठी है, तौल में १२१ ग्रेन के समीप हैं। उनमें कोई भी १२४, १२५, १२६ या १२७ ग्रेन के बराबर नहीं है। उस उपप्रकार के सभी सिक्के, जिनपर राजा की बगल में तलवार है; तौल में १२६ या १२७ ग्रेन हैं। प्रथम कुमारगुप्त के धनुर्धारी प्रकार प्रथम वर्ग और पहले उपप्रकार के सभी मुद्राएँ, जिनमें राजा धनुष का सिरा पकड़े है, तौल में १२४ ग्रेन के बराबर हैं। उनमें से कोई भी १२१ ग्रेन के लगभग नहीं है। अतएव यह अनुभव करना युक्तिसंगत है कि द्वितीय चन्द्रगुप्त और प्रथम कुमारगुप्त के समय में तीन विभिन्न तौलमाप थी। इसका वास्तविक कारण बतलाना कठिन है।

द्वितीय चन्द्रगुप्त के शासनकाल में १२१, १२४ तथा १२७ ग्रेन की तीन तौल-माप वर्तमान थी, उनमें १२१ की माप लोकप्रिय रही और इसीलिए ८० प्रतिशत सिक्के इसी तौल के निकाले गये। प्रथम कुमारगुप्त के राज्य में १२१ ग्रेन की माप कम प्रयुक्त होने लगी। १२१ ग्रेन मापवाले १० प्रतिशत, १२४ ग्रेन तौलवाले १५ प्रतिशत तथा १२७ ग्रेन माप वाले ७५ प्रतिशत सिक्के पाये जाते हैं। स्कन्दगुप्त ने इन तीनों तौल-माप को छोड़कर १३२ ग्रेन के बराबर राजा और लक्ष्मी प्रकार तथा धनुर्धारी प्रकार के एक उपप्रकार का सिक्का तैयार कराया। धनुर्धारी प्रकार में दूसरा उपप्रकार १४४ ग्रेन तौल में है, जो प्राचीन भारतीय सुवर्ण माप (८० रत्ती) के समान है।

यह कहना कठिन है कि स्वर्ण-मुद्राओं की तौलमाप शासन के उत्तरोत्तर अवधि में क्यों क्रमशः बढ़ती गई। उसके लिए यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि चाँदी की तुलना में सोना अधिकाधिक सस्ता होने लगा। इस कारण राज्य को प्रजा के सम्मुख उत्तरोत्तर अधि-काधिक वजन के सिक्के रखना आवश्यक हो उठा। किंतु इस सम्बन्ध में कोई प्रमाण नहीं मिलता कि सोना वस्तुतः अधिकाधिक सस्ता होता रहा। यह भी संदेहात्मक है कि स्वर्ण मुद्राएँ सचमुच चाँदी के मूल्य से संतुलित की जाती थीं। दूसरा तर्क यह हो सकता है कि राजा विदेशी तौल १२१ ग्रेन को छोड़कर भारतीय सुवर्ण तौल को (१४४ ग्रेन) अपनाना चाहते थे। यदि यह सही है, तो यह समझना कठिन हो जाता है कि सरकार को इस कमी

की पूर्ति के लिए १२० वर्ष क्यों लगे? सरकार एकाएक तौल को १२० ग्रेन से १४४ पर बढ़ा सकती थी, उसको उसे धीरे-धीरे १२१ से १२४ तक, उससे १२७ या १३२ ग्रेन तक क्रमशः बढ़ने की आवश्यकता न थी। जैसे स्कन्दगुप्त ने १३२ से १४४ ग्रेन तक तौल को एकाएक बढ़ाया, वैसे प्रथम चन्द्रगुप्त भी तौल को १२० ग्रेन से १४४ ग्रेन तक बढ़ा सकता था।

पिछले गुप्त-नरेश की भारी तौल-माप सुवर्ण-माप के अनुरूप रही; किन्तु एक हाथ से देकर दूसरे हाथ से वापस लेने की नीति काम में लाई गई। पहले गुप्त सम्राटों की स्वर्णमुद्राओं में १० प्रतिशत हीनधातु रहती थीं, जिसका पता कनिंघम ने लगाया था। १२५ ग्रेनवाले सिक्के में ११३ ग्रेन शुद्ध सोना वर्तमान है। स्कन्दगुप्त, बुद्धगुप्त, प्रकाशादित्य, नरसिंहगुप्त तथा द्वितीय कुमारगुप्त की शुद्ध स्वर्णमुद्राओं में २५ प्रतिशत हीनधातु का संमिश्रण है। अतएव १५० ग्रेन तौलवाले सिक्कों में केवल ११३ ग्रेन शुद्ध सोना रहता है।

प्रायः यह अनुमान किया जाता है कि गुप्त खजाने के तनाव की स्थिति में स्वर्ण मुद्राओं में हीनधातु का सम्मिश्रण बढ़ाया गया; किन्तु यह वास्तविकता से दूर है। प्राचीन भारत में सिक्के की असली धातु के ऊपर ही स्वर्ण-मुद्रा की कीमत स्थिर की जाती थी, आजकल की तरह अंकित मूल्य पर नहीं। पुराने समय में सरकार सिक्का तैयार कराने के लिए बाध्य न थी। कितने शासन में सर्वथा मुद्रा का अभाव था। पिछले गुप्तशासकों की स्वर्णमुद्राओं में २५ प्रतिशत हीनधातु का सम्मिश्रण भारतीय सुवर्ण तौल तक पहुँचने की इच्छा के कारण आरम्भ हुआ। किन्तु उनमें वास्तविक सोना पहले की तरह मौजूद था।

नरसिंह गुप्त तथा द्वितीय कुमारगुप्त के सिक्कों में अधिक सम्मिश्रण पाया जाता है। उनमें ५४ प्रतिशत सोना है। उनमें ११२ ग्रेन के स्थान पर ७५ अथवा ८० ग्रेन सोना पाया जाता है। उन राजाओं ने इतने अधिक हीन धातु के मिश्रण को क्यों प्रश्रय दिया, यह कहना कठिन है। सम्भवतः यह नरसिंहगुप्त मिहिरगुप्त (५३० ई०) का विरोधी था; पुरगुप्त (४७० ई०) का उत्तराधिकारी नहीं; हीन सिक्के वाला कुमारगुप्त उसका उत्तराधिकारी होगा। ई० सन् ५४० के समीप गुप्त साम्राज्य का विलय हो रहा था, इसलिए ये अंतिम राजा विशुद्ध सोने का सिक्का निकालने में असमर्थ थे।

गुप्तसम्राटों की मुद्राओं की तौल के वर्णन से पूर्व हमें उन सिक्कों के विषय में कुछ कहना है, जो प्रत्येक शासन में पाये गये हैं तथा उनकी तौल बहुत कम है। उन सिक्कों की तौल ८५ से ११० ग्रेन तक पाई जाती है। उनमें से बहुत सिक्के अच्छी हालत में भी हैं और उनपर घिसने का कोई निशान नहीं दीखता है। उनकी तौल में मुश्किल से एक-आध ग्रेन घिसावट से कम हो गया होगा। बयाना निधि से १२ ऐसे सिक्के मिले हैं। ब्रिटिश संग्रहालय में भी कुछ ऐसे नमूने हैं। तौल में १५-२० ग्रेन घाटे का कोई कारण समझ में नहीं आता। १०० ग्रेन के सिक्के को हम पूर्ण सिक्के का ⅘ मान सकते हैं।

किंतु प्रायः पूर्णसिक्के, आधा, पाद इत्यादि भाग की मुद्राएँ बनाई जाती हैं, न कि ⅔ भाग की। अर्धसुवर्ण का अभी तक एक ही नमूना मिला है (फ० ५१३), पाद सुवर्ण का एक भी नहीं।

हमने ऊपर बताया है कि गुप्तकाल में मुद्राएँ बिलकुल ठीक तौल पर नहीं बनाई जाती थीं, उनके तौल में ग्रेन, आधा ग्रेन का अन्तर हमेशा रहता था। यदि यह माना जाय कि १२१ ग्रेन तौल के ५० सिक्के तैयार करने के निमित्त सोना टकसाल के अधिकारियों को दिया गया; उसमें तीस सिक्कों की तौल औसत से आधा ग्रेन अधिक हो गई और २६ की औसत की बराबर, तो शेष पचासवाँ सिक्का १०५ ग्रेन का ही होगा। अतएव यह सुझाव रखा जा सकता है कि बहुत कम तौल के, यानी १०० से ११० ग्रेन के सिक्के इस तरह आखिरवाले सिक्के होंगे, अतः वे तौल में इतने बड़े पैमाने पर घट गये हैं। इसी तरह से यदि टकसालघरों में १२७ ग्रेन माप के बारह सिक्के बनाने के लिए दिये गये होंगे, और उनमें से ११ सिक्के तौल में आधा ग्रेन कम बने हों, तो बारहवाँ शेष सिक्का १३२ ग्रेन का बन सकता है। द्वितीय चन्द्रगुप्त के कुछ विरले सिक्के १३४ या १३५ ग्रेन तौल के कैसे बन गये होंगे, इसका कारण उपरिनिर्देश से ज्ञात हो सकता है।

गुप्तसिक्कों के प्रकार तथा उपप्रकार की तौल के सम्बन्ध में अब सुसंगत विस्तृत विवेचन किया जायगा।

प्रथम चन्द्रगुप्त की मुद्राओं में १२१ ग्रेन माप-तौल का अनुसरण किया गया है। समुद्रगुप्त के ८० प्रतिशत सिक्कों की भी यही हालत है। परशु प्रकार, धनुर्धारी प्रकार, वीणाधारी प्रकार का छोटा उपप्रकार और व्याघ्रनिंहन्ता प्रकारों में १२१ ग्रेन की माप पाई जाती है। दण्डधारी प्रकार की अधिक संख्या में वही अवस्था दिखलाई पड़ती है। पर्याप्त संख्या में दण्डधारी प्रकार के सिक्के इसी तौल के मिले हैं। दण्डधारी तथा अश्वमेध प्रकारों की थोड़ी-सी मुद्राओं की तौल ११५ या ११८ के आस-पास पाई जाती हैं। इससे यह प्रकट होता है कि उसमें हलकी तौल के सिक्के भी तैयार कराये थे। किंतु उसका कारण क्या था, यह कहना कठिन है।

द्वितीय चन्द्रगुप्त के शासन में उपर्युक्त हलकी तौल-माप को त्याग दिया गया और १२१, १२४ तथा १२७ ग्रेन तौल में सिक्के निकाले गये।

उसके धनुर्धारी प्रकार के पहले वर्ग में, जहाँ पृष्ठभाग पर देवी सिंहासन अधिष्ठित है, १२१ ग्रेन तौल-माप का अनुसरण किया गया है। दूसरे वर्ग में, जहाँ पृष्ठभाग पर देवी कमलासनाधिष्ठित है, ६५ प्रतिशत सिक्कों में १२१ ग्रेन, २० प्रतिशत में १२७ ग्रेन तथा १५ प्रतिशत में १२४ ग्रेन तौल-माप को काम में लाया गया है। इन मुद्राओं के कुछ उपप्रकारों में एक ही तौल रखी गई है। इस तरह द्वितीय वर्ग के चौथे, सातवें, नवें और दसवें उपप्रकारों की तौल १२१ ग्रेन है। छठे उपप्रकार की तौल १२७ ग्रेन है। छत्र प्रकार के ९० प्रतिशत सिक्कों की तौल १२१ ग्रेन और शेष १० प्रतिशत १२४ ग्रेन तौल

में है। उसके अश्वारोही प्रकार में तीनों तौल-मापें मिली हैं। ७५ प्रतिशत सिक्के १२१ ग्रेन, १५ प्रतिशत १२४ ग्रेन तथा १० प्रतिशत सिक्के १२७ ग्रेन तौल में हैं। सिंहनिहन्ता प्रकार में ८५ प्रतिशत १२१ ग्रेन, १५ प्रतिशत १२४ ग्रेन तथा ५ प्रतिशत सिक्कों की तौल १२७ ग्रेन है।

पर्यंङ्क प्रकार के सिक्के १२१ ग्रेन तौल के हैं। दण्डधारी प्रकार की तौल ११८ ग्रेन तथा पर्यंङ्क-स्थित राजारानी प्रकार के सिक्के तौल में ११२ ग्रेन के बराबर हैं। यह तौल अपेक्षाकृत बहुत कम है।

प्रथम कुमारगुप्त के शासन-काल में १२१ ग्रेन की तौल-माप का अत्यन्त कम प्रयोग हुआ है; क्योंकि १२७ ग्रेन लोकप्रिय हो गया था। अश्वारोही प्रकार में ९० प्रतिशत सिक्कों में १२७ ग्रेन, ८ प्रतिशत में १२४ ग्रेन तथा दो प्रतिशत सिक्कों में १२१ ग्रेन की तौल-माप काम में लाई गई हैं। यही अवस्था सिंहनिहन्ता, व्याघ्रनिहन्ता तथा कार्तिकेय प्रकारों में पाई जाती है। खड्गनिहन्ता, राजारानी, छत्र, वीणाधारी, अश्वमेध तथा गजारोही-सिंहनिहन्त प्रकारों के अत्यन्त अधिक सिक्कों में १२७ ग्रेन की तौल पाई जाती है। विरले सिक्के अपवाद के रूप में १२४ ग्रेन तौल के मिलते हैं।

धनुर्धारी प्रकार के प्रथम वर्ग में पहले उपप्रकारवाले सिक्के साधारणतः १२४ ग्रेन तौल-माप के पाये जाते हैं। दूसरे उपप्रकार के ८५ प्रतिशत सिक्के १२१ ग्रेन, १० प्रतिशत १२७ ग्रेन और ५ प्रतिशत १२४ ग्रेन तौल-मापों का अनुसरण करते हैं। तीसरे उपप्रकार में जहाँ 'गुणेशो महीतलम्' का मुद्रालेख है, प्रायः १२१ ग्रेन की हलकी तौल काम में लाई गई है।

स्कन्दगुप्त ने इन सारी मापों को त्याग कर १३२ ग्रेन तौल माप को अपनाया, जो 'राजा-लक्ष्मी' प्रकार के तथा धनुर्धारी प्रकार के पहले उपप्रकारवाले सिक्कों में पाई गई है। पिछले प्रकार के दूसरे उपप्रकार में उसने भारतीय तौल १४४ ग्रेन सुवर्णमाप को अपनाया है। उसके प्रायः सभी उत्तराधिकारियों ने इसी सुवर्ण तौल को स्वीकार किया था और १४२ से १४६ ग्रेन तक के तौलवाले सिक्कों को तैयार कराया था। हाल में ही ब्रिटिश संग्रहालय में सुरक्षित उत्तरकालीन गुप्त राजाओं के सिक्कों की शुद्धता की जाँच की गई है। यदि चुने हुए सिक्के प्रतिनिधि-स्वरूप माने जायँ, तो प्रकट होता है कि नरसिंहगुप्त के दूसरे वर्ग, द्वितीय कुमारगुप्त के पहले वर्ग, बुद्धगुप्त, वैन्यगुप्त तथा प्रकाशादित्य के सभी सिक्कों में क्रमशः ७१, ७६, ७७, ७३ और ७७ प्रतिशत शुद्ध सोना वर्त्तमान है। नरसिंहगुप्त के सभी सिक्के द्वितीय कुमारगुप्त के दूसरे वर्ग के सिक्के और विष्णुगुप्त के सर्व सिक्कों में अधिक मिलावट (संमिश्रण) पाई जाती है। उनके सिक्कों में क्रमशः केवल ५४, ५४ तथा ४३ प्रतिशत शुद्ध सोना है। सम्भवतः वे गुप्तशासन के अंत में निकाले गये थे।

गुप्तलेखों में स्वर्णमुद्रा के लिए 'दीनार' शब्द का प्रयोग मिलता है। उत्तरकाल के भारी तौलवाले सिक्के 'सुवर्ण' के नाम से विख्यात थे।

अभी तक छोटे मूल्य के गुप्त-सिक्के बहुत कम पाये गये हैं। अर्ध दीनार अथवा पाद दीनार विरले ही निकाले जाते थे। सरकारी टकसाल में तैयार किया गया ५७·६ ग्रेन तौल का अर्ध दीनार मिल चुका है; किन्तु पाद या द्विगुण (double) दीनार उपलब्ध नहीं हुआ है।

चाँदी-सिक्कों की तौल से सम्बन्धित विषय पर भी कुछ कहना आवश्यक है। उन्हें गुप्त सम्राटों ने क्षत्रप सिक्कों के स्थान पर चलाया। अतः स्वभावतः इनमें ३० ग्रेन तौल-माप को अपनाया गया है।

सिद्धान्ततः उनकी तौल ३३ ग्रेन होनी चाहिए, जो यूनानी द्रम के आधा था। परन्तु यहाँ भी २७ से ३४ ग्रेन तक तौल घटती-बढ़ती रही। यह अन्तर टकसाल के अधिकारियों की लापरवाही के कारण हो सकता है, या सिक्कों के घिस जाने से, या दोनों कारणों से।

ताम्बे के सिक्कों में किसी खास तौल का अनुसरण नहीं किया गया है। इस पर तनिक भी कुषाण तौल का प्रभाव दिखलाई नहीं पड़ता और न पंचाल, कौशाम्बी अथवा मथुरा के ताम्बे की मुद्राओं का। उनमें कुछ ८७ ग्रेन, कुछ ५७, ४६, ४४, ३५, २५ या १८ ग्रेन तौल के बराबर मिले हैं। अतएव कोई तौल सम्बन्धी आयोजन का अनुमान नहीं किया जा सकता।

मुद्राओं की लिपिशैली

गुप्त मुद्रा-लेखों में अक्षरों का वही स्वरूप मिलता है, जो समकालीन प्रस्तर-लेखों पर अंकित है। मुद्रा में साधारण अक्षरों का आकार संकीर्ण हो जाता है; क्योंकि वहाँ उनको ठीक तरह खोदने के लिए प्रायः पर्याप्त स्थान नहीं मिलता। यह अवस्था विशेषतः चाँदी के सिक्कों पर दिखलाई पड़ती है; जहाँ 'ग' का बायाँ अंग तथा 'क' की पटबल (horizontal)-रेखा अदृश्य हो जाती हैं। 'त' तथा 'न' सीधी रेखा में परिणत हो जाते हैं। गुप्तकालीन अक्षरों के स्वरूप के सम्बन्ध में कुछ विवेचन अब उपस्थित किया जायगा।

छपने की कठिनाई के कारण प्रत्येक गुप्त-मुद्रालेख को मूल रूप में उस स्थान पर देना सम्भव नहीं हुआ, जहाँ उसका निर्देश और विवरण दिया गया है। किंतु हमने फ० २०-२६ पर मूल गुप्तकालीन अक्षरों में सभी मुद्रालेखों को दे दिया है। प्रत्येक फलक के सामने पृष्ठ पर प्रत्येक मुद्रालेख का देवनागरी लिपि में अनुवाद भी कर दिया है, जिससे पाठक मूल लिपि का सम्यक् अध्ययन कर सकते हैं।

फलक २०-२४ पर जो अक्षर अंकित किये गये हैं, वे आकार और शैली में उन अक्षरों से भिन्न हैं, जो फलक २५-२६ पर दिखाई देते हैं। पहले पाँच फलक को लेखक की प्रार्थना पर श्रीशिवमूर्ति ने तैयार किया है। इनमें बयाना-निधि के सिक्कों में जैसा अक्षरों का स्वरूप है, वैसा ही मूल स्वरूप दिखलाया गया है। अंतिम दो फलकों में श्री ॲलन द्वारा प्रकाशित ब्रिटिश म्यूजियम सूचीपत्र (गुप्तवंश) के फलक-स्थित अक्षरों की नकल की

गई है। श्री ॲलन ने आदर्शभूत गुप्त-अक्षरों की आकृतियों (idealisd forms) के ठप्पे (types) बनाये, प्रत्यक्ष व्यवहार में दीखनेवाले अक्षरों से नहीं; और उनका उपयोग फलक पर किया है। इन फलकों को देखकर पाठक प्रत्यक्ष व्यवहार के और आदर्शभूत दोनों प्रकार के गुप्त अक्षरों से अच्छी तरह परिचित होंगे।

मुद्रालेखों में गुप्तलिपि की सर्वप्रधान विशेषताएँ प्रकट हो जाती हैं। 'अ', 'क' तथा 'र' अक्षरों की लंबी रेखा सीधी खड़ी है; उसमें अत्यन्त विरल जगह पर ही पूँछ-सा आकार नीचे दिखाई देता है (फ० २२,६६)। 'घ', 'प', 'य', 'ल', तथा 'स' की लम्ब रेखा अक्षरों के दाहिने अथवा बायें भाग की ऊँचाई पर से लोप हो जाती है। 'ग' तथा 'स' का बायाँ भाग दाहिने से छोटा बन गया है और उसके नीचे एक टिंब (seref) बनने लगा है। 'म', 'ल', 'श', 'स' तथा 'ह' के दो रूप प्रस्तर-लेखों में दिखलाई पड़ते हैं, जिन्हें पूर्वी तथा पश्चिमी ढंग का प्रकार कहा जाता है। इन अक्षरों में से 'म' तथा 'ह' के ही दोनों रूप मुद्रा-लेखों में पाये जाते हैं। पूर्वी ढंग के 'स', 'ल' तथा 'ष' सिक्कों पर उत्कीर्ण नहीं मिलते; किन्तु तथाकथित पूर्वी ढंग के 'म' और 'ह' परशुधारी[१], और धनुर्धारी[२] प्रकारों तथा समुद्रगुप्त के वीणाधारी[३] प्रकार पर अधिकतर उत्कीर्ण पाये गये हैं। इसके अतिरिक्त वे काच[४] सिक्कों और द्वितीय चन्द्रगुप्त[५] के छत्र प्रकार में प्रथम वर्ग के सभी सिक्कों पर मिले हैं। कुछ सिक्के पर तो पूर्वी तथा पश्चिमी प्रकार का 'म' एक साथ[६] ही उत्कीर्ण मिलता है, एक पुरोभाग पर तथा दूसरा पृष्ठभाग पर। इससे ज्ञात होता है कि दोनों प्रकार के अक्षर एक ही क्षेत्र में प्रचलित थे, न कि एक पूर्व प्रदेश में और न दूसरा पश्चिम प्रदेश में। यहाँ यह कहना आवश्यक है कि द्वितीय चन्द्रगुप्त के शासन में 'म' और 'ह' का पूर्वी ढंग विरल ही मिलता है, जो बाद में लुप्त हो गया।

अब व्यक्तिगत अक्षरों के विषय में कुछ कहना आवश्यक होगा। 'अ' का बायाँ अंग कुछ स्थान में कोणयुक्त[७] (angular) तथा किसी जगह गोल[८] (round) हो जाता है। विरले सिक्के में उसकी दाहिनी लम्ब-रेखा पूँछ-सी[९] निकली प्रकट होती है। 'उ' अक्षर के निचले भाग में एक स्पष्ट घुमाव[१०] (loop) आ जाता है। 'क' अक्षर में लम्बवत् रेखा खड़ी तथा पड़ी लकीर सीधी है; किन्तु कभी स्थान की कमी के कारण पड़ी रेखा दो भाग में बँट जाती है और खड़ी से न्यून कोण पर मिलती है।[११] 'ख' का आधार त्रिभुजाकार है[१२]। 'ग' तथा 'घ' का विवरण दिया जा चुका है। 'ङ' केवल संयुक्ताक्षर 'ङ्ह' के साथ प्रयुक्त मिला है। उसका आकार मध्य रेखा-हीन 'ज' के आकार के सदृश है[१३]। 'च' के आकार

---

१. फ० ३, ३-४। २. फ० २,१२,१४। ३. फ० ३, १५।
४. फ० ४, १-२। ५. फ० ८, १६। ६. फ० १, १५।
७. फ० २०,९-११। ८. फ० २३, ४५। ९. फ० २४,६६
१०. फ० १५,१४। ११. फ० २३, ४१। १२. फ० २२,३६।
१३. फ० २१, १७।

में कुछ विशेषता नहीं है[१]। 'छ' प्रायः तितली के सदृश है[२]। 'ज' अक्षर की पड़ी रेखा कभी तिरछी होती दिखलाई पड़ती है[३]। 'झ', 'ङ', 'ट', 'ठ', 'ढ', 'फ,' 'ष' तथा 'ज्ञ' अक्षर मुद्रालेखों में प्रयुक्त नहीं मिलते। 'ड' कुर्सी के आकार का है[४]। द्विभागयुक्त 'ण' विरल ही पाया जाता है[५]। स्यात् इसको खोदने में अधिक स्थान की आवश्यकता है, इसलिए इसका प्रयोग कम हुआ है। प्रायः इस अक्षर में एक ही लम्बवत् रेखा तथा एक पड़ी रेखा नीचे और एक ऊपर वर्त्तमान हैं[६]। 'त' के नीचे गाँठ (loop) नहीं पाई जाती। इसका दाहिना अंग बायें से लम्बा रहता है[७]। कभी सिरे की रेखा लुप्त रहती है[८]। 'थ' सदा वृत्ताकार[९] होता है; पर कभी सिरे पर खुला[१०] पाया जाता है। 'द' दाहिने खुला तथा 'ध' बायें अर्द्धवृत्ताकार होता है[११]। 'न' में बाईं ओर वर्तुलाकार गांठ दिखलाई पड़ती[१२] है; किन्तु कहीं अक्षरों पर यह लुप्त हो जाती है[१३]। 'ब' अक्षर वर्गाकार होता है[१४] और 'भ' का दाहिना भाग कोणयुक्त बन जाता है[१५]। 'म' अक्षर के चार प्रकार मिले हैं। निचले भाग में यह कभी त्रिभुजाकार[१६] और कभी वृत्ताकार दिखलाई पड़ता है[१७]। तीसरा प्रकार वह है जहाँ ऊपरवाली दोनों लकीरें निचली रेखा से दो जगहों पर मिलती हैं;[१८] किन्तु चौथे प्रकार में ऊपरी दोनों रेखाएँ एक स्थान पर मिलती हैं[१९]। प्रायः 'य' के तीन अंग रहते हैं[२०], उनमें से बायाँ और दाहिना अंग वर्तुल खंड से दर्शाये गये हैं। प्रथम कुमारगुप्त के शासन से 'य' का एक नया रूप पाया जाता है, जिसमें बायाँ अंग सीधी लकीर में परिणत हुआ है जो आधार-रेखा से आगे बढ़ जाती है[२१]। 'र' अक्षर एक लम्बी सीधी रेखा की तरह है; किंतु 'ल' की लंब रेखा ऊँचाई में घटती जा रही है[२२]। 'व' का आधार त्रिभुजाकार है;[२३] लेकिन कभी वृत्ताकार हो जाता है[२४]। 'श' का ऊपरी भाग गोल होता है और उसकी खड़ी रेखा दोनों भागों को मिलाती है, जिसमें दाहिना बायें से लम्बा दिखलाई पड़ता[२५] है। 'ष' केवल 'क्ष' के संयुक्त में आता है, जो पड़ी लकीर के साथ 'प' की शकल का है। पड़ी रेखा दोनों बाँहों को हमेशा नहीं मिलती[२६]। 'स' के दोनों ओर के घुमाव स्पष्ट हो जाते हैं और खड़ी रेखा ऊँचाई में घटती जा रही है[२७]। 'ह' के साधारण रूप के अतिरिक्त उसका एक पूर्वी ढंग भी मिलता है, इसमें आधार रेखा का लोप हो जाता है[२८]।

मात्राओं में 'आ' को अक्षर के ऊपरी भाग में दाहिनी ओर झुकी रेखा से व्यक्त करते हैं[२९]। विरल अवस्था में यह पड़ी लकीर हो जाता है और अक्षर से पृथक् दिखलाया

---

१. फ० २०, १। २. फ० २३,४५। ३. फ० २०, ३। ४. फ० २२; ३६।
५. फ० २०, १४। ६. फ० २१, १७। ७. फ० २०; ३। ८. फ० २३, ४२।
९. फ० २०, ४। १०. फ० २०, ९-१०। ११. फ० २०, ४-५। १२. फ० २०, १।
१३. फ० २४, ६८। १४. फ० २२, ३५। १५. फ० २१,३५। १६. फ० २०, ३-४।
१७. फ० २३ ४०। १८. फ० १, १५। १९. फ० १, ८। २०. फ० २०, ३-४।
२१. फ० २१, २३। २२. फ० २१, २। २३. फ० २१, ४-५। २४. फ० २२, ३५।
२५. फ० २०, ३। २६. फ० २१,१४;२२,२५। २७. फ० २०,३। २८. फ० २३,२७; फ० २०,१२।
२९. फ० २०,१२।

जाता है। उदाहरणार्थ काच [१] तथा रूपाकृति [२] मुद्रालेख। 'इ' मात्रा को बायें अर्द्ध-वतु ल[३] से तथा दीर्घ 'ई' को वैसी ही दाहिने अर्द्धवतु ल से व्यक्त करते हैं [४]। किंतु 'ई' मात्रा को अधिकतर खुले मुखवाले वतु ल से दिखलाया जाता है। 'उ' मात्रा को कभी-कभी छोटी खड़ी रेखा से दिखाते हैं, जैसे 'पु' तथा 'सु'[५] में; किंतु कभी-कभी खड़ी रेखा की दाहिनी ओर एक छोटा खुला अर्द्धवतु ल लगाकर भी यह मात्रा दिखलाई जाती है, जैसे 'गु' तथा 'सु' दीर्घ 'ऊ' मात्रा केवल एक जगह मिलती है; उसे लम्बवत् खड़ी रेखा को बढाकर ही दिखाया है; किंतु यह सभंवनीय है कि वहाँ एक पड़ी लकीर लुप्त हुई हो[७]। 'ए' मात्रा बाईं ओर एक झुकी लकीर से व्यक्त की [८] जाती है, 'ऐ' मात्रा ऐसी दो रेखाओं से[९]। 'ओ' मात्रा के लिए अक्षरों के बाईं ओर तथा दाहिनी ओर एक-एक लकीर दी जाती है[१०]। 'ऋ' मात्रा को कभी दाहिने[११] तो कभी बायें खुले अर्द्धवतु ल से दिखलाया जाता है। एक स्थान पर खोदनेवाले ने गलती कर दी है; जहाँ 'इ' और 'ऋ' मात्रा को एक[१२] ही अक्षर में मिला दिया है, जैसे 'पृिथिवी'। [१३] यह स्पष्ट है कि गुप्त-युग में आज की तरह ही पृथिवी उच्चारण किया जाता था।

शब्दों के संयुक्त वर्णों के विषय में कुछ कहना आवश्यक है। अधिक संयुक्ताक्षरों में जैसे न्ह, प्त, न्त, त्व, च, त्त, ज्ज, न्व, स्क, म्ब, स्व, द्ध, आदि में दोनों वर्णों का स्वाभाविक स्वरूप साफ प्रकट होता है; किंतु खड़ी रेखा दोनों के लिए एक ही रहती है। द्ध 'र' के लिए एक[१४] तिरछी रेखा या छोटा अर्द्धवतु ल खड़ी रेखा के नीचे जोड़ देते हैं[१५]। अंत्य य-युक्त संयुक्ताक्षर में य अक्षर द्विभागयुक्त (bipartite) रहता है[१६]। 'र्प', 'र्या' इत्यादि संयुक्ताक्षरों में रेखा के ऊपर एक छोटी[१७] खड़ी लकीर देकर 'र' को निर्दिष्ट करते हैं।

हलन्त 'न्' एक मुद्रालेख में आखिर में मिला है। उसको 'न' के सामान्य रूप से ही निर्दिष्ट किया है; किंतु वह आकार में छोटा है [१८]। 'श्रीमान् व्याघ्रबल पराक्रमः' मुद्रालेख में न् अनुस्वार के रूप में मिलता है।[१९]

---

१. फ० ४, १। २. फ० ७, १। ३. फ० २०, ५। ४. फ० २५, २।
५. फ० २०, ३-६। ६. फ० २०, ७; फ० २३-३१। ७. फ० २३, ४०। ८. फ० २०, १२।
९. फ० २०, ११। १०. वही। ११. फ० २३, ७। १२. फ० २०, ४।
१३. फ० २१, २५। १४. फ० २३, ५५-५६। १५. फ० २०, २, ६। १६. फ० २०, ५, ८।
१७. फ० २०, १। १८. फ० २३, ४०। १९. फ० २१, ३५।

निधियाँ

आज तक गुप्तसिक्कों की जितनी निधियों का पता चला है, उन सबका विवरण अब उपस्थित किया जायगा। सभी निधियों में स्वर्ण मुद्राएँ मिली हैं; किन्तु पश्चिमी भारत में चाँदी के सिक्कों की कुछ निधियों का पता लगा है। उनका विस्तृत विवरण उपलब्ध नहीं है।

(१) कालीघाट-निधि[1]

यह निधि कलकत्ता के समीप हुगली नदी के पूर्वी किनारे पर कालीघाट नामक स्थान में १७८३ ई०में पाई गई थी। यह गुप्त मुद्राओं की पहली निधि है। इस निधि के वास्तविक परिमाण के विषय में कोई ज्ञान नहीं है; किन्तु नवकृष्ण ने, जो इसके खोजी थे, गवर्नर वारन हेस्टिंगस् को दो सौ मुद्राएँ भेंट की थीं। उसने इन सिक्कों को लंदन में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के संचालकों (Directors) के पास भेज दिया। उन लोगों ने २४मुद्राएँ ब्रिटिश संग्रहालयको, उसी संख्या में हंटर के संग्रहालय को, कुछ आक्सफोर्ड के अश्मोलिन संग्रहालय को तथा कैम्ब्रिज के जनता पुस्तकालय को भेंट में दे दिया। शेष सिक्कों को धन के लोभ में कम्पनी के संचालकों ने गलवा दिया। इस निधि के नमूनों से ज्ञात होता है कि उसके अधिकतर सिक्के पिछले गुप्त नरेशों के थे।

(२) भरसार-निधि[2]

बनारस के समीप १८५१ ई०में १६० स्वर्ण-मुद्राओं की इस निधि का पता लगा; किंतु केवल ३२ सिक्कों का विवरण हमलोगों को मिल पाया है। इनमें समुद्रगुप्त से स्कन्दगुप्त तक के सभी गुप्त सम्राटों के सिक्के मिलते हैं। निधि का अंतिम राजा प्रकाशादित्य था। इन ३२ मुद्राओं का विवरण निम्नलिखित है—

समुद्रगुप्त

- दण्डधारी प्रकार—१
- धनुर्धारी ,, —३
- वीणाधारी ,, —२

द्वितीय चन्द्रगुप्त

- धनुर्धारी प्रकार—८
- अश्वारोही ,, —२

---

१. ब्रि० म्यू० कॅ० गु० डा० पृ० १२४-२६; बयाना निधि फ० ४-५।

२. ब्रि० न्यू० कॅ० गु० डा० पृ० ११७-८। ज० ए० सो० बं० १८५२ पृ० ३९९-४०० बयाना निधि पृ० ४-५, फ० २।

प्रथम कुमारगुप्त

धनुर्धारी प्रकार—२
अश्वारोही ,, —४
व्याघ्रनिहन्ता ,, —१
कार्तिकेय ,, —१

स्कन्दगुप्त

धनुर्धारी प्रकार—६

प्रकाशादित्य

अश्वारोही सिंहनिहन्ता—२

योग—३२

(३) हुगली निधि[1]

सन् १८८५ई०में हुगली के समीप १३ सोने की मुद्राएँ पाई गई थीं। उनका वर्गीकरण निम्नलिखित है—

समुद्रगुप्त—दण्डधारी प्रकार—१
द्वितीयचन्द्रगुप्त—,, ,, —५
प्रथम कुमारगुप्त—धनुर्धारी प्रकार—३
वही—अश्वारोही ,, —३
वही—सिंहनिहन्ता ,, —१

योग—१३

(४) टाण्डा निधि[2]

उत्तर प्रदेश के फ़ैजाबाद जिले में टाण्डा नामक स्थान पर १८८५ई०में एक निधि मिली थी, जिसके परिमाण के विषय में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। उस निधि में निम्नलिखित मुद्राएँ थीं—

प्रथम चन्द्रगुप्त— —२
समुद्रगुप्त—दण्डधारी प्रकार—५
अश्वमेध ,, —कुछ
परशुधारी ,, —कुछ
काच —कुछ

---

१. ज० ए० सो० बं० १८८४ पृ० १५२ बयाना निधि पृ० ६।
२. ए० सो० बं० विवरण १८८६ पृ० ६८।

(५) कोटवा निधि[1]

उत्तरप्रदेश के गोरखपुर जिले में १८८६ ई० में इस निधि का पता लगा था। इसके सिक्के डीह की ईंटों में बिखरे पाये गये थे। इसमें निम्नलिखित राजाओं की मुद्राएँ मिली हैं—

द्वितीय चन्द्रगुप्त—धनुर्धारी प्रकार—५
(पृष्ठभागमें कमलाधिष्ठित लक्ष्मी)
वही —सिंहनिहन्ता —१
प्रथम कुमारगुप्त—धनुर्धारी प्रकार—१
,, कार्तिकेय ,, —२
,, अश्वारोही ,, —६
,, सिंहनिहन्ता ,, —१
,, अज्ञात राजा ,, —१
योग— १७

(६) बस्ती-निधि[2]

सन् १८८७ ई० में उत्तरप्रदेश के बस्ती नगर के जेल के समीप यह निधि पाई गई थी; जिसमें दस स्वर्ण-मुद्राएँ थीं। इसमें द्वितीय चन्द्रगुप्त के धनुर्धारी प्रकार के नौ सिक्के थे, जिनके पृष्ठभाग में कमलासीना लक्ष्मी वर्तमान है, छत्रप्रकार का यह एक सिक्का था।

(७) हाजीपुर निधि[3]

बिहार राज्य के हाजीपुर नगर के बाजार में इसका पता लगा था। इसमें २२ सिक्के थे; किंतु केवल चौदह सिक्कों का विवरण मिलता है। वे निम्नलिखित हैं—

प्रथम चन्द्रगुप्त— १
समुद्रगुप्त —दण्डधारी प्रकार—२
वही —धनुर्धारी ,, —१
वही —परशुधारी ,, —१
द्वितीय चन्द्रगुप्त—धनुर्धारी प्रकार—३
छत्र ,, —३
सिंहनिहन्ता ,, —३
योग— १४

---

१. ज० रा० ए० सो० १८८९ पृ० ४६।
२. ए० सो० बं० विवरण १८८७ पृ० २२१।
३. ए० सो० बं० विवरण १८९४ पृ० २२७, बयानानिधि पृ० ७।

(८) टेकरी–डेब्रा निधि[1]

उत्तरप्रदेश के मिर्जापुर जिले में उपरिनिर्दिष्ट स्थान से १९१२ ई० में इस निधि का पता लगा। इसमें ४० मुद्राएँ थीं।

समुद्रगुप्त––दण्डधारी प्रकार ––२
वही ––परशुधारी ,, ––१
द्वितीय चन्द्रगुप्त––धनुर्धारी प्रकार ––१५
,, सिंहनिहन्ता ,, ––६
,, सिंह लौटता हुआ––१
,, अश्वारोही प्रकार––८
प्रथम कुमारगुप्त––धनुर्धारी प्रकार––१
,, सिंहनिहन्ता ,, ––१
,, अश्वारोही ,, ––२
योग––४०

(९) कसरवा निधि

उत्तरप्रदेश के बलिया ज़िला के अन्तर्गत कसरवा ग्राम से इस निधि का पता लगा था, जिसमें निम्नलिखित प्रकार के सिक्के थे––

समुद्रगुप्त––दण्डधारी प्रकार––११
वही––अश्वमेध ,, ––३
वही––परशुधारी ,, ––१
काच–– ––१
योग––१६

(१०) मिटथल निधि[2]

सन् १९१५ई०में पंजाब के हिसार जिले में यह निधि पाई गई थी। इसमें पिछले कुषाण नरेश तथा गुप्तसम्राटों की स्वर्ण-मुद्राएँ साथ में मिली थीं। दुर्भाग्यवश इसका विवरण उचित रीति से लिखा नहीं गया। इसके ८६ सिक्कों में २६ गला दिये गये! शेष मुद्राओं में ३३ समुद्रगुप्त के सिक्के हैं और २७ पिछले कुषाण नरेशों के।

१. न्यू० क्रॉ० १९१० पृ० ३९१-४०३।
२. आ० स० इ० अ० रि० १९२६-७ पृ० २३३-४।

(११) बमनाला निधि[1]

मध्यभारत में नीमार जिले में यह निधि १६४० ई० में पाई गई। उसमें केवल गुप्त नरेशों के २१ सिक्के थे, जिनमें से समुद्रगुप्त के आठ, द्वितीय चंद्रगुप्त के नौ और प्रथम कुमारगुप्त के चार सिक्के थे। समुद्रगुप्त के एक ध्वजधारी प्रकार के सिक्के पर 'विक्रम' उपाधि थी।

(१२) कुसुंभी निधि[2]

यह निधि १६४७ ई० में उत्तरप्रदेश के उन्नाव जिले में पाई गई। उसमें केवल गुप्तनरेशों के २६ सिक्के थे। उनमें समुद्रगुप्त के ध्वजधारी प्रकार के ३, द्वितीय चंद्रगुप्त के ध्वजधारी प्रकार के १७, सिंहनिहन्ता और छत्र प्रकार के एक-एक, कुमारगुप्त के ध्वजधारी प्रकार के ५ और अश्वारोही प्रकार के २ सिक्के थे।

(१३) कुमरखान निधि[3]

यह गुजरात के अहमदाबाद जिले में १६५२ ई० में पाई गई। बम्बई राज्य में प्राप्त यह पहली ही गुप्त सुवर्णमुद्राओं की निधि है। उसमें ६ सिक्के मिले, जिनमें से समुद्रगुप्त का १, काच के २ और द्वितीय चंद्रगुप्त के ध्वजधारी प्रकार के ६ सिक्के थे।

(१४–१७) जौनपुर[4], गोपालपुर[5], झूँसी[6] इलाहाबाद, भभुआ निधि,

जौनपुर, गोपालपुर, झूँसी-इलाहाबाद तथा भभुआ निधियों के विषय में थोड़ी-सी बातें मालूम हैं। जौनपुर-निधि में थोड़ी मुद्राएँ प्राप्त हुई थीं। गोरखपुर जिले के गोपालपुर नामक स्थान से २० सिक्के उपलब्ध हुए, जिनमें द्वितीय चन्द्रगुप्त की सात मुद्राएँ थीं। झूँसी में २० से ३० तक सिक्के मिले थे, जिनमें अधिक सिक्के प्रथम कुमारगुप्त के थे। स्मिथ को कनिंघम-द्वारा प्रेषित सूचना के अनुसार प्रयाग में १८६४ ई० में एक निधि मिली थी, जिसमें २०० सिक्के थे। कनिंघम केवल चार सिक्कों की ही परीक्षा कर सका था। इसलिए स्मिथ का कथन अविश्वसनीय हो जाता है कि उस निधि में मोर-कार्तिकेय प्रकार के अधिक सिक्के थे। क्योंकि प्रथम कुमारगुप्त का यह प्रकार उतना लोकप्रिय नहीं था। शाहाबाद जिले में भभुआ नगर से भी एक निधि का पता चला था। इसमें प्रायः सहस्र मुद्राएँ थीं; किंतु एक भी उपलब्ध न हो पाई। सम्भवतः सब सिक्के गला दिये गये हों, अथवा छिपा कर बाजार में बेच डाले गये हों।

---

१. ज० न्यू० सो० इं० भा० ५, पृ० १३५।
२. ,, ,, भा० १५ पृ० ८२।
३. ,, ,, भा० १५।
४. ज० ए० सो० बं० १८८४ पृ० १५०; बयाना निधि, पृ० ९।
५. वही पृ० १५२; ज० रा० ए० सो० १८९३ पृ० ४९।
६. वही, ज० रा० ए० सो० १८९३ पृ० ४९।

(१८) बयाना निधि

यह निधि खेत के बाँध के नीचे हलनपुर नामक ग्राम में १७ फरवरी १६४६ ई० को पाई गई थी। वह स्थान राजस्थान के बयाना नगर के समीप स्थित है। इसमें सम्भवतः २१०० स्वर्ण मुद्राएँ थीं ; किन्तु उनमें से केवल १८२१ मुद्राएँ ही उपलब्ध हो सकीं। इसका सविस्तृत विवरण हाल ही में प्रकाशित 'बयाना-निधि की मुद्रा-सूची' में दिया गया है। इसमें निम्नांकित राजाओं के सिक्के मिले हैं–

प्रथम चन्द्रगुप्त— —१०

समुद्रगुप्त—दण्डधारी प्रकार —१४५
[१३८ में हाथ के नीचे 'समुद्र' तथा ७ में 'समुद्रगुप्त' लिखा है]

" अश्वमेध प्रकार —२०

" परशुधारी " —६
[हाथ के नीचे 'समुद्र' सात सिक्कों में तथा शेष में 'कृ' अंकित है]

" धनुर्धारी प्रकार —३

" वीणाधारी " —६
[बड़े आकार के दो, छोटे आकार के चार]

" व्याघ्रनिहन्ता प्रकार —२
[एक पर 'राजा समुद्रगुप्त' दाहिने, और दूसरे पर 'व्याघ्रपराक्रमः' दोनों ओर लिखा मिलता है]

काच— —१६
चक्रध्वज प्रकार—१५ }
गरुडध्वज " —१ }

द्वितीय चन्द्रगुप्त स्वर्ण-मुद्राएँ —६८३

धनुर्धारी प्रकार —७६८
पृष्ठभाग पर सिंहासन—४१ }
" " कमल—७५७ }

द्वितीय चन्द्रगुप्त अश्वारोही प्रकार —८२

" बाईं ओर 'राजा'—५२ }
दाहिनी ओर 'राजा'—३० }

छत्र प्रकार— —५७

गद्यमय लेख —५ }
पद्यमय लेख —५२ }

" सिंहनिहन्ता प्रकार— —४२

सिंह से डटा हुआ—२१ }
सिंह को कुचलता—२० }
" सिंह लौटता हुआ—१ }

पर्यङ्क प्रकार— —३

" चक्रविक्रम प्रकार— —१

प्रथम कुमारगुप्त—६२८ सिक्के

धनुर्धारी प्रकार— —१८३

खड्गधारी प्रकार— —१०

अश्वारोही प्रकार— —३०२

मुद्रा-लेख

(अ) क्षितिपति रजितो विजयी कुमारगुप्त जयत्यजितः —६६
(क) जयति नृपोरिभिरजितः —१
(ख) पृथिवीतलेश्वरेन्द्रो कुमारगुप्तो
जयत्यजितः —८
(ग) गुप्तकुलव्योमशशी जयत्यतजेयो जित-
महेन्द्रः —६७
(घ) गुप्तकुलामलचन्द्रः महेन्द्रकर्मा-
जितो जयति —८३
(च) क्षितिपतिरजितो विजयी कुमारगुप्तो
जयत्यजितः —३७
(छ) क्षितिपतिरजितो विजयी
महेन्द्रकर्मा दिवं जयति— —१
(ज) पृथिवीतलाम्बरशशी कुमारगुप्तो
जयत्यजितः —६

प्रथमकुमारगुप्त कार्तिकेय या मोर प्रकार —१३
" छत्र-प्रकार— —२

प्रथम कुमारगुप्त व्याघ्रनिहन्ता प्रकार—— —३६

'कु' रहित——३२
'कु' सहित——४

सिंहनिहन्ता प्रकार —५३

सिंह (युद्ध में डटा) निहता प्रकार —२३
सिंह (को कुचलता हुआ) निहताप्रकार-३०

गजारोही-सिंहनिहन्ता प्रकार —४

गजारोही प्रकार— —३

खड्गनिहन्ता प्रकार— —४

अश्वमेध प्रकार— —४

वीणाधारी प्रकार— —२

अप्रतिघ प्रकार— —८

राजा-रानी प्रकार— —१

स्कन्दगुप्त क्रमादित्य

छत्र प्रकार— —१

आजतक गुप्त स्वर्ण-मुद्राओं की जितनी निधियाँ प्राप्त हुई हैं, उनमें बयाना निधि सबसे बड़ी है। हमें इसके प्रत्येक सिक्के का वर्णन वैज्ञानिक ढंग पर तैयार मुद्रासूची से सरलता पूर्वक मिल जायगा, जिसमें आकार तथा तौल का भी विवरण दिया गया है। उसकी ४५६ मुद्राएँ ३१ फलकों पर प्रकाशित की गई हैं। उक्त पुस्तक की लम्बी भूमिका में गुप्तयुग के प्रधान तथा विवादग्रस्त विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

परिशिष्ट १

हाल में प्रकाशित नये प्रकार की मुद्राएँ

इस पुस्तक के फलक बनाने के पश्चात् कुछ नये प्रकार की गुप्तमुद्राएँ प्रकाशित हुई हैं; उनका विवरण नीचे दिया जाता है।

समुद्रगुप्त

१ व्याघ्रनिहन्ता प्रकार

कलकत्ते के श्री० पोद्दार के संग्रह में इस प्रकार का एक नया उपप्रकार मिला है, जहाँ पृष्ठभाग की देवी मकर की पीठ से उतरती हुई दिखाई गई है। इस उपप्रकार की मुद्रा अबतक अज्ञात थी। ज० न्यू० सो० ई० भा० १४ फ० ६ नं० १० में यह मुद्रा प्रकाशित हुई है। (फ० १६, ७)।

२ द्वितीय (?) समुद्रगुप्त का धनुर्धारी प्रकार

लखनऊ के गयाप्रसाद-गौरीशंकर के फर्म को हाल में समुद्रगुप्त के धनुर्धारी प्रकार की एक सुवर्णमुद्रा मिली है, जिसका पुरोभाग ज्ञात धनुर्धारी प्रकार के समान है; किन्तु पृष्ठभाग पर 'अप्रतिरथः' के बजाय 'पराक्रम' विरुद खुदा गया है। दोनों विरुद समुद्रगुप्त ने धारण किये थे; किन्तु अब तक 'पराक्रम' विरुद धनुर्धारी प्रकार पर नहीं पाया गया था। भरसार-निधि में समुद्रगुप्त के धनुर्धारी प्रकार के इस उपप्रकार के तीन सिक्के मिले थे, ऐसा कित्तो ने लिखा है[१]। किंतु उनके प्रकाशित न होने के कारण अथवा पश्चात् नष्ट होने के कारण कित्तो के उस विधान की जाँच नहीं की जा सकती थी। यह असंभव नहीं कि यह नवीन मुद्रा उस निधि में की ही होगी। पुरोभाग पर राजा आहुति देता है, यह कित्तो का विधान गलत हो सकता है।

इस सिक्के का वर्णन इस प्रकार है—

आकार .८"; तौल १३६ ग्रेन

पुरोभाग—राजा बाईं ओर खड़ा, बायें हाथ में धनुष, दाहिने में बाण, सामने गरुडध्वज; बाँह के नीचे 'समुद्र'; वर्तुलाकार मुद्रालेख अविद्यमान।

पृष्ठभाग—कमलासनाधिष्ठित लक्ष्मी, दाहिने हाथ में पाश तथा बायें में कमल, बाईं ओर चिह्न, दाहिनी ओर लेख, 'पराक्रमः'। (फ० १६, ८)।

---

१. ज० ए० सो० बं० १८५२, पृ० ३९०।

यह सिक्का जून १९५४ में ज० न्यू० सो० इं० के भा० १६ में प्रकाशित होगा। इस सिक्के की तौल १३६ ग्रेन है। यह तौलमान समुद्रगुप्त के काल में प्रचार में नहीं था। उस समय पृष्ठभाग को देवी कमलासीन भी नहीं दिखाई जाती थी। मुद्रा की शैली भी उत्तर-कालीन मालूम पड़ती है। इसलिए यह असंभव नहीं है कि यह मुद्रा ४५० ईसवी सन् के बाद राज्य करनेवाले किसी द्वितीय समुद्रगुप्त की हो और उसने भी प्रथम समुद्रगुप्त का विरुद धारण किया हो।

द्वितीय चन्द्रगुप्त

३. सिंहनिहन्ता प्रकार

पहला वर्ग

(राजा प्रत्यंचा नहीं चढ़ा रहा है)

करांची के श्री० हॅमिल्टन ने मुझे एक इस प्रकार की मुद्रा का फोटो भेजा है, जिसके पृष्ठभाग पर राजा धनुष पर बाण नहीं चढ़ा रहा है; किंतु उसे बायें हाथ में लेकर सामने खड़े सिंह को रोष से केवल देख रहा है। यह मुद्रा बयाना निधि फ० १७, १० के समान है; किंतु राजा बाईं ओर देख रहा है, न कि दाहिनी ओर। यह मुद्रा अगले साल में प्रकाशित होगी (फ० १९,३)। कलकत्ता के श्री नरेन्द्रसिंह सिंघी के संग्रहालय में भी ठीक इस उपप्रकार की एक मुद्रा है, जो फ० १९, २ पर प्रकाशित की गई है।

दूसरा वर्ग

४. (बाईं ओर चलते हुए सिंह पर देवी घुड़सवार के समान)

हाल में लखनऊ संग्रहालय में एक इस वर्ग का सिक्का मिला है, जिसके पृष्ठभाग की देवी बाईं ओर चलते हुए सिंह पर घुड़सवार के समान पैर दोनों ओर फैलाकर बैठी है। उसके बायें हाथ में कौर्नुकोपिया और दाहिने में पाश है। यह उपप्रकार अबतक अज्ञात था। यह मुद्रा ज० न्यू० सो० इं० भा० १५ पृ० ८०, फ० ३, २ पर प्रकाशित हुई है। (फ० १९, ४)।

५. अश्वारोही प्रकार

(पृष्ठभाग की देवी खड़ी)

द्वितीय चन्द्रगुप्त के अश्वारोही प्रकार में देवी हमेशा तिपाई पर बैठी हुई पाई जाती है; किंतु हाल में लखनऊ संग्रहालय को एक मुद्रा मिली है, जिसके पृष्ठभाग की देवी खड़ी है। उसका वर्णन इस प्रकार है---

आकार .८", तौल १२१ ग्रेन।

पुरोभाग--अश्वारोही राजा दाहिनी ओर, आयुध विरहित ; मुद्रालेख, 'परमभागवतो महा-राजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्तः' ।

पृष्ठभाग—देवी सामने खड़ी, दाहिने हाथ में माला, बायें में कमल ; बाईं ओर चिह्न, दाहिनी ओर लेख, 'अजितविक्रमः' । यह मुद्रा ज० न्यू० सो० ई०, भा० १५ पृ० ८० फ० ३, १ पर प्रकाशित हुई है (फ० १६, ५) ।

छत्रधारी प्रकार

दूसरा वर्ग

६ (पृष्ठभाग की देवी नीचे उतरती हुई)

पटना के श्री जालान के संग्रह से हाल में एक इस वर्ग की मुद्रा ज० न्यू० सो० ई० भा० १४ पृ० ६६, फ० ६.१५ पर प्रकाशित हुई है, जिसके पर पृष्ठभाग की देवी तिपाई से नीचे उतरती हुई दिखाई गई है । यह उपप्रकार अबतक अज्ञात था ।

इस सिक्के का वर्णन इस प्रकार का है—

पुरोभाग—राजा बाईं ओर खड़ा, पीछे छत्रधारी वामन, केवल छत्र का दंड दृश्यमान; मुद्रालेख 'क्षितपव...'

पृष्ठभाग—देवी बाईं ओर खड़ी, दाहिने हाथ में पाश, बायें में कमल ; दाहिना पैर तिपाई से उतरने के लिए उठाया गया है; चिह्न घिसा हुआ ; मुद्रालेख अस्पष्ट (फ० १६,६) ।

परिशिष्ट २

गुप्त-वंशावली की कालक्रमानुसार तालिका

[*तिथियाँ ईसवी सन् में दी गई हैं*]

१. गुप्त (ई० स०२७०-२९०)

२. घटोत्कच (लगभग २९०-३०५)

३. प्रथम चन्द्रगुप्त = कुमारदेवी (३०५-३२५)

काच (३२५-३३०) ४. समुद्रगुप्त (३३०-३७०)

५. रामगुप्त (३७०-३७२) ६. द्वितीय चन्द्रगुप्त = ध्रुवदेवी = कुबेर नागा ३७५—४१२

गोविन्दगुप्त

घटोत्कचगुप्त (४५५ ई०)

७. प्रथम कुमारगुप्त = अनन्तदेवी (४१४-४५५)

८. स्कन्दगुप्त (४५५-४६८)

९. पुरगुप्त (४६८-४६९)

१२. बुधगुप्त (४७५-४९६)

१०. नरसिंहगुप्त (४६९-७२)

११. द्वितीय कुमारगुप्त (४७२-४७५

१२. विष्णुगुप्त (४९६-५०५) (?)

बैन्यगुप्त (५०५-५१०)

भानुगुप्त (५१०-५२५)
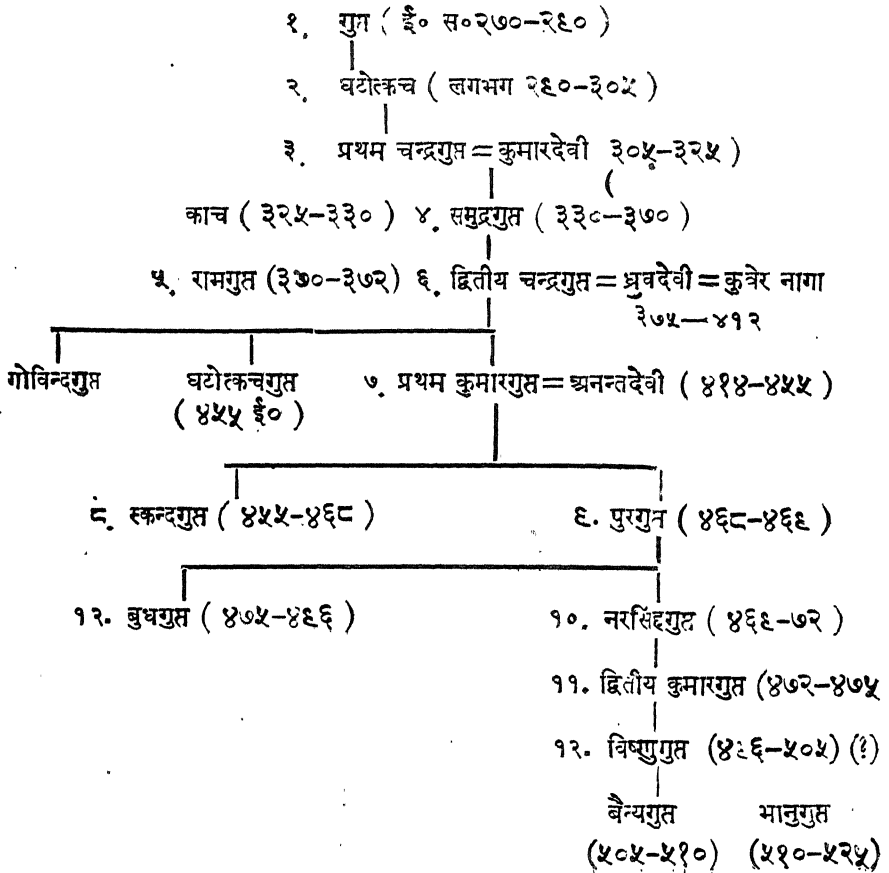
परिशिष्ट ३

सहायक ग्रंथों की सूची

General works.

Banarji, R. D., Age of the Imperial Guptas. Banaras. 1933

Basak, R.G., History of North-Eastern India. Calcutta, 1934

Dandekar, R. N., History of the Guptas. Poona, 1941.

Fleet, J. F., Corpus Inscriptionum Indicarus, Vol. III. Calcutta, 1888

Jayaswal, K. P., History of India, 150-350 A. D. Lahore 1933

" " Imperial History of India. Lahore 1934

Majumdar and Altokar, The Age of the Vakatakas and Guptas. Lahore, 1946.

Rai Choudhari, H.C. Political History of Ancient India, 4th Ed. Calcutta, 1938

Mookerji, R. K. Gupta Empire.

Saletore, R. N. Life in the Gupta Age. Bombay, 1943.

उपाध्याय, वासुदेवः गुप्त साम्राज्य का इतिहास दो भाग, इलाहावाद।

Books on Coins.

Allan, J. Catalogue of the Coins of the Gupta Dynasties and of Sasanka, king of Gauda (in the British Museum) London, 1914.

Smith, V. A. Catalogue of the Coins in the Indian Museum. Calcutta, 1906.

Altekar, A. S. Coinage of the Gupta Dynasty, Bombay, 1954.

उपाध्याय, वासुदेवः भारतीय सिक्के, प्रयाग।

Articles on the Gupta Coinage.

Bibliography of Indian Coins, Part I, Bombay, 1950, gives a complete bibliography of the articles on Gupta coinage. Several articles have deen published subsequent to 1950 in the *Journal of the Numismatic Society of India.*

Principal articles are mentioned here.

Altekar, A. S. Attribution of the Chandragupta-Kumaradevi type, *N. S.* XLVII, 1937.

Bhattasali, N. K. Notes on Gupta and Later Gupta Coinage. *N. S.* XXXVII, 1923

" " Attribution of the Imitation Gupta Coins, *N. S.* XXXIX, 1925.

Cunningham, A. Silver Coins of the Gupta and Their Successors. *C. A. S. R.*, IX, 21

Diskalkar, D. B. Bamnala Find of 21 Gupta Gold Coins, *J. N. S. I.*, V. 135.

Gupta P. L. Gold Coins of Kumaragupta II or III, *Ibid*, XII.31

" " Attribution of the Coins of Prakasaditya, *Ibid*, XII.34

" " A unique gold Coins of Chandragupta II. *Ibid*, IX. 147.

Mirashi, M.V. A note on the Khairtal Hoard of Mahendraditya *Ibid*, XI. 108

" " *Apratigha* type of Kumaragupta I. *Ibid*, XII. 68.

Narain, A. K., Budhagupta and His Gold Coins. *Ibid*, XII. 112.

Saraswati, S. K. Gold Coin of Budhagupta. *I. C.*, I, 681.

Shastri, H. N. The Asvamedha Coins of Samudragupta, *N. S.*, XXVI. 152.

Shivaramamurti, C. Chakravikrama Type. *J. N. S. I.*, XIII.180

Shitholey, B. S. The Art of Gupta Coins, *Ibid*, X. 119

Smith. V. A. A Classified and Detailed Catalogue of the Gold Coins of the Imperial Gupta Dynasty, *J. A. S. B.*, 1884 p. 119.

" " The Coinage of the Early or the Imperial Gupta Dynasty of Northern India, *J. N. A. S.*, 1889,1

" " Observations on the Gupta Coinage, *Ibid*, 1893,77

Sohoni, S. V. Chandragupta I-Kumaradevi type. *J.N.S.I.*, V. 37

परिशिष्ट ४

मुद्रा-प्रकारों की वर्ण-क्रमानुसार सूची

अप्रतिघ (फ० १४, ३)
अश्वमेध—प्रथम कुमारगुप्त (फ० १३, ७-८)
—समुद्रगुप्त (फ० ३, ६-७)
अश्वारोही—प्रथम कुमारगुप्त (फ० १०, ११-१५ ११, १-१०)।
—द्वितीय चन्द्रगुप्त (फ० ७, १२, १४)।
—स्कन्दगुप्त (फ० १४, १५)
अश्वारोही सिंहनिहन्ता—
प्रकाशादित्य (फ० १४, १५)।
कार्तिकेय प्रथम कुमारगुप्त (फ० १३, ११-१२)
(देखिए मोर-प्रकार)
खड्गधारी — प्रथम कुमारगुप्त (फ० ११, १५)
खड्गनिहन्ता— प्रथम कुमारगुप्त (फ० १३, ३-६)।
गजारोही — प्रथम कुमारगुप्त (फ० १२, १५)।
गजारूढ सिंहनिहन्ता—
प्रथम कुमारगुप्त (१३, १)।
चक्रध्वज — काच (फ० ४, १-४)।
चक्रविक्रम — द्वितीय चन्द्रगुप्त (फ० ६, ८-६)।
छत्र — प्रथम कुमारगुप्त (फ० १३, १५)।
द्वितीय चन्द्रगुप्त (फ० ८, ६-६)।
स्कन्दगुप्त (क्रमादित्य) (फ० १४, १४)।
दण्डधारी प्रकार— समुद्रगुप्त (फ० २, ७-८)।
धनुर्धारी — द्वितीय चन्द्रगुप्त (फ० ४, ६-११ ; फ० ५)।
— प्रथम कुमारगुप्त (फ० ६, ६-१४)
(फ० १०, १-१०)।
— द्वितीय कुमारगुप्त (फ० १५, ४)।
— घटोत्कच (फ० १४, १५)।
— नरसिंहगुप्त (फ० १५ १)।
— बुधगुप्त (फ० १५, १०)।

— विष्णुगुप्त (फ० १५, १२)।
— वैन्यगुप्त (फ० १५, १३)।
— स्कन्दगुप्त (फ० १४, ७)।
— समुद्रगुप्त (२, १३-१५)।
पर्यङ्क — द्वितीय चन्द्रगुप्त (फ० ६, १-३)।
परशु — समुद्रगुप्त (फ० ३, १-४)।
व्याघ्रनिहन्ता—प्रथम कुमारगुप्त (फ० १२; १२)।
— समुद्रगुप्त (फ० ३, १५-१७।
मोर — प्रथम कुमार (फ० १३, ११)।
(देखिए कार्तिकेय)
राजारानी — प्रथम कुमारगुप्त (फ० १४, ४)।
प्रथम चन्द्रगुप्त (फ० १, १०-१३)।
— द्वितीय चन्द्रगुप्त
— पर्यङ्क पर (फ० ६, ६)।
राजालक्ष्मी— स्कन्दगुप्त (फ० १४, १२)।
वीणा — प्रथम कुमारगुप्त (फ० १४, ५)।
— समुद्र (फ० ३, १५, १६)।
सिंहनिहन्ता— प्रथम कुमारगुप्त (फ० १२, १५)।
— द्वितीय चन्द्रगुप्त (फ० ६, ७)।

परिशिष्ट ५

सांकेतिक शब्दों की सूची

आ० स० इ० अं (ए) रि०	—आर्केलाजिकल सर्वे आफइंडिया एन्यूअल रिपोर्ट ।
इ० क०	—इंडियनकलचर ।
इ० हि० क	—इंडियन हिस्टारिकल कार्टर्ली ।
इ० म्यू० कै०	—इंडियन म्यूजियम कैटलाग
इ० अ०	—इंडियन अंटिकेरी ।
ए० इ०	—एपिग्राफिया, इंडिका ।
ए० सो० बं०	—ऐसियाटिक सोसाइटी बंगाल ।
क० मी० इ०	—कनिंघम मिडिभल इंडिया ।
क० आ० (अ) स० रि०	—कनिंघम आर्केलाजिकल सर्वे रिपोर्ट ।
क० ले० इ० सि०	—कनिंघम लेटर इंडोसिथियन ।
का० इ० इ०	—कारपस इंसक्रपशानम इंडिकेरम् ।
का० श्रौ० सू०	—कात्यायन श्रौत-सूत्र ।
ज० अ० ओ० सो०	—जरनल ऑफ अमेरिकन ओरियन्टल सोसाइटी ।
ज० ए० सो० ब०	—जरनल ऑफ ऐसियाटिक सोसाइटी बंगाल ।
ज० रा० ए० सो०	—जरनल ऑफ रायल ऐसियाटिक सोसाइटी, लंदन ।
ज० ब्रा० ब्रा० रा० ए० सो०	—जरनल ऑफ बाम्बे ब्रांच ऑफ रायल ऐसियाटिक सोसाइटी ।
ज० बि० रि० सो०	—जरनल ऑफ बिहार रिसर्च सोसाइटी ।
ज० न्यू० सो० इ०	—जरनल ऑफ न्यूमिसमेटिक सोसाइटी इंडिया ।
न्यू० स०	—न्यूमिसमेटिक सप्लिमेंट ।
न्यू० क्रा०	—न्यूमिसमेटिक क्रानिकिल ।
पं० म्यू० कै०	—पंजाब म्यूजियम कैटलाग ।
प्रि० ए० (पी० ई०)	—प्रिन्सेप एसेज ।
प्रो० रा० ए० सो० बे०	—प्रोसिडिंगस आफ रायल ऐसियाटिक सोसाइटी बंगाल ।
पो० हि० ए० इ०	—पोलिटिकल हिस्ट्री आफ ऐंसेट इंडिया ।
ब्रि० म्यू० कै०	—ब्रिटिशम्यूजियम कैटलाग ।
ब्रि० म्यू० कै० गु० डा०	—ब्रिटिशम्यूजियम कैटलाग गुप्त डाइनेस्टी ।
ब्रि० म्यू० कै० जी० डी०	—वही ।
श० ब्रा०	—शतपथ ब्राह्मण ।

परिशिष्ट ६

विशिष्टार्थक शब्द-सूची

(हिन्दी-अंग्रेजी)

अर्द्धचित्र	Bust
अन्न बालियों का गुच्छा	Cornucopia
आकार (के बाहर)	out of olan
उपप्रकार	Variety
कंकण	Bangles
कलंगी	Crest
कटिस्थित	Avimbo
घुँघराले	Frizzled
घोड़े का विभूषित बाल	Plated manes
चित्ररहित दृष्टांत	Not illustrated
चिह्नसमूह	Motif
चिह्न	Symbol
चुनट	Fold
छोटी धोती	Lion cloth
ठप्पा	Die
तिरपाई	Wicker stool
धराशायी	Counchant
न्यायाधीश की टोपी	Wig
निर्माण-शक्ति	Creative vein
नुपूर	Anklet
प्रकार	Type
प्रतिरूप	Counter part
पुरोभाग	Obvese
पृष्ठभाग	Reverse
फलक	Plate
फलक स्थित सिक्के	Coinsillus trated

बनावट	Fabric
बिन्दुविभूषित	Dotted
मुद्रालेख	Legend
मूलरूप	Prototype
मेहराबवाले चैत्य	Arched hill
मँगटीका	Pearl head ornament
रूढ़गत	Conventional
लम्बे केश	Wig like hair
वर्ग	Class
वर्तुलाकार	Circular
वर्तुलाकार तारा	Starry ornament
विधि	Device
समकक्षक	Collateral branch
साँचा	Mould
स्नायुयुक्त	Muscular
सिंहमस्तक-युक्त	Lion capital
सिंह से डटा	Lion combatant

अनुक्रमणिका

कुछ गुप्तपूर्व मुद्राएँ

समुद्रगुप्त : ध्वजधारी, धनुर्धारी व परशुधारी प्रकार
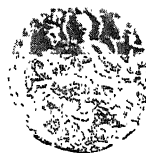
समुद्रगुप्त : छत्रधारी अश्वमेध व्याघ्रनिहन्ता व वीणाधारी प्रकार

1 2 3 4 5

6 7 8 9 10

11 12 13 14 15

काच · द्वितीय चन्द्रगुप्त · धनुर्धारी प्रकार

द्वितीय चन्द्रगुप्त : धनुर्धारी प्रकार

द्वितीय चन्द्रगुप्त : सिंहनिहन्ता प्रकार

द्वितीय चन्द्रगुप्त : सिंहनिहन्ता व अश्वारोही प्रकार

द्वितीय चन्द्रगुप्त : अश्वारोही व छत्र प्रकार
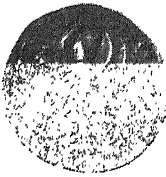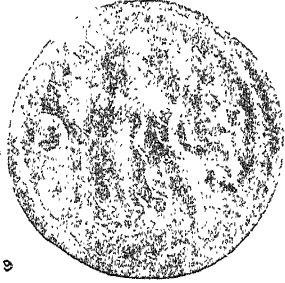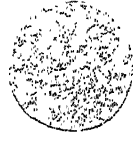
द्वितीय चन्द्रगुप्त : पर्यङ्क, राजारानी, ध्वजधारी व चक्रविक्रम प्रकार
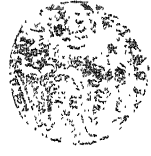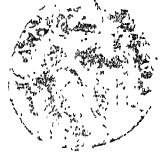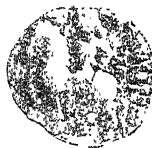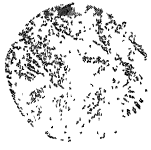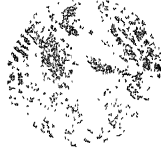
प्रथम कुमारगुप्त : धनुर्धारी व अश्वारोही प्रकार

प्रथम कुमारगुप्त : अश्वारोही व खड्गधारी प्रकार

प्रथम कुमारगुप्त : सिंहनिहन्ता, व्याघ्रनिहन्ता व गजारोही प्रकार

1
2
3
4
5
6
7
8
9
10
11
12
13
14
15
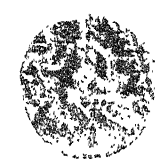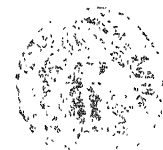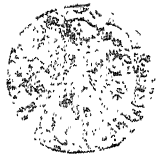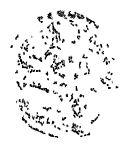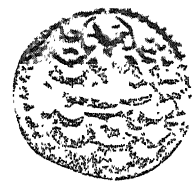
प्रथम कुमारगुप्त : अप्रतिघ, राजारानी, वीणाधारी व गरुड (?) प्रकार

1
2
3
4
5
6
7
8
9
10
11
12
13
14
15
16
17
18
19
20
21
22
23
24
25
26
27
28
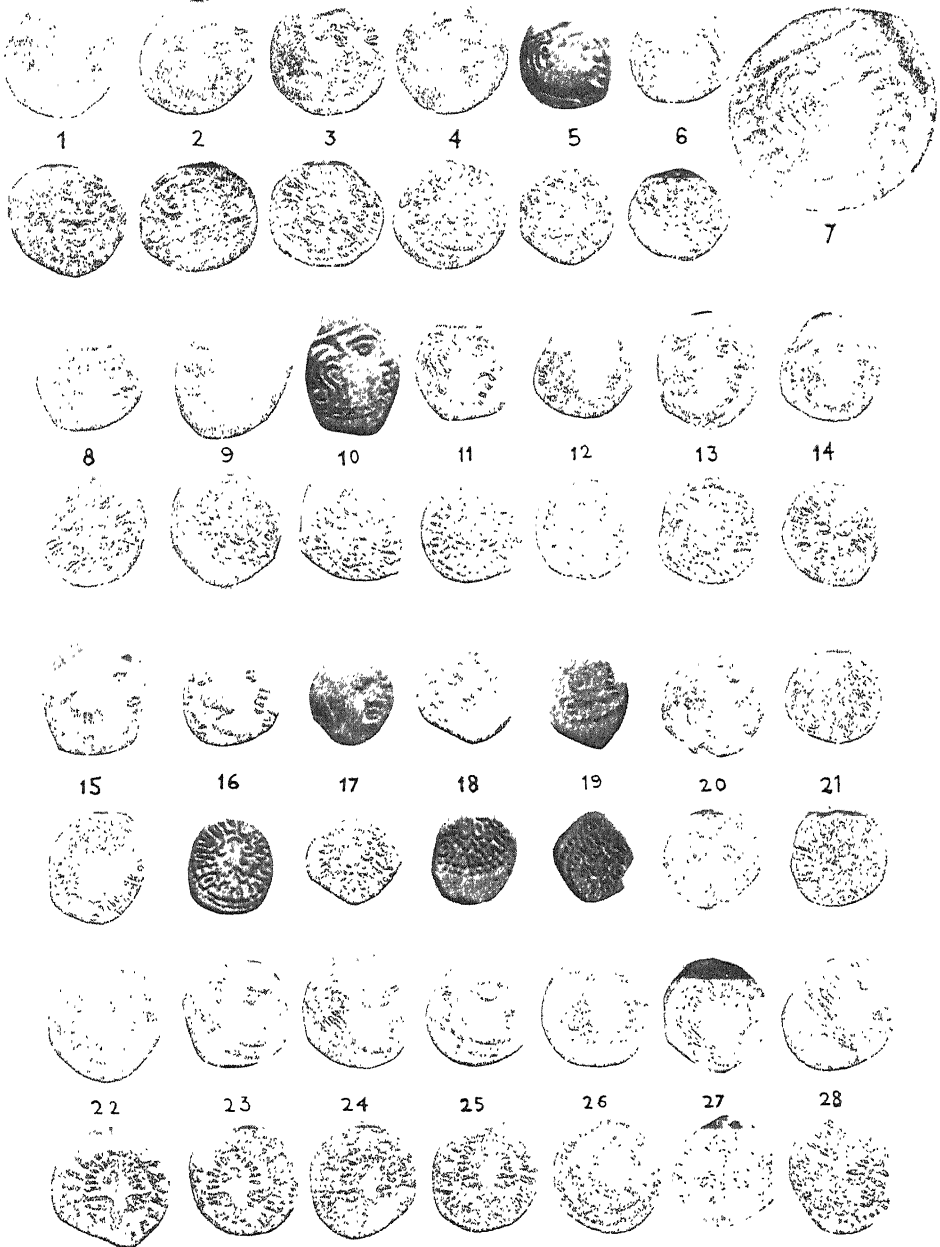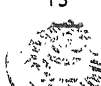
1
2
3
4
5
6
7
8
9
10
11
12
13
14
15
16
17
18
19
20
21
22
23
24
25
26
27
28
29
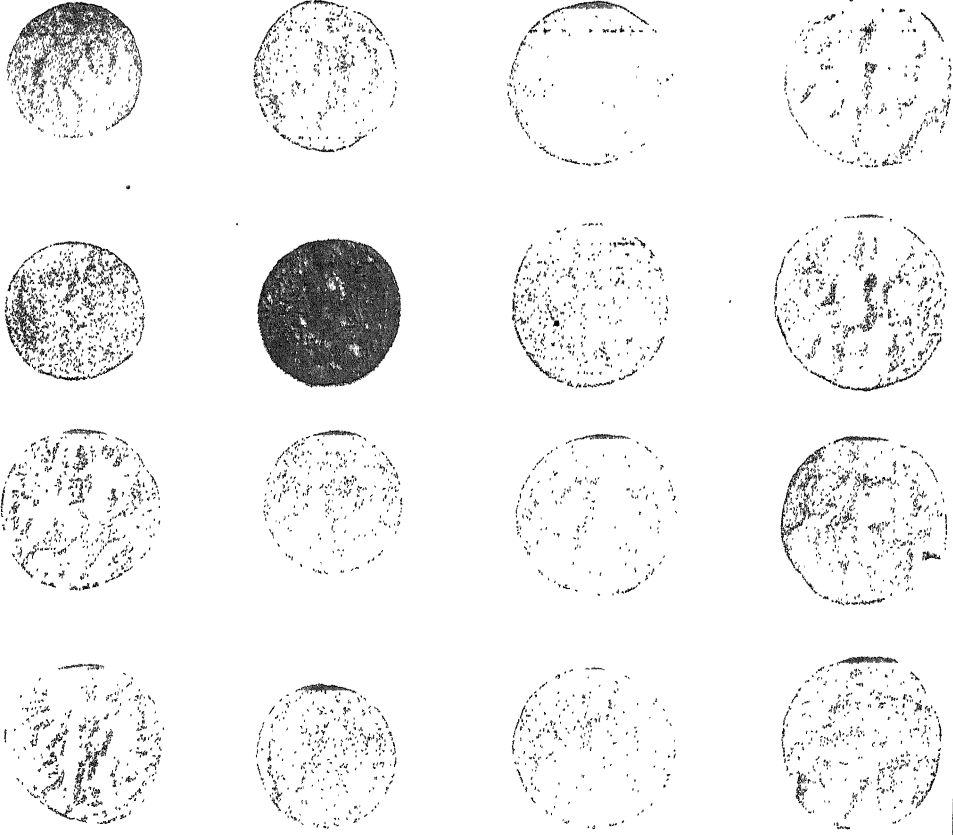
१. द्वितीय चन्द्रगुप्त—सिंहनिहंता
२. वही
३. वही
४. वही (देवी नीचे उतर रही है)
५. वही—अश्वारोही
६. वही—छत्र प्रकार
७. समुद्रगुप्त—व्याघ्रनिहन्ता
८. समुद्रगुप्त (द्वितीय ?)

फ० २० का देवनागरी में रूपान्तर

१. चन्द्रगुप्तः । पृ० २४

२. श्रीकुमारदेवी । पृ० २४

३. समरशतवितर्तविजयो जितरिपुराजितो दिवं जयति । पृ० ३३

४. राजाधिराजः पृथिवीमवित्वा दिवं जयत्याहृतवाजिमेधः । पृ० ४७

५. राजाधिराजः पृथिवीं विजित्य दिवं जयत्याहृतवाजिमेधः । पृ० ४७

६. महाराजाधिराजः श्री समुद्रगुप्तः । पृ० ५२

७. कृतान्तपरशुर्जयत्यजितराजजेताऽजितः । पृ० ४१

८. व्याघ्रपराक्रमः । पृ० ५०

९. अप्रतिरथो विजित्य क्षितिं सुचरितैर्दिवं जयति । पृ० ३८

१० अप्रतिरथो विजित्य क्षितिमवनीशो दिवं जयति । पृ० ३८

११. काचो गामवजित्य दिवं कर्मभिरुत्तमैर्ज्जयति । पृ० ५६

१२. देवश्रीमहाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तः । पृ० ६४

फ० २१ का देवनागरी में रूपान्तर

१३. महाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तः । पृ० ७९, ८९, ९०

१४. क्षितिमवजित्य सुचरितैर्दिवं जयति विक्रमादित्यः । पृ० ९०

१५. परमभागवतो महाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तः । पृ० ८५

१६. देवश्रीमहाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तस्य । पृ० ९३

१७. नरेन्द्रचन्द्रः प्रथितरणो रणे जयत्यजेयो भुवि सिंहविक्रमः । पृ० ७२, ७५

१८. देवश्रीमहाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तः । पृ० ८२

१९. महाराजाधिराजश्रीकुमारगुप्तः । पृ० ११६

२०. विजितावनिरवनिपतिः कुमारगुप्तो दिवं जयति । पृ० ११९

२१. जयति महितलमेकः श्रीकुमारगुप्तः सुधन्वी । पृ० ११९

२२. परमराजाधिराजश्रीकुमारगुप्तः । पृ० १२०

२३. पृ[1]थिवीतलाम्बरशशी कुमारगुप्तो जयत्यजितः । पृ० १२१

२४. जयति नृपोरिभिरजितः । पृ० १२२

१ गलती से एक ही अक्षर में 'इ' मात्रा और 'ऋ' मात्रा खुदाई गई है ।

फ० २२ का देवनागरी में रूपान्तर

२५. क्षितिपतिरजितो विजयी कुमारगुप्तो दिवं जयति । पृ० १२३ ।

२६. गुप्तकुलव्योमशशी जयत्यजेयोजितमहेन्द्रः । पृ० १२२

२७. क्षितिपतिरजितो विजयी कुमारगुप्तो जयत्यजितः । पृ० १२३, १२४

२८. गुप्तकुलामलचन्द्रो महेन्द्रकर्माजितो जयति । पृ० १२६

२९. पृथिवीतलेश्वरेन्द्रः कुमारगुप्तो जयत्यजितः । पृ० १२३, १२४

३०. साक्षादिव नरसिंहः सिंहमहेन्द्रो जयत्यनिशं । पृ० १३२

३१. कुमारगुप्तो युधि सिंहविक्रमः । पृ० १३०

३२. क्षितिपतिरजितमहेन्द्रः कुमारगुप्तो दिवं जयति [1] । पृ० १३०

३३. जयति स्वगुणैर्गुणारविन्दः (?) श्रीमहेन्द्रकुमारः । पृ० १४२

३४. गामवजित्य सुचरितैः कुमारगुप्तो दिवं जयति । पृ० १२८

३५. श्रीमां व्याघ्रबलपराक्रमः । पृ० १३४

३६. भर्ता खड्गत्राता कुमारगुप्तो जयतत्यनिशं । पृ० १३८

१. मुद्रा पर केवल क्षितिपति शब्द मिलता है; इसके पश्चात् के शब्द अनुमान से लिखे गये हैं ।

३७. जयति महीतलं । पृ० १४४

३८. महाराजाधिराजश्रीकुमारगुप्तः । पृ० १४७

३९. देवोजितशत्रुः कुमारगुप्तोऽधिराजः । पृ० १४०, १४३

४०. जितारिपुः कुमारगुप्तो राजत्राता जयति रिपून । पृ० १३६, १३७

४१. विजितावनिरवनिपतिः श्रीस्कन्दगुप्तो दिवं जयति । पृ० १४०

४२. गुणेशो महीतलं ।[१] पृ० ११८

४३. लिच्छवयः । पृ० २४, २५

४४. पराक्रमः । पृ० ३४, ३५

४५. अश्वमेधपराक्रमः । पृ० ४७, ४८

४६. समुद्रगुप्तः । ५२, ५३

४७. कृतान्तपरशुः । पृ० ४१, ४२

४८. राजा समुद्रगुप्तः । पृ० ५०

४९. अप्रतिरथः । पृ० ३६

५०. सर्वराजोच्छेत्ता । पृ० ५६, ६०

५१. श्री विक्रमः । पृ० ६४, ६८

५२. विक्रमादित्यः । पृ० ६१, ६२

५३. अजितविक्रमः । पृ० ८६, ८८

५४. सिंहविक्रमः । पृ० ७७, ८३

फ० २४ का देवनागरी में रूपान्तर

५५. चक्रविक्रमः । पृ० १०२

५६. श्रीमहेन्द्रः । पृ० ११०

५७. अजितमहेन्द्र । पृ० १२५

५८. श्रीमहेन्द्रसिंहः । पृ० १३१

५९. श्रीसिंहमहेन्द्रः । पृ० १३३

६०. श्रीमहेन्द्रकुमारः । पृ० १४३

६१. श्रीकुमारगुप्तः । पृ० १२६

६२. कुमारगुप्तोधिराजः । पृ० १३५

६३. श्रीमहेन्द्रखड्गः । पृ० १३६

६४. श्रीमहेन्द्रादित्यः । पृ० १४५

६५. कुमारगुप्तः । पृ० १४८

६६. श्रीअश्वमेधमहेन्द्रः । पृ० १४१

६७. श्रीमहेन्द्रगजः । पृ० १३६

६८. सिंहनिहंता महेन्द्रगजः । पृ० १३७

६९. अप्रतिघः । पृ० १४७

७०. क्रमादित्यः । पृ० १७५

७१. च गु
न्द्र प्त पृ० २४

७२ स
मु
द्र पृ० ४१

७३. स गु
मु प्त
द्र पृ० ४२

७४. कु पृ० ४२

७५. का
च पृ० ५६

७६. कु
मा
र पृ० ११७

७७. कुमार पृ० १४७

55

56

57

58

59

60

61

62

63

64

65

66

67

68

69

70

71

72

73

74

75

76

77

फ० २५ का देवनागरी में रूपान्तर

१. नरेन्द्रसिंहचन्द्रगुप्तो पृथिविंजित्वा दिवं जयति । पृ० ८२

२. रूपाकृती । पृ० ८५

३. पर० म० भ (ग ?) ० चन्द्रगुप्त । पृ० ८८

४. वसुधां विजित्य जयति त्रिदिवं पृथिवी [श्वरः पुण्यैः] पृ० ६८

५. परमभागवत महाराजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्त विक्रमादित्यः । पृ० १०५

६. श्रीगुप्तकुलस्य महाराजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्त विक्रमादित्य । पृ० १०५

७. गुप्तेशो महीतलं जयति कुमारः । पृ० ११८

८. परमभागवत महाराजाधिराज श्रीकुमारगुप्तमहेन्द्रादित्यः । पृ० १५१

९. परमभागवतराजाधिराजश्रीकुमारगुप्तमहेन्द्र (ा) दित्यः । पृ० १५७

१०. विजितावनिरवनिपति (ः) कुमारगुप्तो दिवं जयति । पृ० १६०

११. जयति महीतल [·····] सुधन्वि । पृ० १७०

१२. परहित (?) कार (!) रा (?) जा जयति दिवं श्रीक्रमादित्यः । पृ० १७१

१३. परमभागवतमहाराजाधिराजश्रीस्कन्दगुप्त क्रमादित्यः । पृ० १७६

१४. परमभागवत श्रीविक्रमादित्य स्कन्दगुप्तः । पृ० १७८

१५. परमभागवत श्रीस्कन्दगुप्तः । पृ० १७३

1

2

3

4

5

6

7

8

9

10

11

12

13

14

15

१६. परमभागवत श्रीस्कन्दगुप्त क्रमादित्यः । पृ० १८०

१७. विजितावनिरवनिपति (:) श्री स्कन्दगुप्तो दिवं जयति । पृ० १८१

१८. विजितावनिरवनिपति र्जयति दिवं स्कन्दगुप्तोऽयं । पृ० १८०

१९. महाराजाधिराज श्रीकुमारगुप्त क्रमादित्यः । पृ० १९०

२०. विजितावनिरवनिपति (:) श्री बुधगुप्तो दिवं जयति । पृ० १९४

२१. विजित्य वसुधां दिवं जयति । पृ० १९४

२२. पर [- - - -] श्रीद्वादशादित्यः ।

२३. बालादित्यः । पृ० १८८

२४. श्रीस्कन्दगुप्तः । पृ० १७०

२५. श्रीप्रकाशादित्यः । पृ० १९९

२६. श्रीचन्द्रादित्यः । पृ० १९५

२७. श्रीद्वादशादित्यः । पृ० १९६

२८. रामगुप्तः । पृ० ११२

बाँह के नीचेवाले लेख

२९ ज	३० न	३१ बु	३२ त्रि	३३ वै
य	र	ध	ष्णु	न्य

संकीर्ण अक्षर

गो गु ज जा भ भा रु सि

गुप्त-मुद्राओं पर पाये गये चिह्नों का चित्रपट

कुषाण-मुद्राओं पर पाये गये चिह्न
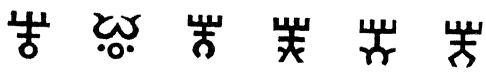
शुद्धि-पत्र

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
भू० १	५	प्रकार	प्राकार
भू० ३	५	plan	flan
,,	२६	अलतेरक	अलतेकर
६	५	valne	vein
,,	३२	उदाहरणों मे	उदाहरणों से
१०	८	पंखयुक्त	प्रसारितपंख
,,	२६	द्वितीय	'द्वितीय
,,	३३	होगा	होगा'
,,	,,	यह	'यह
,,	३४	हुई	हुई'
१३	१	आधकार	अधिकार
,,	१५	चन्द्र	'चन्द्र'
१४	२७	संकलित	संचलित
१५	१०	ऊँचे	ऊँचे पीठवाले
१६	२४	पीठवाले ऊँचे	ऊँचे पीठवाले
१७	१	को	प्रकारों को
१८	५	सिक्के	ये सिक्के
,,	२६	बाई०	आई०
,,	२७	सी०	जी०
२०	१८ व २१	चिह्न	चिह्न समूह
२१	६	उचित	उचित क्यों
,,	१३	स्वर्णों	इन स्वर्णों
,,	१५	हम	किंतु हम
२२	१४-१५	दूसरे में···पड़ता है	अधिक अनुकरण करने वाले सिक्के भी उत्तर कालीन हो सकते हैं।
,,	१६	हम	किंतु हम
,,	३३	प्रथम चंद्रगुप्त के सिक्कों पर	[इन शब्दों को छोड़िए।]

२३	३	देवियों	देवी
,,	१०	पढ़ेगा	न पढ़ेगा
,,	१५	सिंह	सिंह चिह्न
२४	१५	प्रतीक	चिह्न
२८	७	उनमें	उसमें सुधारकर
२८	७	सुधारकर तैयार	तैयार
२६	२५	वही	वह
३६	५	वर्तुलकार	बर्तुलाकार
४७	१५	कमल सा	कमल सी
४६	१७	समुद्र ने	समुद्र ने इसे
५५	फु नो ३	फ्लीट	फ्लीट
५८	१७	का	के
,,	१८	का	के
६५	२६	उपप्रकार	उपप्रकार
१०४	१२	विचर	विचार
,,	१४	मालवा	मालवा तथा
१०५	२६	सिक्के पर के	सिक्के पर खुदे
१०७	२१	नियमित	नियमित रूप से
११३	११	सम्भव है	सम्भव नहीं है
१२७	फुटनोट	अन्त्य	अन्य
१४०	१८	था	है
१७५	२६	हम लोगों स्कंदगुप्त सिक्के	हम लोगों को स्कंदगुप्त के सिक्के
२०२	१८	कुशाण	कुषाण
२२६	४	Indicarus	Indicarum
२३१	३	Out of plan	Out of flan
,,	७	Atimbo	Akimbo

फलक १६ पर मुद्राओं के नंबर रह गये हैं ; उनको पिछले १८ फलकों के समान पढ़ना चाहिए। प्रथम दो पंक्तियों की मुद्राएँ बाएँ से १ से ४ नंबर की हैं, और तृतीय और चतुर्थ पंक्तियों की मुद्राएँ बाएँ से ५ से ८ तक की।